एम.ए. उत्तरार्द्ध

राजनीति विज्ञान, तृतीय प्रश्नपत्र

अंतर्राष्ट्रीय संगठन

(INTERNATIONAL ORGANISATION)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr L.P. Jharia
   Director, DME
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
2. Dr. Akhilesh Sharma
   Professor, OSD
   RUSA, Bhopal (M.P.)
3. Dr. Amar Nayak
   Associate Professor
   Govt. S.N.G. (PG) Autonomous College
   Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
2. Dr L.S.Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
3. Dr L.P. Jharia
   Director, DME
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
4. Dr L.P. Jharia
   Director, DME
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
5. Dr. Akhilesh Sharma
   Professor, OSD
   RUSA, Bhopal (M.P.)
6. Dr. Amar Nayak
   Associate Professor
   Govt. S.N.G. (PG) Autonomous College
   Bhopal (M.P.)

COURSE WRITERS

Dr Nutan Singh, Associate Professor, GDM Girls PG College, Modinagar
Units: (1-5)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

अंतर्राष्ट्रीय संगठन

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 अंतर्राष्ट्रीय संगठन की अवधारणा– अंतर्राष्ट्रीय संगठन की प्रकृति, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की उत्पत्ति, अंतर्राष्ट्रीय संगठन के उद्देश्य, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का वर्गीकरण, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की सीमाएं द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व अंतर्राष्ट्रीय संगठन का विकास– प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व अंतर्राष्ट्रीय संगठन का विकास, राष्ट्र संघ : कार्य एवं मूल्यांकन	**इकाई 1** : अंतर्राष्ट्रीय संगठन–प्रकृति, वर्गीकरण एवं विकास **(पृष्ठ 3–34)**
इकाई–2 संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना से पूर्व के सम्मेलन संयुक्त राष्ट्र संघ का गठन एवं उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर और संघ प्रतिज्ञापत्र : एक तुलनात्मक अध्ययन	**इकाई 2** : संयुक्त राष्ट्र संघ **(पृष्ठ 35–54)**
इकाई–3 महासभा : संगठन एवं भूमिका सुरक्षा परिषद संगठन एवं भूमिका आर्थिक तथा सामाजिक परिषद न्यास परिषद : संगठन एवं भूमिका अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय सचिवालय संयुक्त राष्ट्र संघ के विशिष्ट अभिकरण एवं गैर राजनीतिक कार्य	**इकाई 3** : महासभा, सुरक्षा परिषद, आर्थिक व सामाजिक परिषद, न्यास परिषद, अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय, सचिवालय व अन्य विशिष्ट अभिकरण **(पृष्ठ 55–108)**
इकाई–4 अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाए रखनाः नए आयाम तथा मूल्यांकन– संयुक्त राष्ट्र में शांति कायम रखने वाली कार्यवाहियां, शांतिपूर्ण समाधान की प्रक्रियाएं, संयुक्त राष्ट्र संघीय आपातकालीन सेना, अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखना प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय विवादों का अध्ययन	**इकाई 4** : संयुक्त राष्ट्र संघ की शांति संबधी कार्यवाही **(पृष्ठ 109–156)**
इकाई–5 निशस्त्रीकरण संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक और सामाजिक गतिविधियां संयुक्त राष्ट्र संघ– एक आलोचनात्मक मूल्यांकन, समस्याएं और संभावनाएं	**इकाई 5** : निशस्त्रीकरण, संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियां **(पृष्ठ 157–210)**

विषय–सूची

परिचय **1–2**

इकाई 1 अंतर्राष्ट्रीय संगठन–प्रकृति, वर्गीकरण एवं विकास **3–34**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 अंतर्राष्ट्रीय संगठन की अवधारणा
  1.2.1 अंतर्राष्ट्रीय संगठन की प्रकृति
  1.2.2 अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की उत्पत्ति
  1.2.3 अंतर्राष्ट्रीय संगठन के उद्देश्य
  1.2.4 अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का वर्गीकरण
  1.2.5 अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की सीमाएं
1.3 द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व अंतर्राष्ट्रीय संगठन का विकास
  1.3.1 प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व अंतर्राष्ट्रीय संगठन का विकास
  1.3.2 राष्ट्र संघ : कार्य एवं मूल्यांकन
1.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.5 सारांश
1.6 मुख्य शब्दावली
1.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 संयुक्त राष्ट्र संघ **35–54**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना से पूर्व के सम्मेलन
2.3 संयुक्त राष्ट्र संघ का गठन एवं उद्देश्य
2.4 संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर और संघ प्रतिज्ञापत्र : एक तुलनात्मक अध्ययन
2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 महासभा, सुरक्षा परिषद, आर्थिक व सामाजिक परिषद, न्यास परिषद, अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय, सचिवालय व अन्य विशिष्ट अभिकरण **55–108**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 महासभा : संगठन एवं भूमिका
3.3 सुरक्षा परिषद संगठन एवं भूमिका
3.4 आर्थिक तथा सामाजिक परिषद
3.5 न्यास परिषद : संगठन एवं भूमिका

3.6 अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय
3.7 सचिवालय
3.8 संयुक्त राष्ट्र संघ के विशिष्ट अभिकरण एवं गैर राजनीतिक कार्य
3.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.10 सारांश
3.11 मुख्य शब्दावली
3.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.13 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 संयुक्त राष्ट्र संघ की शांति संबधी कार्यवाही 109–156

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाए रखनाः नए आयाम तथा मूल्यांकन
4.2.1 संयुक्त राष्ट्र में शांति कायम रखने वाली कार्यवाहियां
4.2.2 शांतिपूर्ण समाधान की प्रक्रियाएं
4.2.3 संयुक्त राष्ट्र संघीय आपातकालीन सेना
4.2.4 अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखना
4.3 प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय विवादों का अध्ययन
4.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.5 सारांश
4.6 मुख्य शब्दावली
4.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 निशस्त्रीकरण, संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियां 157–210

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 निशस्त्रीकरण
5.3 संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक और सामाजिक गतिविधियां
5.4 संयुक्त राष्ट्र संघ– एक आलोचनात्मक मूल्यांकन, समस्याएं और संभावनाएं
5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.6 सारांश
5.7 मुख्य शब्दावली
5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'अंतर्राष्ट्रीय संगठन' का लेखन विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित एम.ए. राजनीति विज्ञान (उत्तरार्द्ध) पाठ्यक्रम के अनुरूप किया गया है।

अंतर्राष्ट्रीय संगठन उन संस्थानों को कहा जाता है, जिसके सदस्य, कार्यक्षेत्र तथा उपस्थिति वैश्विक स्तर पर हो। अंतर्राष्ट्रीय संगठन कुछ विशेष उद्देश्यों के लिए स्थापित किए जाते हैं जो उनके संघटक दस्तावेजों में वर्णित किए जाते हैं। इन संगठनों की स्थापना अंतर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार की जाती है। बीसवीं शताब्दी में कई सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की स्थापना की गई है। कुछ संगठन जैसे विश्व कोष और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष मौद्रिक मुद्दों से निपटने के लिए, संयुक्त राष्ट्र संघ राजनीतिक मुद्दों से निपटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय संगठन एकांतिक रूप से किसी विशेष राष्ट्र या राज्य के न होते हुए भी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के संचालन में विशेष महत्व रखते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ, उत्तर अटलांटिक संगठन संधि (नाटो), दक्षेस/सार्क, आसियान, एपेक, यूरोपीय संघ, राष्ट्रमंडल, अफ्रीकी संघ, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संघटन ऐसे ही संगठन हैं जिनके माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों का समाधान किया जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के समस्त आयामों की अभिव्यंजना करती है। अध्येताओं की सुविधा के लिए प्रत्येक विषय का विश्लेषण करने से पूर्व उसका परिचय और उद्देश्य स्पष्ट कर दिए गए हैं। उनके 'स्व परीक्षण' हेतु विषय–वस्तु के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' स्तंभ के अंतर्गत वैकल्पिक प्रश्न भी दिए गए हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए समूचे पाठ्यक्रम को पांच इकाइयों में समायोजित किया गया है। इन इकाइयों का विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई अंतर्राष्ट्रीय संगठन की प्रकृति, वर्गीकरण एवं विकास पर आधारित है। इसमें अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की अवधारणा, उनके उद्देश्यों तथा राष्ट्र संघ के कार्यों का मूल्यांकन किया गया है।

दूसरी इकाई संयुक्त राष्ट्र पर आधारित है। इसमें संयुक्त राष्ट्र संघ से पूर्व के सम्मेलनों, उसके गठन, उद्देश्य तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के तुलनात्मक अध्ययन को विस्तार से समझाया गया है।

तीसरी इकाई में महासभा, सुरक्षा परिषद, आर्थिक व सामाजिक परिषद, न्यास परिषद, अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय, सचिवालय व अन्य अभिकरणों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है।

चौथी इकाई संयुक्त राष्ट्र संघ की शांति संबंधी कार्यवाही पर आधारित है। इसमें शांति सुरक्षा बनाए रखने के प्रयासों एवं प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय संघर्षों/विवादों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

पांचवीं इकाई निशस्त्रीकरण एवं संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक और सामाजिक

गतिविधियों पर आधारित है। इसमें निशस्त्रीकरण की अवधारणा तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की समस्याओं एवं संभावनाओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है।

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक में अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के कतिपय पहलुओं का सांगोपांग अध्ययन किया गया है। इन इकाइयों के अध्ययन से छात्र तत्संदर्भित विषयों से भलीभांति अवगत हो सकेंगे। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक छात्र–छात्राओं की जिज्ञासा को शांत कर उनका ज्ञानवर्धन करेगी।

इकाई 1 अंतर्राष्ट्रीय संगठन–प्रकृति, वर्गीकरण एवं विकास

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 अंतर्राष्ट्रीय संगठन की अवधारणा
  1.2.1 अंतर्राष्ट्रीय संगठन की प्रकृति
  1.2.2 अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की उत्पत्ति
  1.2.3 अंतर्राष्ट्रीय संगठन के उद्देश्य
  1.2.4 अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का वर्गीकरण
  1.2.5 अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की सीमाएं
1.3 द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व अंतर्राष्ट्रीय संगठन का विकास
  1.3.1 प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व अंतर्राष्ट्रीय संगठन का विकास
  1.3.2 राष्ट्र संघ : कार्य एवं मूल्यांकन
1.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.5 सारांश
1.6 मुख्य शब्दावली
1.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

अंतर्राष्ट्रीय संगठन की संकल्पना बीसवीं शताब्दी में अत्यंत महत्वपूर्ण प्रत्यय की भांति न केवल उभरी बल्कि अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की संख्या में आशातीत रूप में वृद्धि भी हुई है। बीसवीं सदी के आरंभ से ही विश्व के राजनीतिक पटल पर ऐसी विध्वंसकारी घटनाएं घटित होने लगी थीं, जिनके कारण समस्त विश्व में असुरक्षा और अशांति का वातावरण बन गया था। ऐसे समय में प्रत्येक राष्ट्र एक दूसरे से टकराने के लिए तत्पर था। सभी राष्ट्रों के मध्य आपस में पारस्परिक संबंधों का उचित रूप से निर्वहन होता रहे, इसके लिए छोटे–बड़े राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सामाजिक सुरक्षा सभी प्रकार के अंतर्राष्ट्रीय संगठन अस्तित्व में आने लगे। ये संगठन अलग–अलग प्रकृति के हो सकते हैं, संकीर्ण और वृहद स्तर के हो सकते हैं तथा स्थायी और अस्थायी हो सकते हैं। परंतु यह सत्य है कि वर्तमान में अंतर्राष्ट्रीय राजनीति तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की कल्पना अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के बिना अपूर्ण है। न केवल यह इन्हें विस्तार देता है बल्कि अंतर्राष्ट्रीय संगठन राजनीति विज्ञान का एक निरंतर विकासशील क्षेत्र भी है।

इस इकाई में अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की प्रकृति, उनकी उत्पत्ति, वर्गीकरण, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के उद्देश्य तथा क्षेत्र के साथ–साथ प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व में घटित घटनाक्रमों का तथा राष्ट्र संघ के संगठन, प्रकार तथा उनके कार्यों के मूल्यांकन को विस्तार से समझाया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अंतर्राष्ट्रीय संगठन की अवधारणा को समझ पाएंगे;
- अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के उद्देश्य, वर्गीकरण, प्रकृति और इनके विकास का आकलन कर पाएंगे;
- राष्ट्र संघ की उत्पत्ति, कार्यप्रणाली, संगठन और विघटन के कारणों की समीक्षा कर पाएंगे।

टिप्पणी

1.2 अंतर्राष्ट्रीय संगठन की अवधारणा

अंतर्राष्ट्रीय संगठन राजनीति विज्ञान की एक नई शाखा है जिसका अभ्युदय बीसवीं शताब्दी के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के फलस्वरूप हुआ और कालांतर में पूरे विश्व में भिन्न–भिन्न अंतर्राष्ट्रीय संगठन अस्तित्व में आने लगे। मुख्य तौर पर यह सर्वविदित था कि युद्ध, असुरक्षा और आपस में संघर्ष से बचने तथा सहयोग और शांति के लिए अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की स्थापना के लिए प्रयास किए गए हैं। अंतर्राष्ट्रीय संगठन की अवधारणा को क्रमबद्व रूप से समझने के लिए कुछ बिंदुओं को समझना अत्यावश्यक है। ये बिंदु निम्नलिखित हैं–

1. **अंतर्राष्ट्रीय संगठन एक प्रक्रिया के रूप में** : अंतर्राष्ट्रीय संगठन को एक प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है। संधि, समझौते, सम्मेलन, संबंध, अंतर्राष्ट्रीय कानून आदि के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की प्रक्रिया में प्रवाह विद्यमान रहता है और प्रक्रियाओं का सही प्रवाह मूर्त रूप में अस्तित्व में आने में एक कारक के रूप में कार्य करता है। प्रत्येक अंतर्राष्ट्रीय संगठन अपने निकट भूतकाल में होने वाले घटनाक्रमों का परिणाम होता है।

2 **संप्रभुता और अन्योन्याश्रयता के रूप में** : यह आधार अत्यंत विरोधाभासी है क्योंकि संप्रभुता और अन्योन्याश्रयता एक दूसरे से नितांत विरोधी संकल्पनाएं हैं। संप्रभुता का सीधा–सीधा अर्थ है– राज्य की सर्वोच्च शक्ति जो अकेली और अनन्य होती है। राज्य में उस जैसी कोई दूसरी शक्ति नहीं होती। राज्य के निर्णय लेने में किसी भी प्रकार बाहरी और आंतरिक शक्ति का प्रभाव नहीं होना चाहिए जबकि अन्योन्याश्रयता का अर्थ ही राष्ट्रों के मध्य सहयोग, सद्भाव और सहायता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्योन्याश्रयता के अभाव या कमी की उपस्थिति में राष्ट्र अपना उचित विकास नहीं कर सकता है। इन दोनों विरोधी विचारों को एक साथ लेकर चलना दुधारी तलवार पर चलने जैसा हो सकता है। अतः यही श्रेयस्कर समझा जाता है कि इन दोनों शक्तियों में इस प्रकार सामंजस्य बैठाया जाए कि युद्ध और संघर्षों की संभावनाएं कम से कम रहे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अंतर्राष्ट्रीय संगठन अस्तित्व में आए तथा इस उद्देश्य को पूरा करने में यथासंभव भूमिका निभाई।

3 **अंतर्राष्ट्रीय संगठन की परिभाषा और उसका स्वरूप** : अंतर्राष्ट्रीय संगठन स्वतंत्र और प्रभुतासंपन्न राज्यों का एक औपचारिक समूह होता है,

टिप्पणी

जिसकी स्थापना कुछ निर्दिष्ट एवं विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु की जाती है। जैसे– अंतर्राष्ट्रीय शांति, सहयोग व सुरक्षा इत्यादि। अंतर्राष्ट्रीय संगठन रूप, आकार, उद्देश्य, क्षेत्र आदि की दृष्टि से भिन्न हो सकते हैं किंतु उनके अभ्युदय के पीछे मूल तत्व मानव समाज और विश्व की राजनीतिक इकाइयों को संघर्षों से दूर रखना ही है। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के अभिप्राय को स्पष्ट करने के उद्देश्य से भिन्न–भिन्न विद्वानों ने अलग–अलग परिभाषाएं दी हैं– ''अंतर्राष्ट्रीय संगठन, राज्यों के मध्य स्थापित वह सहकारी व्यवस्था है जिसकी स्थापना कुछ परस्पर लाभप्रद कार्यों को नियमित बैठकों और स्टाफ के जरिए पूरा करने के लिए सामान्यतः एक आधारभूत समझौते द्वारा होती है।''

आर्गेन्सकी के अनुसार, ''अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना तब होती है जब कुछ राष्ट्र संयुक्त हो जाते हैं और उनमें से प्रत्येक अनुभव करता है कि एक औपचारिक संगठन के क्रियाशील होने से उसको लाभ ही होगा।''

चार्ल्स लर्च के मतानुसार, ''कुछ सामान्य उद्देश्यों के लिए संगठित राष्ट्रों के औपचारिक समूह अंतर्राष्ट्रीय संगठन कहे जा सकते हैं। स्वरूप की भिन्नता के बावजूद उनका उदय सामाजिक प्रेरक तत्वों से होता है और उनके दर्शन तथा संगठन में महत्वपूर्ण समानता पाई जाती है।''

प्रो. पी.वी. पॉटर के अनुसार, ''अंतर्राष्ट्रीय संगठन के छह विशेष रूप हैं– 1. राजनय 2. संधि वार्ता 3. अंतर्राष्ट्रीय विधि 4. सम्मेलन 5. प्रशासन और न्याय निर्णय तथा 6. अंतर्राष्ट्रीय संघ।

पामर और पार्किन्स के अनुसार, ''वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की विविधताओं से संबंधित होने की अपेक्षा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर परस्पर व्यवहार की क्रिया से अधिक संबंधित है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के अभिप्राय को समझने में सहायता मिलती है और साथ ही साथ इसकी प्रकृति भी अधिक स्पष्ट रूप से समझ में आने लगती है।

1.2.1 अंतर्राष्ट्रीय संगठन की प्रकृति

अंतर्राष्ट्रीय संगठन की प्रकृति को समझने के लिए अंतर्राष्ट्रीय संगठन की उत्पत्ति पर प्रकाश डालना आवश्यक हो जाता है क्योंकि उत्पत्ति के कारक प्रकृति को निश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। क्लाडे के अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय संगठन मूलभूत रूप से दोहरी प्रकृति के होते हैं क्योंकि यह यथार्थवादी और आदर्शवादी दोनों प्रकार के विचारों की उपज है। चीवर और हैविलैंड ने यथार्थवादी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अंतर्राष्ट्रीय संगठन की प्रकृति को अग्रलिखित बिंदुओं के माध्यम से स्पष्ट किया है।

1 **अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के पास सत्ता, अधिकार और साधनों का अभाव :** संपूर्ण विश्व के अंतर्राष्ट्रीय संगठनों पर यदि दृष्टि डाली जाए तो यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है कि अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के पास सत्ता, अधिकार और

टिप्पणी

साधनों का अभाव रहता है। अधिकांश अंतर्राष्ट्रीय संगठन शक्तिशाली राज्यों से प्रभावित होते हैं और उन पर निर्भर रहते हैं तथा उनसे प्रतिस्पर्धा भी नहीं कर पाते हैं।

2. **अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का अस्तित्व सदस्य राष्ट्रों की वचनबद्धता का परिणाम :** अंतर्राष्ट्रीय संगठन अपने सदस्य राष्ट्रों के विशेष मुद्दों पर वचनबद्धता का परिणाम होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय संगठन के उद्देश्य राष्ट्रों की आपसी सहमति से निश्चित होते हैं तथा उद्देश्य की पूर्ति के लिए ये एक साधन की भांति कार्य करते हैं। हालांकि एक सूत्र में बंधने से राष्ट्रों के मध्य परस्पर संबंध अधिक प्रगाढ़ होते हैं। आपस में सूचनाओं का आदान–प्रदान, समस्याओं पर विचार–विमर्श तथा संगठन द्वारा की गई सिफारिशों का अनुपालन, राष्ट्रहित की अपेक्षा सामूहिक हित पर अधिक ध्यान देना आदि व्यवहार दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

3 **अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के उद्देश्य और सदस्यता भी इनकी प्रकृति निश्चित करती है :** अंतर्राष्ट्रीय संगठन की प्रकृति का निर्धारण उसके उद्देश्य, लक्ष्य, कार्यक्षेत्र और उसकी सदस्यता की शर्तों पर निर्भर करती है। जिन संगठनों के उद्देश्य स्पष्ट और निश्चित होते हैं उनके सदस्यों की संख्या सीमित होती है। परंतु ऐसे संगठन प्रायः अधिक शक्तिशाली होते हैं तथा उनमें आंतरिक रूप से सहमति भी अधिक पाई जाती है क्योंकि सभी सदस्य एक जैसे उद्देश्यों और लक्ष्यों से बंधे होते हैं।

4 **दोहरी प्रकृति :** क्लाडे के अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय संगठन दोहरी प्रकृति के होते हैं क्योंकि यह यथार्थवादी राजनीतिज्ञों एवं आदर्शवादी चिंतकों दोनों की सोच का परिणाम होते हैं। एक ओर तो अंतर्राष्ट्रीय संगठन वह साधन है जिसके माध्यम से वर्तमान राज्य व्यवस्था अधिक कार्य कुशलता से कार्य करने में समर्थ हो सकती है। अंतर्राष्ट्रीय संगठन संप्रभु राज्य को विश्व राजनीतिक समाज की आधारभूत इकाई मानता है। अंतर्राष्ट्रीय संगठन संप्रभु राज्य का एक ऐसा समझौता है जिसके अंतर्गत विभिन्न राष्ट्र सामान्य और संकटकाल दोनों ही समय में विचार विनिमय द्वारा यथोचित निर्णय ले सकें और उन निर्णयों को लागू कर सकें।

दूसरी ओर अंतर्राष्ट्रीय संगठन एक ऐसी प्रक्रिया है जो विश्व सरकार की स्थापना के लिए प्रयत्नशील हो। यह वर्तमान राज्य व्यवस्था का अतिक्रमण करके नई व्यवस्था स्थापित कर विश्व बंधुत्व और भ्रातृत्व के स्वप्न को साकार करना चाहते हैं।

उपर्युक्त दोहरी प्रकृति के कारण अंतर्राष्ट्रीय संगठन विश्व राजनीति में द्वन्द्व और संघर्ष के लिए उत्तरदायी हो सकते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय संगठन की प्रकृति के संबंध में– क्लाडे के दो महत्वपूर्ण उपागम हैं– (1) बीज उपागम और (2) भवन उपागम।

1 **बीज उपागमः**– जिस प्रकार एक बीज के अंदर भविष्य का संभावित वृक्ष समाहित रहता है और अनुकूल परिस्थितियां पाकर सही समय पर विकसित

होता है और फलीभूत होता है उसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में विश्व की संसद होने, अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय विश्व के सर्वोच्च न्यायालय होने और संयुक्त राष्ट्र संघ के विश्व सरकार होने की संभावनाएं समाहित हैं।

टिप्पणी

2 **भवन उपागमः**– एक भवन के निर्माण के कुछ ठोस नियम और सिद्धांत हो सकते हैं किंतु उसके विकास के लिए कुछ निश्चित प्रतिमान नहीं हो सकते हैं। किसी भवन का विकास उसमें रहने वालों की आवश्यकताओं और तत्कालीन परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ का भावी विकास इस बात पर निर्भर करता है कि विश्व की आवश्यकताएं क्या हैं? इसके सदस्य राज्यों की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार ही इस विश्व संस्था का विकास सही रूप में हो सकता है।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की प्रकृति सदस्य राष्ट्रों की वचनबद्धता, सहयोग, सदस्यता, उनके उद्देश्यों पर तो निर्भर करती ही है साथ ही इनकी प्रकृति दोहरी होती है तथा इनके पास सत्ता, अधिकारों और साधनों का अभाव होता है। यदि क्लाडे के विचारों का मंथन करें तो स्पष्ट हो जाता है कि इनमें भविष्य के लिए संभावनाएं भी समाहित हैं और इनका विकास आवश्यकतानुसार और परिस्थिति अनुसार होता है।

1.2.2 अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की उत्पत्ति

अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की उत्पत्ति के प्रारंभ में ही यह उल्लेख करना आवश्यक है कि अंतर्राष्ट्रीय संगठन के उद्विकास के लिए निम्नलिखित परिस्थितियां तथा तथ्यों का विद्यमान होना आवश्यक है–

1. पूरा विश्व प्रभुत्वसंपन्न राज्यों में विभाजित होना चाहिए।
2. इन प्रभुत्वसंपन्न राज्यों में पारस्परिक यथेष्ट संपर्क होने चाहिए।
3. इन प्रभुत्वसंपन्न राज्यों में पारस्परिक संपर्क तथा सह–अस्तित्व से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के प्रति जागरूकता होनी चाहिए।
4. इन प्रभुत्वसंपन्न राज्यों द्वारा यह स्वीकार किया जाना आवश्यक है कि पारस्परिक संबंधों को व्यवस्थित तथा नियमित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना आवश्यक है।

उपर्युक्त आवश्यक शर्तों की पूर्ति अठारहवीं शताब्दी के अंत तक नहीं हुई। इनकी पूर्ति उन्नीसवीं शताब्दी में हुई, अतः इसी शताब्दी में अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना हुई। इसका इतिहास काफी लम्बा है। राज्य प्रणाली का विकास यूरोप की 17 वीं शताब्दी से प्रारंभ हो गया तथा वेस्टफेलिया की संधि (1648) ने इस प्रणाली को औपचारिक रूप से मान्यता प्रदान कर दी। यह राज्य–प्रणाली कुछ परिवर्तनों के साथ आज भी विद्यमान है तथा इसी पृष्ठभूमि में आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा आधुनिक संबंधों का विकास हुआ। राज्य–प्रणाली की स्थापना, इसके गैर–पश्चिमी संसार में प्रसार तथा यातायात के साधनों के विकास के परिणामस्वरूप पहली तीन आवश्यकताओं या शर्तों की पूर्ति हो गई। परंतु जो चौथी शर्त थी उसकी पूर्ति होने में काफी समय लगा तथा यह 19वीं शताब्दी में हुआ।

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय संस्था का उद्विकास मुख्यतया निम्न चरणों में हुआ–

1. **यूरोप का कन्सर्ट :** अंतर्राष्ट्रीय संस्था के उद्विकास का प्रथम चरण यूरोप के कन्सर्ट की स्थापना से प्रारंभ होता है। इसका उदय होली एलायन्स तथा वियना की कांग्रेस से हुआ था। यह महान शक्तियों का एक ढीला संघ अथवा अपवर्जित क्लब था। यूरोप में शक्ति का संतुलन बनाए रखने के लिए यूरोप की महान शक्तियों ने यह संघ बनाया था तथा समय–समय पर विचार–विमर्श किया करते थे। यूरोप के कन्सर्ट ने सामूहिक समझौते की नींव रखी तथा इस प्रकार यह अंतर्राष्ट्रीय संस्था का एक अभिन्न अंग हो गया। यूरोप का कन्सर्ट राष्ट्र संघ परिषद का एक प्रारंभिक रूप था तथा इसने अंतर्राष्ट्रीय संस्था के कार्यपालिका अंग की स्थापना में काफी योगदान दिया।

   बाल्कन युद्धों के पश्चात् सन 1912–13 के लंदन सम्मेलन, यूरोप के कन्सर्ट के अंतर्गत आखिरी सम्मेलन थे। सम्मेलन के अंत में एक औपचारिक संधि या अभिसमय होता था अथवा जहां बाध्यकारी करार वांछनीय नहीं था वहां एक मेमोरेन्डम या सम्मेलन के मिनट रिकॉर्ड किए जाते थे। तदर्थ सम्मेलनों की इस प्रणाली में कई दोष थे। सर्वप्रथम जब कोई नई समस्या उठती तो संबंधित राज्यों द्वारा सम्मेलन में बहस नहीं होती थी वरन् हर राज्य के प्रतिनिधि अपने राज्य की नीति पर बयान देते थे। द्वितीय, कभी–कभी वे एक दूसरे को रियायतें भी देते थे परंतु इस प्रणाली में जड़ता थी जो बाद में राष्ट्र संघ एवं संयुक्त राष्ट्र की स्थायी सभाओं से दूर हुई। तृतीय, यह सम्मेलन संयोजक या मेजबान राज्य के आमंत्रण पर बुलाया जाता था। सदस्यता का सिद्धान्त जो स्वतः प्रतिनिधित्व का अधिकार प्रदान करता है, अनुपस्थित था। चतुर्थ, सम्मेलनों में राज्य समानता का कड़ा सिद्धांत अपनाया जाता था, इसके परिणामस्वरूप सभी राज्यों को समान एकमत प्राप्त था तथा निर्णयों के लिए सर्वसम्मति आवश्यक थी।

2. **हेग–प्रणाली** : हेग– प्रणाली से अंतर्राष्ट्रीय संस्था के उद्विकास का द्वितीय चरण प्रारंभ होता है। हेग सम्मेलन 1899 तथा 1907 अंतर्राष्ट्रीय संस्था के उद्विकास में बड़े महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनमें राज्यों ने अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के हल हेतु एकता के आधार पर विचार–विमर्श किया। हेग सम्मेलन, 1899 में 26 राज्यों ने तथा 1907 में 44 राज्यों ने भाग लिया। इन सम्मेलनों को वास्तव में राष्ट्र संघ महासभा का जनक कहा जा सकता है।

3. **प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय संघः**– प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय संघों का विकास मुख्यतः इस अहसास के कारण हुआ कि उनके हित अंतर्राष्ट्रीय हैं तथा उसके लिए स्थायी अंतर्राष्ट्रीय संघ की आवश्यकता है। इस संबंध में विश्व दासता–विरोधी सम्मेलन, 1840 कदाचित पहला सम्मेलन था जिसके परिणामस्वरूप स्थायी व्यवस्था स्थापित की गई। 1840 तथा 1914 के मध्य लगभग 400 स्थायी संघ स्थापित किए गए। यह संघ भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में स्थापित किए गए, जैसे रेडक्रॉस की अंतर्राष्ट्रीय समिति (1863) अंतर्संसदीय संधि (1889), अंतर्राष्ट्रीय विधि संघ (1873), अंतर्राष्ट्रीय दंत संघ (1878), तथा अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक चैंबर (1919)। इन संघों का विकास इतनी तेजी से हुआ कि उनके कार्यों में

समन्वय स्थापित करने के लिए तथा सदस्यता की शर्तें रखने के लिए अंतर्राष्ट्रीय संघों के संघ की स्थापना 1910 में की गई। इसमें निम्नलिखित शर्तें रखी गईं–

(1) स्थायी सदस्य का अंग का होना।

(2) इसका उद्देश्य : सभी राज्यों या कुछ राज्यों का हित होना न कि लाभ।

(3) सदस्यता : विभिन्न देशों के व्यक्ति या दलों के लिए खुली होनी चाहिए।

(4) इन संस्थाओं में स्थायी नियमित मीटिंग का प्रबंध किया गया। इसके अतिरिक्त अनेक संघों ने स्थायी सचिवालय स्थापित किए। इनके कार्यों के आधार पर 'लोक' तथा 'प्राइवेट संघों' में अंतर रखा गया।

टिप्पणी

4. **अंतर्राष्ट्रीय लोक संघ** : अंतर्राष्ट्रीय संस्था के विकास की मुख्यधारा लोक अंतर्राष्ट्रीय संघों की स्थापना से प्रारंभ होती है। इसमें मुख्यतः गैर–राजनीतिक समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया गया। अंतर्राष्ट्रीय तार संघ (ITU) तथा सार्वभौमिक डाक संघ (UPU) की स्थापना क्रमशः 1865 तथा 1874 में हुई। बाद में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संघ (ILO), विश्व स्वास्थ्य संघ संस्था, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा–कोष (IMF) आदि संस्थाओं की स्थापना हुई। ये संस्थाएं संयुक्त राष्ट्र से संबंधित होकर संयुक्त राष्ट्र की विशिष्ट एजेंसियां बन गईं। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि अंतर्राष्ट्रीय तार संघ के सचिववालय को राष्ट्र संघ सचिवालय तथा संयुक्त राष्ट्र सचिवालय का जनक कहा जा सकता है।

अंतर्राष्ट्रीय संगठन के उपर्युक्त विकास ने राष्ट्र संघ की स्थापना के लिए आधार तैयार किया। राष्ट्र के रूप में एक सामान्य तथा व्यापक विश्व संस्था की स्थापना की गई तथा यह उपर्युक्त उद्विकास की ऋणी थी।

1.2.3 अंतर्राष्ट्रीय संगठन के उद्देश्य

किसी भी अंतर्राष्ट्रीय संगठन के सामान्यतः स्वीकार किए जाने वाले उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. युद्ध की रोकथाम अथवा शांति एवं सुरक्षा कायम रखना, तथा
2. उन समस्याओं का निदान करना जो राज्यों के समक्ष उनके वैदेशिक संबंधों के संदर्भ में उपस्थित होती हैं।

युद्ध की रोकथाम अथवा विश्व में शांति और सुरक्षा की स्थापना अंतर्राष्ट्रीय संगठन का सर्वोपरि उद्देश्य होता है। राष्ट्रसंघ की संविदा की प्रस्तावना के अनुसार, संघ का उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की स्थापना करना अर्थात न्याय और सम्मान के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की स्थापना करके भावी युद्धों को टालना तथा संसार के राष्ट्रों के मध्य सहयोग को प्रोत्साहन देना था। इसी प्रकार वर्तमान संयुक्त राष्ट्रसंघ का लक्ष्य अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा की रक्षा करना, राष्ट्रों के मध्य मैत्रीपूर्ण संबंध विकसित करना तथा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना है।

जिस प्रकार कोई भी समाज सुरक्षित और सभ्य तभी बना रह सकता है जब उसके सदस्य किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध आक्रमणात्मक कार्यवाहियों को संपूर्ण समुदाय की शांति और कल्याण के लिए खतरा मानें, ठीक उसी प्रकार राष्ट्रों के मध्य अर्थात्

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी शान्ति और व्यवस्था तभी सुरक्षित रह सकती है जब किसी भी एक राष्ट्र पर किया गया आक्रमण संपूर्ण विश्व के लिए एक संकट समझा जाए।

अंतर्राष्ट्रीय संगठन का दूसरा उद्देश्य संसार के राष्ट्रों के समक्ष अपने वैदेशिक संबंधों के निर्वहन के संबंध में उठने वाली विभिन्न समस्याओं का शांतिपूर्ण ढंग से हल निकालने में यथासम्भव सहयोग देना है। यह उद्देश्य बहुत विस्तृत अर्थात बहुमुखी है जिसमें किसी भी अंतर्राष्ट्रीय संगठन को बड़ी सूझबूझ, निष्पक्षता, कूटनीतिक चातुर्य और प्रभावशाली अनुशासनात्मक कार्रवाई का आश्रय लेना पड़ता है। इस उद्देश्य का क्षेत्र स्वास्थ्य से लेकर आर्थिक विकास और डाक–दरों से लेकर अंतरिक्ष तक व्यापक है। संक्षेप में प्लानो तथा रिग्ज के शब्दों में, ''अंतर्राष्ट्रीय संगठन के उद्देश्य लगभग असीम हैं। सामान्य रूप में इन बहुमुखी उद्देश्यों को तीन मोटे लक्ष्यों में व्यक्त किया जा सकता है, शांति, समृद्धि और व्यवस्था। शांति के उद्देश्यों की सफलता मुख्यतः इस बात पर निर्भर है कि हिंसात्मक कार्रवाई के प्रति प्रभावशाली प्रतिरोधात्मक व्यवस्थाएं कहां तक लागू की जाती हैं और अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान का संयंत्र कहां तक उपयुक्त रूप से प्रभावशाली होता है। समृद्धि की उपलब्धि तभी संभव है जब प्राविधिक समस्याओं में सहयोग करके आर्थिक गतिविधियों का प्रसार अधिकाधिक संभव बनाया जाए। व्यवस्था का आशय है कि एक ऐसा व्यवस्थापूर्ण विश्व हो जिसमें सभी परिवर्तन स्वाभाविक रूप से होते जाएं और जो हिंसा तथा संघर्षों से मुक्त हो। इस उद्देश्य की पूर्ति में अंतर्राष्ट्रीय संगठन के अधिकांश प्रयास और कार्यक्रम सम्मिलित हो जाते हैं। एक प्रकार से ये उद्देश्य सभी आधारभूत लक्ष्यों का समन्वय या संश्लेषण हैं और अराजकता, भूख, बीमारी, गरीबी, निरक्षरता, उग्र राष्ट्र–वाद, भेदभाव, गुलामी और उपनिवेशवाद के विरुद्ध सामान्य संघर्ष की मांग करते हैं। विधेयात्मक रूप में लेने पर इन उद्देश्यों में कानूनी स्थिति, रहन–सहन के उच्च स्तर, श्रेष्ठतर स्वास्थ्य, उत्तम शिक्षा व्यवस्था, लोगों की एक– दूसरे को समझने की प्रवृत्तियों में सुधार, मानव अधिकारों और आधारभूत स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान तथा आत्म–निर्भरता और राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के प्रयास सम्मिलित हैं।

अंतर्राष्ट्रीय संगठन के सभी उद्देश्य किसी न किसी रूप में एक–दूसरे के पूरक हैं। अतः किसी एक उद्देश्य अथवा कुछ उद्देश्यों की उपलब्धि का प्रभाव अनिवार्य रूप से दूसरे क्षेत्रों में पड़ता है। उच्च आदर्शों की पूर्ति का उद्देश्य रखने वाले अंतर्राष्ट्रीय संगठन का सदस्य बनने से राष्ट्रों की राजनीतिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है।

1.2.4 अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का वर्गीकरण

वर्तमान संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के विभिन्न स्वरूप प्रचलित रहते हैं। इनका वर्गीकरण मुख्यतः निम्नांकित आधारों पर किया जा सकता है–

1 उत्तरदायित्व के क्षेत्र के आधार पर।

2 सदस्यता के विस्तार के आधार पर।

3 कार्यों के स्वरूप के आधार पर।

4 सत्ता के आधार पर।

टिप्पणी

1. **उत्तरदायित्व के आधार पर :** अंतर्राष्ट्रीय संगठन दो वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं– (क) व्यापक संगठन (ख) प्रकार्यात्मक संगठन। व्यापक संगठनों के सामान्य उद्देश्य, कार्य और दायित्व बहुत व्यापक होते हैं। राष्ट्रसंघ और संयुक्त राष्ट्र संघ इस प्रकार के अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के उत्तम उदाहरण हैं। प्रकार्यात्मक संगठनों का भी उत्तरदायित्व यद्यपि व्यापक होता है, तथापि उनका कार्यक्षेत्र व्यापक संगठनों की तुलना में सीमित होता है। प्रकार्यात्मक संगठनों के उदाहरण अंतर्राष्ट्रीय श्रम–संगठन, विश्व स्वास्थ्य संगठन, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रानिधि, विश्व डाक संघ आदि हैं। इन्हें गैर–राजनीतिक संगठन भी कहा जाता है।
2. **सदस्यता के विस्तार के आधार पर :** अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को दो वर्गों में बांटा जाता है– (क) सार्वभौमिक (ख) प्रादेशिक। सार्वभौमिक संगठन की सदस्यता विश्व के सभी राष्ट्रों के लिए खुली होती है। अंतर्राष्ट्रीय संगठन आक्रामक विचारों से दूर रहते हुए अंतर्राष्ट्रीय शांति, सुरक्षा और सहयोग के आकांक्षी होते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व डाक संघ, अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन आदि सार्वभौमिक प्रकृति के संगठन हैं। प्रादेशिक संगठन किसी क्षेत्र विशेष के हितों की रक्षा के लिए स्थापित किए जाते हैं। इनकी सदस्यता सीमित होती है। अमेरिकी राज्य संगठन, वारसा संधि संगठन, यूरोपीय साझा बाजार, नाटो, सीटो आदि संगठन प्रादेशिक प्रकृति के हैं।
3. **कार्य के स्वरूप के आधार पर :** अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को प्रायः दो भागों में विभाजित किया जाता है (क) नीति निर्माण संबंधी (ख) प्रशासकीय संगठन। नीति निर्माण संबंधित संगठनों का उदाहरण है अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन। प्रशासकीय संगठनों में विश्व डाक संघ, अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय आदि उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार के संगठन प्रशासकीय सेवाओं और विवादों का समाधान करते हैं। कुछ संगठन ऐसे भी होते हैं जो प्रशासकीय और नीति–निर्माण संबंधी दोनों कार्य करते हैं, जैसे– संयुक्त राष्ट्र संघ।
4. **सत्ता के आधार पर :** अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का वर्गीकरण वैधानिक सत्ता प्राप्त एवं राजनीतिक सत्ता प्राप्त संगठनों के रूप में किया जाता है। वैधानिक सत्ता प्राप्त संगठन के निर्णय को स्वीकार करने के लिए सदस्य राष्ट्र कानूनी रूप से बाध्य होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय और कुछ हद तक सुरक्षा परिषद इस प्रकार के संगठन हैं जिनके कार्य और आदेशों का राज्यों और व्यक्तियों पर कानूनी तौर पर लागू होना आवश्यक है। जिन संगठनों को केवल राजनीतिक सत्ता प्राप्त होती है वे अधिक से अधिक सिफारिशें कर सकते हैं। उनको मानना या ना मानना राज्यों की इच्छा पर निर्भर होता है। यह संगठन राजनीतिक होते हैं जो किसी कार्य को प्रोत्साहन देने वाली सुविधाएं जुटाने में सहयोग देते हैं । संयुक्त राष्ट्र से संबंधित संगठन इसी कोटि में रखे जाएंगे।

1.2.5 अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की सीमाएं

अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की उत्पत्ति राज्य की भांति नैसर्गिक रूप से नहीं हुई है। यह कुछ संप्रभु राज्यों के समूह के समान उद्देश्यों, विचारधाराओं, क्षेत्र, विश्व शांति, राष्ट्रीय हित,

टिप्पणी

अर्थव्यवस्था या किसी भी आधार पर बनाए जाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का क्षेत्र और प्रकृति इसके गठन के आधार पर ही निश्चित होती है। चूंकि यह संस्थाएं निर्मित होती हैं अतः इनकी सीमाएं भी इनकी आंतरिक और बाह्य संरचना से संबंधित होती हैं। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की कुछ सीमाएं निम्नलिखित हैं–

1. **सांविधानिक सीमाएं**:– ये सीमाएं संगठन के प्रबंध और कार्यप्रणाली से संबंधित होती हैं। इसमें आंतरिक मामले सम्मिलित होते हैं। यह किसी भी अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्वयं से संबंधित सीमा होती है।
2. **तात्विक सीमाएं :** ये सीमाएं संगठन के बाह्य तत्वों से होती हैं। ये वे मसले होते हैं जिसके लिए अंतर्राष्ट्रीय संगठन बनाए जाते हैं तथा उनके समाधान के लिए संगठन एक सीमा तक की कार्रवाई कर सकता है।
3. **निष्ठापरक सीमाएं :** निष्ठापरक सीमाएं प्रत्येक अंतर्राष्ट्रीय संगठन के लिए समस्या है। यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय संगठन का क्षेत्र अत्यंत व्यापक होता है तथापि उसके सदस्यों की निष्ठा अपने देश के लिए अधिक और स्वाभाविक होती है। जबकि यह अंतर्राष्ट्रीय संगठन के लिए तुलनात्मक रूप से कम और दिखावे के लिए होती है, जिसका वह सदस्य है। इस प्रकार की अभिवृत्ति से संगठन आंतरिक रूप से कमजोर हो जाता है।
4. **सत्ता और साधनों संबंधी सीमाएं :** सैद्धांतिक रूप से अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का अपना संविधान आदि सब कुछ होता है किंतु व्यवहार में वे एक ऐसे शेर की भांति होते हैं जो राजा तो है लेकिन उसके दांत और नाखून नहीं हैं। साधनों के लिए ये अपने शक्तिशाली सदस्यों पर निर्भर रहते हैं जिससे आवश्यक कार्रवाई में देरी होती है तथा संगठन की प्रतिष्ठा कम होती है।
5. **सैन्य बल का अभाव :** यह एक विरोधाभासी तथ्य है कि होली एलायंस, राष्ट्र संघ और संयुक्त राष्ट्र संघ इन सभी की उत्पत्ति युद्धों से ही हुई है किंतु इनके पास अपने बल का अभाव रहा है। होली एलायंस और राष्ट्र संघ के पास सैन्य बल के लिए प्रावधान ही नहीं थे। संयुक्त राष्ट्र संघ ने आवश्यकता और परिस्थितियों के अनुसार शांति सेना का गठन किया है किंतु उसका व्यय वहन करना एक बड़ी समस्या है। इससे शांति स्थापना की दमनकारी प्रक्रियाओं को क्रियान्वित करने में भी बाधा उत्पन्न होती है।
6. **वित्तीय सीमाएं :** अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के अपने वित्तीय स्रोत नहीं होते हैं किंतु इनका वार्षिक व्यय बहुत अधिक होता है। वित्त के लिए अंतर्राष्ट्रीय संगठन अपने सदस्य राष्ट्रों की हिस्सेदारी पर निर्भर रहते हैं। वर्तमान में संयुक्त राष्ट्र संघ का वार्षिक बजट 50 बिलियन अमेरिकी डॉलर का है जिसका 22 प्रतिशत संयुक्त राज्य अमेरिका वहन करता है, शांति स्थापना के बजट का 28 प्रतिशत वहन करता है। भारत की हिस्सेदारी केवल 0.834 प्रतिशत की है। बजट में बड़ी हिस्सेदारी निर्णयों को भी बड़े स्तर पर प्रभावित करती है।
7. **शक्तिशाली सदस्यों का वर्चस्व :** अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में हमेशा शक्तिशाली सदस्यों का वर्चस्व रहा है। राष्ट्र संघ विजेता पक्ष द्वारा स्थापित था तथा संयुक्त

राष्ट्र संघ में भी अधिकतर विजित राष्ट्र ही स्थायी सदस्य हैं। इनकी आर्थिक स्थिति और सैन्य हिस्सेदारी सबसे अधिक है तथा साथ ही साथ निषेधाधिकार की शक्ति के निर्णयों को अपने पक्ष में करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

8. ढांचागत सीमाएं :– यदि इनिस क्लाडे के भवन उपागम का विश्लेषण करें तो स्पष्ट हो जाता है कि समय, आवश्यकता और परिस्थितियों के अनुसार भवन का विकास होता है। एक संरचना हमेशा के लिए नहीं होती है। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ हमेशा यह समस्या रही है कि उसके चार्टर या प्रसंविदा में संशोधन बहुत कठिन रहा है। इससे संगठन के ढांचे में आवश्यकता अनुसार परिवर्तन नहीं किए जा सकते हैं। निषेधाधिकार का अनावश्यक रूप से बार–बार प्रयोग भी ढांचागत परिवर्तन के मार्ग में एक बड़ी बाधा है। इसी कारण स्थायी सदस्यों की संख्या आज भी वही है जो स्थापना के समय थी।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. प्रथम हेग सम्मेलन कब हुआ था?
   (क) 1899 (ख) 1907
   (ग) 1895 (घ) 1905
2. द्वितीय हेग सम्मेलन में कितने राज्यों ने भाग लिया था?
   (क) 48 (ख) 49
   (ग) 44 (घ) 54
3. महासभा का जनक किसे कहा जाता हैं?
   (क) हेग सम्मेलन (ख) वियना कांग्रेस
   (ग) यूरोप कन्सर्ट (घ) कोई नहीं
4. अमेरिका संयुक्त राष्ट्र संघ के कुल वार्षिक बजट का कितना प्रतिशत वहन करता है?
   (क) 50 प्रतिशत (ख) 25 प्रतिशत
   (ग) 40 प्रतिशत (घ) 22 प्रतिशत

1.3 द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व अंतर्राष्ट्रीय संगठन का विकास

अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने अपने विकास के क्रम में एक बहुत लंबी यात्रा तय की है। अंतर्राष्ट्रीय संगठन का वर्तमान स्वरूप राष्ट्रीय राज्य व्यवस्था के समय से लगातार विकसित होता रहा है। राष्ट्रीय राज्य व्यवस्था अनेक शताब्दियों पूर्व अस्तित्व में आई थी। यह विकास यात्रा 1648 को वेस्टफेलिया कांग्रेस के समय से अधिक स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। अंतर्राष्ट्रीय संगठन के विकास को स्पष्टता और सुविधा की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

टिप्पणी

प्रथम महायुद्ध की विभीषिका ने संपूर्ण विश्व के जनमानस और नेतागणों को यह एहसास करा दिया था कि स्थायी रूप से शांति की स्थापना अंतर्राष्ट्रीय संगठन के द्वारा ही संभव हो सकती है। इस दिशा में पहला प्रयास था राष्ट्र संघ की स्थापना। प्रथम विश्व युद्ध के उपरांत विश्व रंगमंच पर कुछ अप्रत्याशित घटनाओं का घटित होना, नई विचारधारों का जन्म, विश्व के क्रम में परिवर्तन, अर्थव्यवस्था में भारी परिवर्तन, और विजेता राष्ट्रों के वर्चस्व में वृद्धि आदि कुछ कारणों ने अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के विकास को नए आयाम दिए। अग्रलिखित बिंदुओं का विश्लेषण करके दोनों विश्व युद्धों के मध्य अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के विकास के लिए उत्तरदायी कारणों को ज्ञात किया जा सकता है–

1. **वर्साय की संधि** : यह सर्व विदित है कि वर्साय की संधि की शर्तों ने अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के विकास की पृष्ठभूमि को मजबूती प्रदान की। इस संधि के द्वारा विजेता राष्ट्र अपने परिप्रेक्ष्य में अंतर्राष्ट्रीय संगठन स्थापित करना चाहते थे और पराजित राष्ट्र अपने हितों के संरक्षण के परिप्रेक्ष्य में। इस संधि के द्वारा पराजित राष्ट्रों में जिस भावना का विकास हुआ उसमें चिरस्थायी शांति संभव नहीं थी। ऐसी परिस्थिति में एक ऐसा संगठन आवश्यक था जो तटस्थ होकर दोनों तरफ कार्रवाई करे। राष्ट्र संघ भी वर्साय की संधि की ही उपज है।
2. **सामूहिक सुरक्षा का पतन** : प्रथम विश्व युद्ध के उपरांत विश्व में स्थायी शांति की स्थापना के लिए सामूहिक सुरक्षा प्रणाली को स्वीकार किया गया था। यूरोप वासियों को इस प्रणाली पर पूरा विश्वास हो गया था कि इसके बाद उन्हें युद्ध नहीं झेलना पड़ेगा। सामूहिक सुरक्षा के लिए फ्रांस ने एक लघु मंत्री संगठन का निर्माण किया। यूरोप की महाशक्तियों ने पेरिस, जिनेवा और लोकार्नो की संधियां कीं जिससे आपसी संघर्ष और युद्ध का शांतिपूर्वक निपटारा किया जा सके। ये सामूहिक सुरक्षा को शक्तिशाली बनाने वाले थे। 1931 के बाद होने वाली घटनाओं में सामूहिक सुरक्षा के पतन का घटनाक्रम आरंभ हो गया। 1931 में मंचूरिया पर जापानी आक्रमण, 1935 में इटली द्वारा अबीसीमिया पर आक्रमण की तैयारी। उपर्युक्त दोनों ही घटनाओं का राष्ट्र संघ की प्रतिष्ठा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा क्योंकि दोनों घटनाक्रमों में राष्ट्र संघ बुरी तरह असफल रहा, इससे सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा कमजोर पड़ गई।
3. **अधिनायकवादी शक्तियों का उदय** : पेरिस शांति सम्मेलन के पश्चात विश्व में लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकास को आवश्यक समझा जाने लगा परंतु यह लोकतांत्रिक संस्थाएं यूरोपीय लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित नहीं थी। यह वास्तव में सर्वहाराओं का अधिनायकवाद था, सोवियत संघ इसका सबसे सटीक उदाहरण है। जर्मनी में हिटलर के नेतृत्व में नाजीवाद का उत्कर्ष, इटली में फासीवाद और स्पेन में जनरल फ्रॉको का शासन, जापान का सर्व सत्तावादी दृष्टिकोण तथा अन्य गौण घटनाओं ने विश्व में नए समीकरणों को जन्म दिया। विश्व में स्पष्ट रूप से दो गुट बन गए जिसमें जर्मनी और इटली द्वारा स्थापित धुरी संगठन दिन–प्रतिदिन शक्तिशाली होता जा रहा था। कालांतर में जापान भी इसमें सम्मिलित हो गया था। ऐसे में अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के विकास का महत्व राष्ट्र और जनमानस के लिए और अधिक बढ़ गया।

टिप्पणी

4. **निशस्त्रीकरण की असफलता**– पेरिस शांति सम्मेलन में भाग लेने वाले सभी प्रतिनिधियों के मतानुसार युद्ध की आशंका को दूर रखने का सबसे अच्छा उपाय निशस्त्रीकरण है। निशस्त्रीकरण का प्रस्ताव पराजित राष्ट्रों पर तो कठोरता से लागू किया गया परंतु विजित राष्ट्रों को मुक्त रखा गया। पराजित राष्ट्रों ने अपनी ताकत बढ़ाने के लिए वर्साय की संधि की शर्तों का उल्लंघन करते हुए जर्मनी ने पुनः शस्त्रीकरण करना आरंभ किया तो इंग्लैंड ने जर्मनी को फ्रांस के विरोध के बावजूद सामरिक मदद की। इससे यूरोप में घबराहट का वातावरण उत्पन्न हो गया था। शक्तिशाली राष्ट्रों की ढील के कारण शस्त्रों की दौड़ एक बार फिर से शुरू हो गई। 1932 में राष्ट्र संघ के तत्वाधान में निशस्त्रीकरण सम्मेलन दो वर्ष तक चला परंतु इसका परिणाम असफल रहा। जर्मनी के पुनः शस्त्रीकरण के कारण फ्रांस ने जर्मनी के विरोध में मेजिनो लाइन बनाई और बाद में अपने शस्त्रों के भंडार को बढ़ाने में लिप्त हो गया। राष्ट्र संघ की हर मोर्चे पर असफलता ने नए और सक्षम अंतर्राष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता को सबके सामने ला दिया। शस्त्रीकरण की होड़ के कारण विश्व में दो सैनिक गुट अस्तित्व में आ गए, एक रोम–बर्लिन–टोक्यो धुरी और दूसरी ओर अमेरिका–सोवियत संघ–ब्रिटेन–फ्रांस। अंत में द्वितीय विश्व युद्ध भी इन्हीं के मध्य लड़ा गया।

5. **साम्राज्यवादी विचारधारा** : प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिका देखने के बाद भी शक्तिशाली राष्ट्र अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए निरंतर प्रयास करते रहे। 1931 में जापान ने मंचूरिया पर आक्रमण कर दिया था। 1937 में उसने चीन के साथ बिना घोषणा करे युद्ध शुरू कर दिया था। उसने दक्षिण पूर्वी एशिया में अपना विस्तृत साम्राज्य बनाने की योजना बना ली थी। जर्मनी में हिटलर अपने छीने गए प्रदेशों को वापस प्राप्त करना चाहता था जिससे वह ब्रिटेन और फ्रांस के समकक्ष बन जाए। इटली का अबीसीनिया पर आक्रमण इत्यादि घटनाओं को रोकने में राष्ट्र संघ असफल रहा तथा पुनः शक्तिशाली अंतर्राष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता महसूस की गई।

6. **अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संकट** : 1930 में विश्व में भीषण आर्थिक संकट उत्पन्न हुआ इससे विश्व की मजबूत अर्थव्यवस्थाएं भी चरमरा गईं। इस आर्थिक संकट ने साम्राज्यवाद को बढ़ावा दिया और साम्राज्यवाद ने पुनः शस्त्रीकरण को। आर्थिक संकट की आड़ में नाजीवाद, फासीवाद जैसी अधिनायकवादी विचारधाराएं उत्पन्न भी हुईं और मजबूत भी।

7. **अल्पसंख्यकों में व्याप्त असंतोष**: वर्साय संधि और बाद में होने वाली अनेकानेक संधियों में जो व्यवस्थाएं की गई थीं वे बहुसंख्यकों या विजित राष्ट्रों को ध्यान में रखकर की जाती थीं। इससे विश्व में लगभग सभी अल्पसंख्यकों में असुरक्षा और असंतोष की भावना व्याप्त हो गई थी। राष्ट्रपति विल्सन ने शांति संधियों का आधार राष्ट्रीय आत्म निर्णय के सिद्धांत को बनाने का प्रयास किया था किंतु उसका क्रियान्वयन उचित रीति से हो नहीं पाया। अल्पसंख्यक अपने राष्ट्र के साथ मिलने और स्वशासन की मांग कर रहे थे। अल्पसंख्यकों में व्याप्त असंतोष का लाभ अधिनायकवादी शक्तियों ने उठाया तभी इसकी पहले छोटे–छोटे संघर्षों में और बाद में विश्व युद्ध में परिणति हो गईं।

टिप्पणी

8. द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान संपन्न सम्मेलन : उपर्युक्त बिंदु अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के विकास में मुख्य कारण रहे हैं किंतु यदि प्रयत्नों के बारे में बात करें तो द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान 1941 से लेकर 1945 तक आठ सम्मेलनों की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है। सर्वप्रथम लंदन घोषणा में एक शक्तिशाली संगठन की स्थापना के संकेत मिलते हैं। दो माह के बाद ही अटलांटिक घोषणा संपन्न हुई। इस पर 26 देशों ने हस्ताक्षर किए तथा 44 देशों के हस्ताक्षर से FAO अस्तित्व में आया। अक्टूबर 1983 को मास्को में विदेश मंत्रियों का सम्मेलन संपन्न हुआ। इसके वक्तव्य अटलांटिक घोषणा से भी अधिक स्पष्ट थे। इसी वर्ष नवंबर में तेहरान में एक सम्मेलन संपन्न हुआ। इस सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि छोटे बड़े हर देश को सदस्यता के लिए आमंत्रित किया जाए। 1944 में डम्बर्टन ओक्स में 21 अगस्त से 7 दिसंबर, 1944 को सम्मेलन आयोजित किया गया, इसी में निषेधाधिकार को लेकर निर्णय लिया गया था। यह संभवतः सबसे लंबा चलने वाला सम्मेलन था। स्थापना को लेकर सबसे महत्वपूर्ण अंतिम सम्मेलन याल्टा में 4 से 11 फरवरी, 1945 के बीच हुआ। इस कड़ी में अंतिम सम्मेलन अप्रैल से 25 जून, 1945 तक सेनफ्रांसिस्को में हुआ। इसमें चार्टर को अंतिम रूप दिया गया था। 26 जून, 1945 को 50 देशों के प्रतिनिधियों ने चार्टर पर हस्ताक्षर किए, पोलैंड 51वां सदस्य बना। 24 अक्टूबर, 1945 को चार्टर लागू हो गया। चार्टर के लागू होने के साथ ही नई पीढ़ी का अंतर्राष्ट्रीय संगठन संसार के समक्ष था जिसके समक्ष नई संभावनाएं एवं नई चुनौतियां थीं।

1.3.1 प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व अंतर्राष्ट्रीय संगठन का विकास

प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व अंतर्राष्ट्रीय संगठन के विकास को निम्न प्रकार से समझाया गया है–

यूनानी नगर राज्य काल में : स्वर्णिम युग से बहुत पहले ही चीन, भारत मेसोपोटामिया एवं मिस्र सहित विश्व के अनेक भागों में एक प्रकार के अंतर्राज्यीय संबंधों का अस्तित्व था।

यूनानी राज्य के विभिन्न मंडलों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के कुछ ऐसे अल्पविकसित रूपों का विकास हो गया था जो कि किन्हीं दृष्टियों से आधुनिक कहे जा सकते हैं।

यूनानी राज्यों में शांति को सामान्य संबंध के रूप में देखा जाने लगा था। यद्यपि राजदूत नियमित रूप से नहीं रखे जाते थे तथापि उनका आदान–प्रदान होता रहता था। राज्यों को मान्यता देने के तरीके स्थापित हो चुके थे। वाणिज्यिक सेवाओं का विकास शुरू हो गया था। वाणिज्यिक तथा कूटनीतिक अधिकारियों को विशेष सुविधा प्रदान की जाती थी। कुछ ऐसी प्रथाओं या रिवाजों का समूह था जो आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय कानून से मिलती–जुलती थीं, जिनसे युद्ध एवं शांति की व्यवस्थाएं अनुशासित होती थीं। तृतीय पक्ष द्वारा न्याय की प्रथा का विकास संभवतः सर्वाधिक महत्वपूर्ण था और अंतर्राज्यीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के स्थायी अभिकरण भी थे। पंचनिर्णय सामान्य बात थी।

रोम के सार्वभौमिक साम्राज्य से वेस्टफेलिया तक : अंतर्राष्ट्रीय संगठन की दिशा में रोमन ने वैधानिक, सैनिक और प्रशासनिक तकनीकों की दिशा में योगदान किया और

जस जेंशियम का वह आधार स्थापित किया जो आगामी शताब्दियों में अंतर्राष्ट्रीय कानून का एक उर्वर स्रोत बन गया।

अंतर्राष्ट्रीय संगठन की दिशा में सन 1414 में 'कॉन्स्टेंस परिषद' एक महत्वपूर्ण कदम था, वह उस समय तक के इतिहास में एक बहुत ही दर्शनीय अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस थी जो पोप शाही के विरोधी दावों का समाधान करने के लिए और इस प्रकार यूरोप के राजनीतिक एवं आध्यात्मिक भाग्य की रूपरेखा निर्धारित करने के लिए आयोजित हुई थी।

टिप्पणी

द्वितीय हंसेटिक संघ बहुत ही महत्वपूर्ण था जिसका निर्माण मुख्यतः व्यापार विस्तार के लिए हुआ था लेकिन इसने एक प्रकार के राजनीतिक संगठन का रूप धारण कर लिया। मध्य युग में संभवतः सबसे अधिक महत्वपूर्ण और विख्यात परिसंघ वह था जो तीन स्विस कैण्टनों (उरी, श्वेज तथा अनटेरवलडन) के मध्य सन 1315 की एक संधि से विकसित हुआ था जिसमें चौदहवीं शताब्दी की समाप्ति से पूर्व पांच अन्य कैण्टन शामिल हो गए।

अंतर्राज्यीय पद्धति और अंतर्राष्ट्रीय संगठन के विकास की दिशा में राजनीतिक दार्शनिकों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने कल्पना की कि विश्व समाज अथवा विश्व प्राधिकारी ही आक्रमणकारी राष्ट्रों को उचित नियंत्रण में रखकर शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि कर सकता है। विश्व समाज का स्पष्ट चित्रण हमें 14वीं शताब्दी के दो दार्शनिकों, पियरे डुबोइश और दांते की रचनाओं से मिलता है।

पियरे डुबोइश ने अपनी पुस्तक The Recovery of Holyland में अंतर्राष्ट्रीय पंच निर्णय की व्यवस्था और अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना का विचार प्रकट किया। उसने इस बात पर बल दिया कि फ्रांसीसी सम्राट के नेतृत्व में संपूर्ण ईसाई जगत का एकीकरण किया जाए। पियरे डुबोइश ने अपनी योजना में सैनिक शक्ति की व्यवस्था की। उसने यह विचार प्रकट किया कि यदि कोई शासक वंश निर्णय अथवा शासकों की परिषद की अवहेलना करे तो आक्रमणकारी को रोकने के लिए सैनिक शक्ति का प्रयोग किया जाए।

इटली के दार्शनिक दांते ने अपने ग्रंथ मोनार्किया में यह विचार व्यक्त किया कि इटली और विश्व को अशांति से मुक्ति तभी मिल सकती है जब पोपशाही को लौकिक क्षेत्र से निष्कासित कर एक सर्वशक्ति संपन्न सम्राट की अधीनता में एक सर्वव्यापी साम्राज्य की स्थापना की जाए।

बोहेमिया के सम्राट पोडिब्रेड ने भी एक वास्तविक विश्वराज्य का विचार प्रस्तुत किया जिसके अंतर्गत सभी राज्यों का यह कर्तव्य था कि वे एक दूसरे की पारस्परिक सहायता करें और आपसी विवादों को पंच निर्णय के लिए प्रस्तुत करें। संगठन के आदेशों को लागू करने के लिए सैनिक शक्ति का प्रयोग वर्जित नहीं था। सन 1461 में पोडिब्रेड ने सुझाव दिया कि टर्की साम्राज्य के विरुद्ध फ्रांस, बोहेमिया और वेनिस को मिलाकर गठबंधन करना चाहिए।

कुछ समय बाद ऐसे लेखक नहीं हुए जिन्होंने गैर ईसाई धर्मावलंबी राज्यों को भी विश्व में स्थान देना उपयुक्त समझा। विक्टोरिया, सुरेज, जेटिली आदि लेखकों ने मानव जाति और विश्व समाज की मजबूती का विचार प्रस्तुत किया। ग्रोशियस आदि ने कहा कि धर्म के आधार पर किसी भी देश का विरोध अनुचित है।

टिप्पणी

सन 1623 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'ले नवो साइनी' में एमरिक क्रूसे ने एक ऐसे विश्व संघ के निर्माण का विचार रखा जिसमें चीन, फ्रांस, इंग्लैंड आदि भी सम्मिलित थे। क्रूसे की योजना सभी पूर्व ग्राम योजनाओं की अपेक्षा अधिक उत्तम थी। वह बीसवीं शताब्दी में भी उतनी ही मान्य है जितनी 1620 में थी। क्लाडे इंगिल्टन ने क्रूसे की योजना को राष्ट्र संघ के उल्लेख में पूर्वगामी माना है।

उसी समय फ्रांसीसी सम्राट हेनरी चतुर्थ की 'ग्रेण्ड डिजाइन' नामक योजना प्रकाश में आई जिसे वास्तव में डक–डि–सली ने प्रस्तुत किया था। किंतु संस्मरण में इसका श्रेय फ्रांसीसी सम्राट को दिया गया। योजना के अंतर्गत 15 सदस्यीय यूरोपीय संघ शासन की व्यवस्था की गई जिसमें संघीय सीनेट का कर्तव्य था कि वह इस बात का निश्चय करें कि प्रत्येक सदस्य राज्य संघ शासन के अधीन कितनी सशक्त सेना रखे। इसमें यह भी प्रस्तावित किया गया कि सीनेट संघ शासन के लिए एक प्रबंध निकाय का कार्य करेगी और सदस्यों के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों का निपटारा करेगी।

वेस्टफेलिया से वियाना तक : पामर एवं पार्किन्स के अनुसार, मध्ययुगीन व्यवस्था की समाप्ति तथा 15वीं, 16वीं और 17वीं शताब्दी में शनैः शनैः प्रोटेस्टेंट सुधार आंदोलन, कैथोलिक पुनर्जागरण, खोजों और अवशेषों के फलस्वरूप व्यापार और वाणिज्य के विस्तार तथा वर्तमान राज्य व्यवस्था के उदय के साथ अंतर्राष्ट्रीय संबंधों ने एक नई दिशा और स्वरूप ग्रहण किया। वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय समाज के सिद्धांत और व्यवहार मूल रूप धारण करने लगे तथा संस्थाएं विकसित होने लगीं। यद्यपि इन सिद्धांतों, व्यवहार और संस्थाओं का 19वीं एवं 20वीं शताब्दी से पूर्व पूर्ण विकास नहीं हो सका था तथापि अंतर्राष्ट्रीय संगठन के भावी स्वरूप के ये प्रभावी आधार स्तंभ बने। मेकियावली ने उन व्यवहारों का, जो उत्तरी इटली के नगर राज्यों के आपसी संबंधों में प्रचलित थे, 15वीं शताब्दी के अंतिम और 16वीं शताब्दी के प्रारंभिक भाग में प्रतिपादन किया और अंतर्राज्यीय संबंधों के अध्ययन को एक नई वास्तविकता प्रदान की। फ्रांसीसी विद्वान बोंदा ने 16वीं शताब्दी में संप्रभुता की वैज्ञानिक धारणा का निरूपण किया जिसे आमतौर पर राष्ट्रीय राज्य की विशेषताओं में सर्वाधिक आधारभूत समझा जाता है। ग्रोशियस ने अपनी रचनाओं द्वारा राज्यों में कानून के विकास की आधारशिला रखी। उसने इस मान्यता को अस्वीकार कर दिया कि संप्रभुता अथवा संप्रभु निरंकुश और निरपेक्ष है। उसने कहा कि समुदाय अथवा समाज के लिए जो नियम होते हैं वह युद्ध के संबंध और युद्ध की अवधि दोनों ही संदर्भों में वैध होते हैं।

सन 1648 में आयोजित होने वाली वेस्टफेलिया कांग्रेस अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के विकास की दिशा में एक बहुत ही महत्वपूर्ण कदम था। यद्यपि इसने किसी अंतर्राष्ट्रीय संगठन को जन्म नहीं दिया तथापि यह इस दृष्टि से महत्वपूर्ण थी कि इसमें विभिन्न देशों के सैकड़ों कूटनीतिज्ञ सम्मिलित हुए थे जो यूरोप के प्रत्येक राजनीतिक हित का प्रतिनिधित्व करते थे तथा कांग्रेस के निर्णय परस्पर विचार–विमर्श के बाद लिए गए थे।

17वीं, 18वीं शताब्दी में अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के निर्माण और शांतिपूर्ण संबंधों के विकास के लिए अनेक योजनाएं प्रकाश में आईं। विलियम पेन, बेंथम, काण्ट आदि विचारकों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

सन 1713 के यूटैक्ट सम्मेलन के बाद संत पियरे ने Project of Perpetual Peace नामक योजना प्रस्तुत की जिसका अनेक तत्कालीन दार्शनिकों ने समर्थन किया।

संत पियरे की योजना के आधार पर बाद में विख्यात दार्शनिक रूसो ने 1761 में संपूर्ण यूरोप के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन की योजना प्रस्तुत की जिसका प्रशासन कुछ निश्चित नियमों के आधार पर चलाया जाना था।

टिप्पणी

रूसो के उपरांत अंग्रेज विचारक जर्मी बेंथम ने अपनी पुस्तक Principles of International Law में लिखा है कि युद्धों को रक्षात्मक समझौतों, उपनिवेशवाद की समाप्ति तथा निशस्त्रीकरण द्वारा रोका जा सकता है। उसने सुझाव दिया कि शांति कायम रखने के लिए आपसी समझौतों द्वारा यूरोपीय राज्यों की सैनिक शक्ति कम कर दी जाए और अंतर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरण की स्थापना की जाए जो अपने निर्णय लागू कराने की दृष्टि से पर्याप्त रूप से सैनिक शक्ति संपन्न हो।

विख्यात दार्शनिक काण्ट ने 1795 में प्रकाशित अपनी पुस्तक Towards External Peace में विश्व शांति की स्थापना के लिए संघात्मक अंतर्राष्ट्रीय संस्था की कल्पना की।

जैसे कि कहा जा चुका है 18वीं शताब्दी में उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के प्रसार के फलस्वरूप विश्व के राज्यों के मध्य संबंधों के नियमन के लिए संधि, समझौते, सम्मेलनों आदि का व्यवहार सामान्य बन गया। नेपोलियन युद्धों के भीषण कष्टों से यूरोप के शासकों की आंखें खुल गईं और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की अनेक संस्थाओं का विकास हुआ। नेपोलियन की पराजय के बाद यूरोप की राजनीतिक समस्याओं को सुलझाने के लिए वियना कांग्रेस द्वारा सन 1814–15 में प्रयास किए गए।

वियना से वर्साय तक : वियना कांग्रेस, नेपोलियन के पराभव के बाद, युद्धों को रोकने और यूरोप की राजनीतिक समस्याओं के समाधान के लिए आयोजित की गई। यूरोप के शासक पुरातन व्यवस्था को पुनः स्थापित करने हेतु किए गए प्रयत्नों में आंशिक और अस्थायी रूप से ही सफल हुए। अपने कार्यों से जाने–अनजाने में उन्होंने एक ऐसी राजनीतिक और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की आधारशिला रख दी जो लगभग एक शताब्दी तक विश्व मामलों का मार्गनिर्देशन करती रही।

वियना कांग्रेस द्वारा स्थापित यूरोपीय व्यवस्था को यथार्थतः प्रथम अंतर्राष्ट्रीय संगठन कहा जा सकता है, जिसकी आधारशिला पर ही कालांतर में राष्ट्र संघ और संयुक्त राष्ट्र संघ का निर्माण हुआ।

संयुक्त व्यवस्था स्थापित करने की दिशा में प्रथम योजना पवित्र मैत्री थी जिसे बनाने का श्रेय रूस के जार एलेक्जेंडर को प्राप्त हुआ। हेग के सम्मेलन के साथ–साथ जो अंतर्राष्ट्रीय शांति आंदोलन आरंभ हुआ उसमें पवित्र मैत्री के शुभ परिणाम दृष्टिगोचर हुए। पवित्र मैत्री में राष्ट्र संघ की योजना के संकेत भी देखने को मिले।

सन 1815 में रूस, प्रशा, ऑस्ट्रेलिया और ब्रिटेन ने एक चतुर्मुखी मैत्री का निर्माण किया जो यूरोप की संयुक्त व्यवस्था का आधार बना। वस्तुतः यदि पवित्र मैत्री यूरोपीय व्यवस्था का नैतिक और धार्मिक स्वरूप थी तो चतुर्मुखी मैत्री राजनीतिक और व्यवहारिक रूप थी जो काफी समय तक यूरोप के राजनीतिक मामलों का संचालन

टिप्पणी

करती है। फ्रांस के सम्मिलित होने से यह पंचमुखी मैत्री बन गई। चीवर तथा हेविलैंड के अनुसार, यह विकास अंतर्राष्ट्रीय संगठन के इतिहास में महत्वपूर्ण था।

अंतर्राष्ट्रीय संगठन के इतिहास में एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण विकास 19वीं शताब्दी के अंत तक तथा 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में अनेक अंतर्राष्ट्रीय प्रशासकीय अभिकरणों अथवा सार्वजनिक अंतर्राष्ट्रीय संघों का उदय होना है। आर्थिक और सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में राष्ट्रों के मध्य अनिवार्य सहयोग की मांग इन संगठनों के उदय का कारण थी। इस प्रकार के जो संगठन अस्तित्व में आए उनमें से कुछ उल्लेखनीय थे– डेन्यूब संबंधी यूरोपीय आयोग (1856), अंतर्राष्ट्रीय गोडेटिक संघ (1864), अंतर्राष्ट्रीय टेलीग्राफ ब्यूरो (1856), अंतर्राष्ट्रीय डाक संघ (1875), अंतर्राष्ट्रीय नापतोल ब्यूरो (1875), अंतर्राष्ट्रीय कॉपीराइट संघ (1886), सार्वजनिक स्वास्थ्य संबंधी अंतर्राष्ट्रीय कार्यालय (1903) तथा अंतर्राष्ट्रीय कृषि संस्थान (1905)। इनमें से कुछ संगठन आज भी अस्तित्व में हैं और अनेक अपने दायित्व और कार्यों को संयुक्त राष्ट्र संघ में अभिकरणों को सौंप चुके हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ से संबद्ध ऐसी ही संस्था अंतर्राष्ट्रीय डाक संघ है जिसे मेनगोने ने राष्ट्रों के इतिहास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में से एक कह के पुकारा है।

प्रथम महायुद्व से पहले जो प्रमुख सम्मेलन हुए उनमें 1899 तथा 1907 के हेग सम्मेलन विशेष महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि इन सम्मेलनों का इतिहास मुख्यतः अंतर्राष्ट्रीय कानून के विकास से संबंधित है, तथापि इसका अंतर्राष्ट्रीय संगठन के विकास की दृष्टि से भी कम महत्व नहीं है।

प्रथम महायुद्ध से पूर्व अर्थात राष्ट्र संघ की स्थापना से पहले सरकारी तथा गैर सरकारी रूप से या राजनीतिक तथा गैर राजनीतिक स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और संगठन की दिशा में जो विभिन्न प्रयत्न और विकास हुए, उन्हें निष्कर्ष रूप में लियोनार्ड ने निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया है।

1 संप्रभु राज्यों ने विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए परस्पर सहयोग के लिए अधिक स्थायी व उपयुक्त तरीकों की आवश्यकता महसूस की।

2 राज्यों ने इन विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की स्थापना की। फिर भी किसी विश्व संघ की कलात्मक योजना के अनुसार कार्रवाई के लिए कोई सुस्थिर तरीका या नियम नहीं था। सरकारों ने एकता और विश्व शांति हेतु योगदान में अंतर्राष्ट्रीय संगठन के प्रति विशेष रुचि नहीं दिखाई बल्कि अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में उनकी रुचि किसी विशेष समस्या की कार्रवाई को कुछ सुविधाजनक बनाने के एक साधन के रूप में ही रही।

3 गैर राजनीतिक क्षेत्रों में संगठनों की स्थापना हुई जो अधिक सारपूर्ण और संरचनात्मक दृष्टि से अधिक निखरे हुए थे जबकि राजनीतिक क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय संगठन के किसी उपयुक्त ढांचे का विकास तो नहीं हुआ लेकिन ऐसी प्रक्रिया अवश्य विकसित हुई थी जिन्हें भावी अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा अपनाया गया।

4 अनेक क्षेत्रीय अंतर्राष्ट्रीय संगठन पनपने लगे।

5 अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के ढांचे में एक जैसे तत्व उभरने लगे। उदाहरण के लिए चार्टर या संविधान, नीति निर्माता अंग, स्थायी स्टाफ अथवा सचिवालय, सदस्यों के दायित्व, संगठन के लिए विशेष रूप से परिभाषित कार्य तथा कार्य संचालन के लिए वित्तीय प्रबंधन आदि तत्व प्रकाश में आ गए।

1.3.2 राष्ट्र संघ : कार्य एवं मूल्यांकन

टिप्पणी

राष्ट्र संघ (संगठन) की कल्पना 'वर्साय संधि' 1919 के बहुत पहले हो चुकी थी। राष्ट्रपति विल्सन को राष्ट्र संघ का जनक कहा जाता है। पेरिस के शांति सम्मेलन में राष्ट्र संघ के संविधान को तैयार करने के लिए विल्सन की अध्यक्षता में 19 सदस्यों के एक आयोग की स्थापना की गई। इस आयोग में छोटे राष्ट्रों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिला। 14 जनवरी, 1919 को आयोग द्वारा एक प्रस्ताव सम्मेलन में विचारार्थ प्रस्तुत किया गया जिसे 28 अप्रैल, 1919 को कुछ सामान्य संशोधनों सहित स्वीकृत कर लिया गया। राष्ट्र संघ को शांति संधियों का अभिन्न अंग बनाया गया।

राष्ट्र संघ की प्रकृति

राष्ट्र संघ की प्रकृति का विवेचन करते हुए आर्गेन्स्की ने लिखा है, यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि राष्ट्र संघ अंतर्राष्ट्रीय सरकार नहीं थी। वह संप्रभुता संपन्न राज्यों का एक ऐसा ऐच्छिक संगठन था जिसके सदस्यों ने प्रतिज्ञा पत्र में वर्णित हुए नैतिक और आर्थिक दायित्व को स्वीकार कर लिया था परंतु इससे अधिक कुछ नहीं।

मार्गेन्थाऊ ने इस संबंध में लिखा है, राष्ट्र संघ पवित्र मैत्री संघ के विपरीत एक वास्तविक संगठन था जिसका वैधानिक व्यक्तित्व था और उसके अभिकर्ता और अभिकरण थे।

राष्ट्र संघ के उद्देश्य

प्रसंविदा के अनुसार, राष्ट्र संघ के दो प्रधान उद्देश्य थे। पहला, अंतर्राष्ट्रीय सहकारिता का संप्रवर्तन तथा शांति और सुरक्षा की उपलब्धि और दूसरा, सामाजिक कल्याण।

प्रसंविदा के अनुच्छेदों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने के उपरांत राष्ट्र संघ के निम्नलिखित प्रयोजन प्रतीत होते हैं–

1. युद्धों की रोकथाम।
2. राष्ट्रों के मध्य सम्मानजनक और प्रतिष्ठापूर्वक संबंध स्थापित करना।
3. राष्ट्रों के पारस्परिक संबंधों का नियमन करने में अंतर्राष्ट्रीय कानूनों को मान्यता प्रदान करना।
4. राष्ट्रों द्वारा सभी अंतर्राष्ट्रीय संधियों और समझौतों का सम्मान करना और उन पर न्यायपूर्ण आचरण करना।
5. वर्साय संधि को क्रियान्वित करना।
6. अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित करना तथा अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाए रखना।

टिप्पणी

राष्ट्र संघ की सदस्यता

प्रारंभ में राष्ट्र संघ के 52 राष्ट्र सदस्य थे, किंतु बाद में बढ़कर 57 हो गए, राष्ट्र संघ में तीन प्रकार के सदस्य थे–

1 वे राष्ट्र जो इसके मौलिक सदस्य थे इनकी संख्या 32 थी।

2 आमंत्रित राष्ट्र जिनकी संख्या 13 थी तथा

3 समझौता पत्र लागू होने के बाद बनाए गए सदस्य राष्ट्र 1 अप्रैल, 1920 में राष्ट्र संघ के 42 सदस्य थे, 21 राष्ट्र बाद में प्रविष्ट हुए।

राष्ट्र संघ के संविधान में यह व्यवस्था की गई कि यदि कोई देश अंतर्राष्ट्रीय दायित्वों को स्वीकार करने, सैनिक शक्ति और शस्त्रास्त्रों के संबंध में राष्ट्र संघ द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करने पर अपनी सहमति प्रकट करे तथा राष्ट्र संघ की सभा के सदस्य दो तिहाई मतों से उसे सदस्य बनाने के लिए अपनी सहमति प्रदान करें तो उसे राष्ट्र संघ का सदस्य बनाया जा सकेगा। किसी भी सदस्य राष्ट्र को परिषद की सर्वसहमति से राष्ट्र संघ से पृथक किया जा सकता था।

सदस्यता का प्रत्याहरण : राष्ट्र संघ प्रसंविदा के अंतर्गत सदस्य अपनी सदस्यता निम्नलिखित परिस्थितियों में वापस ले सकते थे–

1 दो वर्ष की पूर्व सूचना देकर कोई भी सदस्य राष्ट्र संघ की सदस्यता त्याग सकता था।

2 कोई भी सदस्य राज्य किसी संशोधन से असंतुष्ट होकर अपनी सदस्यता का परित्याग कर सकता था, लेकिन अलग होने से पहले उसे सभी सम्मानित एवं प्रसंविदा के अंतर्गत दायित्व पूरे करने होते थे।

3 यदि कोई सदस्य राज्य अपना उत्तरदायित्व निभाने में असमर्थ पाया जाता था तो परिषद की सर्वसम्मति से उसे राष्ट्र संघ से निकाला भी जा सकता था। सन 1937–38 के बीच राष्ट्र संघ के सदस्य 58 संप्रभु राज्य थे और एक समय राष्ट्र संघ के सदस्यों की संख्या 62 तक पहुंच चुकी थी, पर अप्रैल 1946 में राशन की सभा के अंतिम अधिवेशन के समय 34 राष्ट्र सदस्य बचे थे और शेष सदस्य राज्य भिन्न–भिन्न कारणों से इससे पृथक हो गए थे।

राष्ट्र संघ का विधिक स्वरूप

राष्ट्र संघ के विरोधियों ने इसे तरह–तरह की संज्ञाएं दीं। सोवियत संघ ने राष्ट्र संघ को एक कूट अंतर्राष्ट्रीय निकाय के रूप में रूस के विरुद्ध पश्चिम का षड्यंत्र बताया जिसके द्वारा कुछ संयुक्त शक्तियां दूसरे राज्य को हड़पना चाहती थीं। लेकिन इस तरह की धारणा सत्यता से बहुत दूर थी। कुछ विरोधियों ने इसे अधिराज्य बताया था जो इस तथ्य को अंतर्निहित किए हुए था कि राष्ट्र संघ के सदस्य बनने वाले राज्य उसके उपरांत अपनी संप्रभुता एवं स्वतंत्रता खो देंगे लेकिन सदस्य राज्यों ने राष्ट्र संघ में प्रवेश करने के पश्चात भी अपनी संप्रभुता एवं स्वतंत्रता का परित्याग नहीं किया।

राष्ट्र संघ की प्रसंविदा के अनुच्छेद 51 के अनुसार सभी महत्वपूर्ण निर्णयों में राष्ट्र संघ की परिषद एवं सभा में सर्वसम्मति के सिद्धांत ने अपने सदस्यों में से किसी एक की भी इच्छा के विरुद्ध निर्णय लेने की संभावना को समाप्त कर दिया। इस तरह यह

स्पष्ट हो जाता है राष्ट्र संघ कोई विश्व राज्य या विश्व सरकार नहीं था जो अपने निर्णय को व्यक्तिगत सदस्यों के उनके पृथक अनुमोदन के लिए प्रस्तुत किए बिना ही अपने नाम पर क्रियाशील होने का अधिकार रखता हो।

कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि जिस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय कानून सामान्य रूप से संप्रभु राज्य पर अवरोध आरोपित करता है उसी प्रकार राष्ट्र संघ की सदस्यता से ग्रहण किए गए दायित्व ने सदस्य राज्यों पर अवरोध अधिरोपित किया था और उनकी संप्रभुता को भी सीमित कर रखा था। इसलिए राष्ट्र संघ एक अधिराज्य से कम नहीं था। ऐसे विचार नितांत भ्रमजन्य हैं। वस्तुतः राष्ट्र संघ ना अधिराज्य था, ना उसने राज्यों की संप्रभुता को आत्मसात किया और ना ही उनकी हैसियत घटाकर उन्हें संरक्षित राज्य की स्थिति में रखा।

टिप्पणी

अपनी सामान्य संरचना में राष्ट्र संघ का दर्जा संभवत महापरिसंघ के रूप में दर्शाया जा सकता है जो राज्यों का एक शिथिल संघ था और जिसमें सदस्य राज्य अपनी प्रकृति, संप्रभुता एवं स्वतंत्रता से वंचित हुए बिना अपने को कतिपय विशिष्ट प्रयोजनों की पूर्ति के लिए संबद्ध कर चुके थे। वास्तव में राष्ट्र संघ सदस्य राज्यों के मध्य एक सहकारिता की लिखित सहमति थी।

राष्ट्र संघ का अपना निजी सामूहिक स्वरूप था क्योंकि वह अपने स्वयं के नाम पर संपत्ति का हक लेने में सक्षम था। राष्ट्र संघ सामूहिक निकाय के रूप में संविदाएं करने तथा अधिकार प्राप्त करने एवं दायित्व ग्रहण करने में समर्थ था। यह सार्वजनिक अंतर्राष्ट्रीय सेवाओं का प्रशासन करने एवं विशेष राज्यों के लिए न्यासी के रूप में कार्य करने में सक्षम था और अपने पदभिहित अभिकर्ताओं द्वारा प्रदेश का प्रशासन तथा आश्रित अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति के अभिभावक एवं संरक्षक के रूप में कार्य करने में समर्थ था। राष्ट्रसंघ स्वतः अपने सदस्यों के प्रदेश में इस प्रकार विधिक क्षमता तथा ऐसे विशेषाधिकार एवं उन्मुक्तियों का उपभोग कर सकता था, जो उसके कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए आवश्यक थी। यद्यपि राष्ट्र संघ की प्रसंविदा में उसके सामूहिक समरूप के विषय में कोई भी स्पष्ट उपबंध नहीं थे तथापि व्यावहारिक दृष्टिकोण से राष्ट्र संघ को अंतर्राष्ट्रीय एवं देशिक– दोनों ही विधिक व्यक्तित्व प्राप्त थे, क्योंकि उनके बिना वह अपने कार्य को दक्षतापूर्वक करने में समर्थ नहीं होता।

राष्ट्र संघ के अंग

राष्ट्र संघ में निम्नलिखित तीन मुख्य अंगों की स्थापना की गई थी–

1 सभा

2 परिषद

3 सचिवालय

राष्ट्र संघ के उपर्युक्त मुख्य अंगों के अतिरिक्त उसमें कुछ सहायक एवं स्वायत्त निकाय भी थे, जिन्होंने गैर राजनीतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। इनमें निम्नांकित दो अत्यंत महत्वपूर्ण थे–

1 स्थायी अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय।

2 अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन।

टिप्पणी

सभा : सभा में सभी सदस्य देशों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। प्रत्येक राज्य तीन प्रतिनिधि तक भी भेज सकता था परंतु प्रत्येक सदस्य राज्य केवल एक वोट देने का अधिकारी था। सभा का वर्ष में कम से कम एक अधिवेशन (सितंबर माह में) होता था और आवश्यकता पड़ने पर विशेष सम्मेलन भी बुलाया जा सकता था। सभा में अध्यक्ष का चुनाव सदस्यों द्वारा ही किया जाता था और वही अपने लिए नियम बनाते थे। जिन मामलों पर विचार करना होता था उसे महासचिव द्वारा पहले ही तैयार कर लिया जाता था। आवश्यकता पड़ने पर सभा उसमें परिवर्तन कर सकती थी।

सभा के सभी कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए विशेष समितियों की स्थापना की गई थी – 1. संवैधानिक तथा कानूनी मामलों से संबंधित समिति 2. राजनीतिक समिति 3. सामाजिक और मानवीय मामलों से संबंधित समिति 4. बजट समिति 5. संगठन समिति तथा 6. निशस्त्रीकरण समिति।

सभा में विश्व शांति से संबंधित अथवा राष्ट्र संघ के कार्य क्षेत्र में आने वाले किसी भी विषय पर विचार किया जा सकता था। परंतु इन समस्याओं के समाधान के लिए निर्णय बाध्यकारी न होकर केवल सिफारिश मात्र होते थे। सभा को निम्न विषयों पर विशेष अधिकार प्राप्त थे–

1. राष्ट्र संघ के बजट का निर्धारण करना।
2. सुपरवाइजरी कमीशन की स्थापना करना।
3. राष्ट्र संघ के अधिकार पत्र में संशोधन करना।
4. दो तिहाई बहुमत के समर्थन से नवीन राष्ट्र को राष्ट्र संघ की सदस्यता प्रदान करना।
5. परिषद के अस्थायी सदस्यों का निर्वाचन करना।
6. परिषद के अस्थायी एवं स्थायी सदस्यों की संख्या में वृद्धि का अधिकार।
7. परिषद के लिए नामजद किए जाने वाले नए सदस्यों की पुष्टि करना।

सभा प्रतिवर्ष बहुमत के आधार पर परिषद के लिए तीन स्थायी सदस्यों का निर्वाचन करती थी और प्रति वर्ष बहुमत द्वारा अस्थायी न्यायालय के लिए न्यायाधीशों का निर्वाचन करती थी। सभा परिषद की सिफारिश पर महासचिव का भी निर्वाचन करती थी। सभा में एक अध्यक्ष और 6 उपाध्यक्ष होते थे।

सभा के सभी निर्णयों में समस्त सदस्य राष्ट्रों की सहमति होना जरूरी था परंतु कार्य विधि से संबंधित सभी निर्णय बहुमत द्वारा किए जा सकते थे।

परिषद : प्रारंभ में राष्ट्र संघ की परिषद के पांच स्थायी सदस्य ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका, इटली और जापान थे। परंतु अमेरिकन सीनेट की स्वीकृति नहीं मिलने के कारण अमेरिका राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं बन सका। तत्पश्चात 8 सितंबर, 1921 को जर्मनी को परिषद का स्थायी सदस्य बना लिया गया और अस्थायी सदस्यों की संख्या में भी वृद्धि करके पहले 6 और उसके बाद 9 निश्चित कर दी गई थी। परिषद के अस्थायी एवं स्थायी सदस्यों की संख्या में बराबर वृद्धि अथवा कमी होती रही। जहां सदस्य राष्ट्रों के स्वार्थ टकराए, वहीं उन्होंने राष्ट्र संघ की स्थायी सदस्यता को

त्याग दिया। 1939 से पूर्वी जर्मनी और इटली ने राष्ट्र संघ की स्थायी सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया और युद्ध प्रारंभ होने के बाद राष्ट्र संघ बिल्कुल प्रभावहीन हो गया।

टिप्पणी

परिषद उन सभी मामलों पर विचार–विमर्श कर सकती थी जिन मामलों पर सभा में विचार किया जा सकता था। परिषद की बैठक तीन माह में एक बार होती थी तथा आवश्यकता होने पर कभी भी बुलाई जा सकती थी। परिषद का सबसे मुख्य कार्य अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण ढंग से समाधान करना था। इसके अतिरिक्त निशस्त्रीकरण संबंधी प्रयास करना, बाहरी आक्रमणों से सदस्य राष्ट्रों की प्रादेशिक अखंडता की रक्षा करना, संरक्षित प्रदेशों के शासन की रिपोर्ट पर विचार करना, सभा की सिफारिशों को क्रियान्वित करना, अन्य प्रशासकीय कार्य करना तथा अंतर्राष्ट्रीय शांति के लिए सैनिक कार्रवाई का निश्चय करना आदि परिषद के कार्य थे। महासचिव की नामजदगी, सचिवालय के कर्मचारियों की नियुक्ति, आदि कार्य भी परिषद के माध्यम से संपन्न होते थे। यह राष्ट्र संघ की सर्वाधिक महत्व की संस्था थी।

सचिवालय– राष्ट्र संघ का स्थायी प्रशासनिक अंग सचिवालय था। इसका मुख्यालय जेनेवा में था जिसमें विभिन्न राष्ट्रों के 600 कर्मचारी कार्यरत थे जो अपने कार्यों के लिए राष्ट्र संघ के प्रति ही उत्तरदायी थे और उनका प्रशासनिक अधिकारी महासचिव होता था। राष्ट्र संघ के कार्यों को सुचारू रूप से चलाने में सचिवालय का महत्वपूर्ण योगदान था। इसका मुख्य कार्य सभा एवं परिषद के लिए विचारणीय बिंदुओं की सूची तैयार करना और उनका प्रशासन करना, बैठकों की कार्रवाई का विवरण तैयार करना एवं अन्य प्रशासनिक कार्यों का संपादन करना था।

राष्ट्र संघ के मुख्य कार्य

प्रसंविदा के अनुसार राष्ट्र संघ के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

1 प्रशासनिक कार्य।

2 संरक्षण संबंधी कार्य।

3 अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा करना।

4 सामाजिक और आर्थिक कार्य।

5 अंतर्राष्ट्रीय शांति और व्यवस्था की स्थापना करना।

1. प्रशासनिक कार्य : राष्ट्र संघ वर्साय की संधि की उपज था और उससे आशा की गई थी कि यह शांति संधियों के क्रियान्वयन में सहयोग देगा। राष्ट्र संघ पर संधियों को लागू कराने की जिम्मेदारी थी। इतना ही नहीं, संधियों के सामान्य प्रशासन के अतिरिक्त भी राष्ट्र संघ को सार की घाटी और डेन्जिंग के प्रशासन की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। वर्साय की संधि के द्वारा सार बेसिन पर 15 वर्ष तक शासन करने का अधिकार राष्ट्र संघ को दिया गया। अंत में जनमत संग्रह द्वारा 1935 में सार का प्रशासन जर्मनी को सौंप दिया गया।

डेन्जिंग एक जर्मन बहुल प्रदेश था किंतु पोलैंड को संतुष्ट करने हेतु उसे भी जर्मनी से अलग कर राष्ट्र संघ के संरक्षण में एक स्वतंत्र नगर बना दिया गया और इसके प्रशासन हेतु एक हाई कमिश्नर की नियुक्ति की गई। पोलैंड और डेन्जिंग के

बीच तनाव बराबर बना रहा जिसके कारण राष्ट्र संघ डेन्जिंग प्रशासन में असफल रहा। वास्तव में डेन्जिंग और पोलिश गलियारे की समस्या भी द्वितीय विश्व युद्ध में सहायक हुई।

टिप्पणी

2. संरक्षण संबंधी कार्य : यह व्यवस्था पराजित धुरी राष्ट्रों से प्राप्त उपनिवेशों के संबंध में राष्ट्र संघ के द्वारा स्थापित की गई। इस व्यवस्था के अंतर्गत जर्मन साम्राज्य से प्राप्त उपनिवेशों और टर्की साम्राज्य के अरब प्रायद्वीप के निवासियों की उन्नति और कल्याण का कार्य राष्ट्र संघ को सौंपा गया। इस उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए राष्ट्र संघ को जो प्रदेश और उपनिवेश प्राप्त हुए उनके शासन का अधिकार विभिन्न सदस्य राष्ट्रों को ही सौंपा गया जिन्हें संरक्षक राज्य की संज्ञा दी गई। ये संरक्षक राज्य राष्ट्र संघ के समझौते के अनुसार इन सौंपे गए प्रदेशों का शासन करते थे तथा इसकी वार्षिक रिपोर्ट राष्ट्र संघ की परिषद को भेजते थे

राष्ट्र संघ का स्थायी सुरक्षा आयोग इन रिपोर्टों की जांच करता, याचिकाएं सुनता, और परिषद को आवश्यक सिफारिशें प्रस्तुत करता था।

संरक्षित क्षेत्रों को 'ए', 'बी' और 'सी' तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया। ब्रिटेन, फ्रांस, न्यूजीलैंड, ऑस्ट्रेलिया, बेल्जियम, जापान और दक्षिण अफ्रीका संघ को संरक्षक राज्य बनाया गया था किंतु इस व्यवस्था का सबसे अधिक लाभ फ्रांस और ब्रिटेन को मिला। इसका मुख्य कारण यह था कि यह व्यवस्था शोषण और साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का ही एक नवीन रूप थी। इस प्रणाली के माध्यम से संरक्षक राज्य ने अपने राष्ट्रीय स्वार्थों की पूर्ति की। इस व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष यह था कि यह व्यवस्था एकपक्षीय थी। इसे मित्र राष्ट्रों ने प्राचीन राष्ट्रों से छीने गए प्रदेशों पर ही लागू किया था।

3. अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा : प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद मित्र राष्ट्रों के सम्मुख अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा एक महत्वपूर्ण समस्या थी। यूरोप के विभिन्न राज्यों में बसने वाले लगभग तीन करोड़ अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा का कार्य राष्ट्र संघ को सौंपा गया। अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा की दृष्टि से राष्ट्र संघ और विभिन्न राज्यों के बीच समझौता किया गया किंतु अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण करने में राष्ट्र संघ असफल ही रहा क्योंकि स्वतंत्र और संप्रभु राष्ट्रों से अपनी बात मनवाने के लिए राष्ट्र संघ के पास आवश्यक शक्ति की कमी थी जिसके कारण यह अल्पसंख्यकों पर होने वाले अत्याचारों को नहीं रोक सका।

4. सामाजिक और आर्थिक कार्य : राष्ट्र संघ एक राजनीतिक संस्था थी और राजनीतिक कार्यों में इस संस्था की उपलब्धियां विशेष उल्लेखनीय थीं।

राष्ट्र संघ ने आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देशों के पुनर्निर्माण में योगदान दिया। विश्व के सभी राष्ट्रों को स्वस्थ आर्थिक नीतियां अपनाने को प्रेरित किया। ऑस्ट्रेलिया, हंगरी, डेन्जिंग, बुल्गारिया आदि देशों की अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में राष्ट्र संघ का योगदान उल्लेखनीय था। यूनान, हंगरी, बुल्गारिया और ऑस्ट्रेलिया के शरणार्थियों को बसाने में राष्ट्र संघ की योजना प्रशंसनीय थी। वैज्ञानिक प्रगति, साहित्य, कला और शिक्षा के विकास में भी राष्ट्र संघ ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाल विकास और नारी कल्याण के अनेक नियम राष्ट्र संघ द्वारा बनाए गए। इसी प्रकार संचार और परिवहन,

विद्युत, जल वितरण, दासता और बेगारी समाप्त करने, वेश्यावृत्ति का अंत करने, मादक पदार्थों पर नियंत्रण लगाने, युद्ध बंदियों की रिहाई आदि विभिन्न क्षेत्रों में भी राष्ट्र संघ की सेवाएं प्रशंसनीय रही हैं।

लियोनार्ड के शब्दों में, इतिहास में पहली बार अंतर्राष्ट्रीय बैठकों की कार्यसूची चुंगी, आर्थिक मंदी, कच्चे माल की पहुंच, आयात कर संबंधी नियमावली, जाली मुद्रा, आर्थिक पुनर्निर्माण जैसे आर्थिक विषयों से भरी हुई थी। इन सभी क्षेत्रों में कार्यक्रम निर्धारित किए गए अथवा ठोस नीतियां बनाई गईं। यह अंतर्राष्ट्रीय सहकारिता की दिशा में एक दूरगामी कदम था।

टिप्पणी

5. अंतर्राष्ट्रीय शांति और व्यवस्था की स्थापना करना : राष्ट्र संघ का सबसे महत्वपूर्ण कार्य अंतर्राष्ट्रीय शांति और व्यवस्था की स्थापना करना और विवादों का शांतिपूर्ण समाधान करना था। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु राष्ट्र संघ के चार्टर में 4 प्रकार की व्यवस्थाएं की गईं–

1 राष्ट्र संघ के सदस्यों को कुछ ऐसी कानूनी बाध्यताओं तथा उत्तरदायित्व का पालन करने को कहा गया जिनके कारण युद्ध एक बड़ी सीमा तक मर्यादित हो जाता था।

2 राष्ट्र संघ के चार्टर में इस प्रकार की व्यवस्था की गई जिससे अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण तरीकों से समाधान हो सके।

3 युद्ध प्रारंभ हो जाने पर या किसी राज्य द्वारा अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन नहीं करने पर आक्रमणकारी या दोषी राष्ट्र के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबंध या सैनिक कार्रवाई की व्यवस्था की गई।

4 युद्ध को समाप्त करने के लिए निशस्त्रीकरण की योजना पर बल दिया गया।

इसके अतिरिक्त राष्ट्र संघ को संधियों के पुनर्निरीक्षण का अधिकार दिया गया ताकि उनको समयानुकूल बनाकर युद्धों को जन्म देने वाले कारणों का निराकरण कर सके।

राष्ट्र संघ ने अल्पकाल में जिन राजनीतिक समस्याओं पर विचार कर निर्णय लिए उनमें प्रमुख समस्याएं निम्नलिखित हैं–

1 यूक्रेन और मालमेडी की समस्या– 1920– 21

2 फ्रांस सोवियत संघ की समस्या– 1920

3 स्वेद फिनलैंड विवाद– 1921

4 पोलैंड लिथुआनिया विवाद– 1920–27

5 अल्बानिया सीमा विवाद– 1921

6 हंगरी रोमानिया विवाद– 1923–30

7 जर्मनी पोलैंड सीमा विवाद– 1921–22

8 फिनलैंड रूस विवाद– 1921–39

9 ऑस्ट्रेलिया हंगरी सीमा विवाद– 1922

टिप्पणी

10 बुल्गारिया यूनान विवाद– 1925

11 यूनान में अल्बानिया के अल्पसंख्यकों की समस्या– 1924–26

12 हंगरी यूगोस्लाविया सीमा विवाद– 1922

13 हंगरी चेकोस्लोवाकिया सीमा विवाद– 1922–23

14 ट्यूनीशिया मोरक्को विवाद– 1922

15 ग्रीस इटली विवाद– 1923

16 ग्रेट ब्रिटेन तुर्की विवाद– 1924

17 बोलीविया परागुए विवाद– 1928–35

18 चीन जापान विवाद– 1931

19 पेरू कोलंबिया विवाद– 1932

20 इटली इथोपिया विवाद– 1924

इन राजनीतिक समस्या में से कुछ समस्याओं का समाधान करने में राष्ट्र संघ सफल हुआ परंतु अधिकांश विवादों को सुलझाने में असमर्थ रहा।

राष्ट्र संघ की विफलता के कारण

राष्ट्र संघ की विफलताओं के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी बताए जाते हैं।

1. संवैधानिक दुर्बलताएं : राष्ट्र संघ की असफलता का कारण यह था कि राष्ट्र संघ की प्रसंविदा में अनेक वैधानिक कमजोरियां थीं–

(i) राष्ट्र संघ के सदस्य राष्ट्र उसकी सिफारिशों को मनाने के लिए बाध्य नहीं थे, उन पर केवल नैतिक बंधन था।

(ii) राष्ट्र संघ के पास अपने निर्णयों को लागू करवाने के लिए कोई अंतर्राष्ट्रीय सेना, आदि की व्यवस्था नहीं थी। इसी कारण जापान द्वारा मंचूरिया पर, इटली द्वारा अबीसीनिया पर और जर्मनी द्वारा ऑस्ट्रेलिया और चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण के समय वह अकर्मण्य साबित हुआ।

(iii) किसी भी राज्य को अपराधी घोषित करने का निर्णय परिषद द्वारा सर्वसम्मति से कराना पड़ता था किंतु इसमें राष्ट्रों के आपसी स्वार्थ टकराते थे। इसलिए सर्वसम्मत निर्णय कर पाना कठिन था।

2. सदस्य राष्ट्रों की विरोधी नीतियां : फ्रांस, राष्ट्र संघ को जर्मनी को कुचलने का साधन समझता था। ब्रिटेन अपने व्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जर्मनी के प्रति उदारता की नीति का अनुसरण कर रहा था। जर्मनी ने जब यह अनुभव किया कि राष्ट्र संघ उसकी महत्वाकांक्षाओं पर अंकुश लगाता है और मार्ग में अवरोध उत्पन्न करता है तो 1926 में इसका सदस्य बनने के बाद शीघ्र ही 1933 में सदस्यता का परित्याग कर दिया। सोवियत संघ भी राष्ट्र संघ की नीतियों से अप्रसन्न था क्योंकि साम्यवादी क्रांति को विफल बनाने हेतु पश्चिमी राष्ट्रों की परस्पर विरोधी नीतियों के कारण राष्ट्र संघ असफल हो गया।

3. निशस्त्रीकरण की असफलता : राष्ट्र संघ अपनी निशस्त्रीकरण की योजनाओं में भी सफल नहीं हो सका। 1930 के बाद शस्त्रास्त्रों की दौड़ निरंतर बढ़ती चली गई। प्रत्येक राष्ट्र इस प्रतियोगिता में आगे बढ़ने का प्रयास करने लगा जिसके कारण राष्ट्र संघ अपनी विश्व शांति की योजना को कार्यान्वित करने में असफल रहा।

4. उग्र राष्ट्रीयता की भावना : प्रथम विश्व युद्ध के बाद राष्ट्रों में उग्र राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति और भी अधिक बलवती हो गई। संप्रभु राष्ट्र अपने ऊपर किसी का नियंत्रण स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। राष्ट्रों की संकीर्ण राष्ट्रवाद की इस मनोवृति ने राष्ट्र संघ की सफलता में अवरोध उत्पन्न किया।

टिप्पणी

निष्कर्ष रूप में यह कहना उचित होगा कि राष्ट्र संघ केवल इसलिए विफल नहीं हुआ कि उसमें संवैधानिक एवं संरचनात्मक दुर्बलताएं थीं। वह विफल इसलिए हुआ क्योंकि महाशक्तियों के मध्य उसकी सफलता के लिए सहयोग की इच्छा नहीं थी।

पॉटर ने ठीक लिखा है कि राष्ट्र संघ विफल नहीं हुआ, उसके सदस्य राष्ट्र विफल हुए।

लैगसैम के शब्दों में, संयुक्त राष्ट्र की सबसे बड़ी उपलब्धि अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के विचार को विकसित करना था। वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की दिशा में राष्ट्र संघ प्रथम व नवीन प्रयोग था। इसलिए इसमें अवश्य ही कुछ दोष रह गए थे फिर भी यह संघ सफल हो जाता यदि सदस्य राष्ट्र सहयोग करते। यदि कहा जाए कि पेरिस शांति सम्मेलन की सबसे बड़ी रचनात्मक उपलब्धि राष्ट्र संघ का निर्माण करना था तो यह अतिरंजन नहीं होगा।

गैथोर्न हार्डी के शब्दों में, राष्ट्र संघ शांति सम्मेलन का एक महान रचनात्मक कार्य था। इसकी आत्मा पूर्ण रूप से अंतर्राष्ट्रीय थी और उन सदस्यों के हाथों जो कि निस्वार्थ भाव से इसका उपयोग करने का निश्चय करते यह शांति का एक शानदार उपकरण सिद्ध हो सकता था।

राष्ट्र संघ का मूल्यांकन करते हुए श्लीचर ने लिखा है, राष्ट्र संघ की सफलता या असफलता उस कटौती पर निर्भर करती है जिस पर इसे कसा जाता है। यदि यह उन आदर्शवादियों की कसौटी हो जो इसके माध्यम से युद्ध का पूर्ण निषेध करना चाहते थे तो राष्ट्र संघ अवश्य ही असफल रहा है। यदि यह कसौटी संघ के वास्तविक कार्यों, उसकी सीमाओं और मानव जाति पर उसके प्रभाव पर आधारित हो तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि राजनैतिक क्षेत्र में असफल होने पर भी वह आर्थिक, सामाजिक और मानवीय कार्यों में पर्याप्त सफल रहा।

राष्ट्र संघ का मूल्यांकन

राष्ट्र संघ लगभग 20 वर्ष तक कार्यशील रहा लेकिन उसका शांति स्थापित करने का महान उद्देश्य सफल नहीं हो सका। गंभीर प्रयत्नों के बावजूद निशस्त्रीकरण का अपना सपना साकार नहीं कर सका। यह केवल कुछ छोटे–मोटे विवादों का समाधान करने में ही सफल हुआ। यह उन बड़े और महत्वपूर्ण विवादों के हल में असमर्थ रहा जिनमें महाशक्तियां उलझी हुई थीं। जिन कारणों से राष्ट्र संघ अपने उत्तरदायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह न कर सका, उसके कारण अग्रलिखित हैं–

टिप्पणी

1 राष्ट्र संघ संवैधानिक दृष्टि से बड़ा निर्बल संगठन रहा। अपने नियमों का पालन कराने के लिए उसके पास कोई अंतर्राष्ट्रीय पुलिस अथवा सेना नहीं थी। वह सदस्य राज्यों को बाध्य करने की सामर्थ्य नहीं रखता था। किसी भी राज्य को अपराधी घोषित करने हेतु परिषद में सर्वसम्मति अत्यंत कठिन होती थी और यदि किसी प्रकार ऐसा हो भी जाए तो भी कोई राष्ट्र इसकी अनुशंसा को मानने को बाध्य नहीं था।

2 संघ की कार्य पद्धति इतनी जटिल और विलंबकारी थी कि विवाद प्रायः इतना लंबा खिंच जाता था कि आक्रामक राष्ट्र के विरोध में प्रभावशाली कार्रवाई का समय ही समाप्त हो जाता था। उदाहरणार्थ मंचूरिया घटना के समय राष्ट्र संघ का लिटिल आयोग जब चीन पहुंचा तब तक जापान संपूर्ण मंचूरिया पर अपना आधिपत्य जमा चुका था।

3 प्रसंविदा का यह महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक दोष था कि उसने युद्ध को वर्जित नहीं किया था वरन् आक्रामक और रक्षात्मक युद्ध का अंतर प्रकट करते हुए रक्षात्मक युद्ध को वैध माना था। इस प्रकार युद्ध को प्रत्येक स्थिति में बुरा नहीं बताया गया था।

4 संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा सदस्यता ग्रहण न करने से राष्ट्र संघ अपने प्रबल समर्थक के सहयोग से वंचित हो गया। अमेरिका की पृथकता ने संघ की जीवन शक्ति पर प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार से बुरा प्रभाव डाला। संघ की सदस्यता अमेरिका पर लागू न होने से प्रसंविदा के अनुच्छेद 16 के अंतर्गत आर्थिक प्रतिबंधों की व्यवस्था महत्वपूर्ण नहीं रही क्योंकि अपराधी राज्य सुगमतापूर्वक अमेरिका से आवश्यक वस्तुओं का आयात कर सकता था। अमेरिका की ऐसी प्रतिष्ठा के कारण राष्ट्र संघ के आदर्शवाद का प्रभाव क्षीण पड़ गया था।

5 इसकी स्वरूप संबंधी दुर्बलता भी राष्ट्र संघ की विफलता का एक कारण बन गई। संघ में यूरोपीय देशों का प्रभाव अधिक था जबकि विश्व के अन्य भागों के शक्तिशाली देशों को प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ। विश्व राजनीति में गैर यूरोपीय देशों के बढ़ते हुए प्रभाव की अवहेलना करके कोई भी अंतर्राष्ट्रीय संस्था सफल होने की आशा नहीं कर सकती थी। अमेरिका आरंभ से ही संघ का सदस्य नहीं बना और रूस तथा जर्मनी को संघ का सदस्य बनाने योग्य नहीं समझा गया। जर्मनी को काफी वर्षों बाद सन 1926 में और रूस को सन 1934 में सदस्यता दी गई लेकिन ये क्रमशः सन 1933 एवं 1939 में संघ से पृथक हो गए। ब्राजील, कोस्टरिया, इटली आदि अनेक राष्ट्र एक–एक करके संघ से पृथक हो गए। इस प्रकार संघ के आंतरिक जीवन में कोई भी अवसर नहीं आया जब संघ को संपूर्ण विश्व का प्रतिनिधि समझते हुए अथवा विश्व की सभी महाशक्तियां समस्त राज्यों के रूप में इनमें एक साथ बैठी हों।

6 राष्ट्र संघ के लिए वर्साय संधि से जन्म लेना अभिशाप सिद्ध हुआ। 'बदनाम मां की इस सम्मानित बेटी' को पराजित राष्ट्र, विजयी राष्ट्रों की स्वार्थ सिद्धि का यंत्र समझते रहे। इसने विश्व के अनेक राष्ट्रों की दृष्टि में स्वयं को वर्साय व्यवस्था कायम रखने वाला संगठन सिद्ध कर दिया।

टिप्पणी

7 पोयकारे और मिलरेण्ड के नेतृत्व में फ्रांस के राष्ट्रीय गुट ने सन 1918 से 1924 के बीच जर्मनी के साथ कठोर व्यवहार का रुख अपनाया। उसके सम्मान को गहरी ठेस पहुंचाई। फ्रांस के नेताओं ने बिस्मार्क के पदचिन्हों का अनुसरण किया। सन 1924 से 1930 तक स्ट्रेसमान, ब्रांइण्ड तथा चैम्बरलैन आदि ने देशों के मध्य सदभावना का वातावरण बनाने का प्रयत्न किया परन्तु सफलता नहीं मिली।

8 प्रसंविदा का उल्लंघन करने वाले राज्यों के विरुद्ध आर्थिक बहिष्कार की नीति नितांत निष्प्रभावी सिद्ध हुई।

9 संघ के सदस्य राज्यों ने अपनी–अपनी डफली अपना–अपना राग वाली कहावत चरितार्थ की। संकीर्ण राष्ट्रीय हितों के कारण विश्व शांति की व्यवस्था और सुरक्षा का गला घोट दिया गया। ब्रिटेन और फ्रांस की नीतियों में तीव्र मतभेद रहा जिससे जर्मनी की चालें सफल होती चली गईं और संघ के हाथ कमजोर होते गए। फ्रांस जर्मनी से अपनी सुरक्षा के लिए राष्ट्र संघ को ढाल के रूप में उपयोग करता रहा और ब्रिटेन ने अपने व्यापारिक स्वार्थों के कारण जर्मनी के प्रति मृदु एवं उदार नीति अपनाई। जर्मनी को संघ कार्य और संधियों में कभी कोई आस्था नहीं रही।

10 सन 1930 की महान आर्थिक मंदी ने राष्ट्र संघ को अप्रत्यक्ष क्षति पहुंचाई। इसके फलस्वरूप लगभग सभी देशों में आर्थिक राष्ट्रवाद की शक्तियां प्रबल हो गईं। इसने जर्मनी में नाजीवाद और जापान में सैनिकवाद को विकसित किया। राष्ट्रों में शस्त्रों की होड़ लग गई। सामूहिक सुरक्षा आहत हो गई।

11 राष्ट्र संघ की स्थापना इस विश्वास पर की गई थी कि इसके सभी सदस्य शांति, स्वतंत्रता और प्रजातंत्र में विश्वास रखते थे। लेकिन सन 1922 में इटली और सन 1930 के बाद जर्मनी, स्पेन, पुर्तगाल तथा अनेक यूरोपीय देशों में अधिनायकवादी सरकारें सत्तारूढ़ हो गईं। हिटलर और मुसोलिनी जैसे शासक लहू और लोहे की नीति पर विश्वास करते थे अतः उन्होंने राष्ट्र संघ को पंगु बना दिया।

12 उग्र राष्ट्रीयता के विचारों ने प्रारम्भ से ही राष्ट्र संघ की विफलता के बीज बो दिए थे। प्रत्येक राज्य स्वयं को संप्रभु समझकर अपनी इच्छा अनुसार कार्य करने के लिए अपने आप को स्वतंत्र मानता था। इस प्रकार राष्ट्र संघ संप्रभु राज्यों का संगठन था जिसमें कोई भी सदस्य अंतर्राष्ट्रीय शांति और व्यवस्था के लिए अपनी प्रमुखता पर किसी प्रकार का अंकुश लगाने को तैयार नहीं था। राज्यों का यह दृष्टिकोण संघ के अंतर्राष्ट्रीय कार्यों के लिए घातक था।

उपरोक्त कारणों से राष्ट्र संघ युद्धों के निवारण और शांति की स्थापना में सफल नहीं हो सका। राष्ट्रों में शस्त्रों के अंबार जमा हो गए और 1939 में दूसरे महायुद्ध का विस्फोट हो गया। लेकिन यह असफलता वास्तव में राष्ट्र संघ की असफलता न होकर सदस्य राज्यों की असफलता थी। सदस्य राज्य ने आदर्शों और सिद्धांतों पर कार्य नहीं किया जो प्रसंविदा में निहित थे। कोई भी संस्था सदस्य राज्यों के सहयोग पर निर्भर करती है और जब सदस्यों द्वारा संस्था को

ठुकराया जाने लगा तो संस्था के जीवन की क्या आशा की जा सकती है? परंतु इसमें कोई संदेह नहीं था कि असफलता के बावजूद संघ ने अपने आप को ऐतिहासिक महत्व की एक महान संस्था प्रमाणित किया। उसने विश्व को सहयोग और सह अस्तित्व का प्रभावशाली पाठ पढ़ाया।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. मोनार्किया किसके द्वारा रचित ग्रन्थ है।

   (क) बेंथम (ख) काण्ट

   (ग) दांते (घ) रूसो

6. संप्रभुता की वैज्ञानिक धारणा का निरूपण किसने किया था?

   (क) हाब्स (ख) बोदां

   (ग) हन्ना आरेण्ट (घ) ऑस्टिन

7. Towards External Peace किसकी रचना है।

   (क) काण्ट (ख) दांते

   (ग) लेनिन (घ) टालस्टॉय

8. किसे राष्ट्र संघ का जनक कहा जाता है?

   (क) रूजवेल्ट (ख) चर्चिल

   (ग) विल्सन (घ) ऑरलैण्डो

9. राष्ट्र संघ के अन्तिम अधिवेशन के समय उसके सदस्य राष्ट्रों की संख्या कितनी थी?

   (क) 34 (ख) 62

   (ग) 58 (घ) 52

10. कौन सा राष्ट्र कभी भी राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं रहा?

    (क) फ्रांस (ख) इटली

    (ग) अमेरिका (घ) जापान

1.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1 (क)
2 (ग)
3 (क)
4 (घ)
5 (ग)
6 (ख)

7 (क)

8 (ग)

9 (क)

10 (ग)

टिप्पणी

1.5 सारांश

अंतर्राष्ट्रीय संगठन की संकल्पना बीसवीं सदी में ही प्रभावशाली हुई है। हालांकि यदि इनका इतिहास देखें तो यूनान के नगर राज्य तक इसकी जड़ें पाई जाती हैं। अंतर्राष्ट्रीय संगठन अपने सदस्यों के सहयोग के कारण ही अस्तित्व में आए और उसी के कारण बने भी रहते हैं। इनके पास अपने साधनों और सत्ता का अभाव रहता है और यह दोहरी प्रकृति के होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय संगठन के सामान्यतः दो उद्देश्य होते हैं–युद्ध की रोकथाम और शांति एवं सुरक्षा कायम रखना तथा उन समस्याओं का समाधान और निदान करना जो राज्य के समक्ष उनके वैदेशिक संबंधों के संदर्भ में उपस्थित होती हैं। अंतर्राष्ट्रीय संगठन कई प्रकार के होते हैं। इनका वर्गीकरण हम उत्तरदायित्व, सदस्यता, कार्य और सत्ता के आधार पर कर सकते हैं। यूं तो अंतर्राष्ट्रीय संगठन अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने सदस्यों के साथ वांछित व्यवहार करते हैं किंतु हर अंतर्राष्ट्रीय संगठन की कुछ सीमाएं भी होती हैं। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के विकास पर यदि हम दृष्टिपात करें तो स्पष्ट रूप से हमें दो स्तर दिखाई देते हैं – पहला यूनानी नगर राज्य काल से प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व तक। दूसरा राष्ट्र संघ से द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व तक।

प्रथम में विभिन्न सम्मेलनों, सभाओं, कांग्रेस इत्यादि के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का विकास हुआ। इस दौरान नीतियां पद्धतियां और क्रियाकलाप बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं थे। द्वितीय में विश्व रंगमंच पर घटित होने वाली घटनाओं, राष्ट्र संघ की विफलता तथा विश्व का तेजी से बदलता हुआ परिदृश्य अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के विकास के लिए उत्तरदायी थे। राष्ट्र संघ ऐसा पहला अंतर्राष्ट्रीय संगठन था जो विश्व में इतने व्यापक स्तर पर स्थापित किया गया था जिसका मुख्य उद्देश्य विश्व में शांति स्थापित करना था। राष्ट्र संघ के तीन अंग थे– सभा, परिषद और सचिवालय। राष्ट्र संघ की स्थापना वर्साय की संधि के कारण संभव हुई थी इसलिए इसकी कार्यप्रणाली पर आरंभ से ही आक्षेप लगाए जाते रहे। अपनी ढांचागत और प्रकार्यात्मक कमजोरियों के कारण राष्ट्र संघ समाप्त हो गया।

1.6 मुख्य शब्दावली

- **अंतर्राष्ट्रीय संगठन** : अंतर्राष्ट्रीय संगठन ऐसी संस्था को कहते हैं जिसके सदस्य, कार्यक्षेत्र तथा उपस्थिति वैश्विक स्तर पर हो।
- **राष्ट्र संघ** : संप्रभुता संपन्न राज्यों का एक ऐसा ऐच्छिक संगठन जिसके सदस्यों ने प्रतिज्ञा पत्र में वर्णित हुए नैतिक और आर्थिक दायित्व को स्वीकार कर लिया हो।

- **अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन** : यह एक त्रिदलीय अंतर्राष्ट्रीय संस्था है जिसका लक्ष्य संसार के श्रमिक वर्ग की श्रम और आवास संबंधी अवस्थाओं में सुधार करना है।

1.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

टिप्पणी

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1 अंतर्राष्ट्रीय संगठन से आप क्या समझते हैं?

2 अंतर्राष्ट्रीय संगठन के उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।

3 अंतर्राष्ट्रीय संगठन की प्रकृति को समझाइए।

4 अंतर्राष्ट्रीय संगठन के विकास से संबंधित द्वितीय महायुद्व से पूर्व की घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

5 राष्ट्र संघ की सदस्यता और सदस्यता का प्रत्याहरण दोनों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1 अंतर्राष्ट्रीय संगठन की परिभाषा और उसकी प्रकृति को समझाइए।

2 राष्ट्र संघ से पूर्व अंतर्राष्ट्रीय संगठन के विकास के लिए उत्तरदायी घटनाक्रमों को विस्तृत रूप में बताइए।

3 राष्ट्र संघ का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

4 राष्ट्र संघ की विफलता के लिए कौन–से कारक उत्तरदायी हैं? विवेचना कीजिए।

5. किन कारणों से राष्ट्र संघ अपने उत्तरदायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह न कर सका? विवेचना कीजिए।

1.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1 अंतर्राष्ट्रीय संगठन, एम.पी. रॉय, कालिज बुक डिपो, जयपुर।

2 अंतर्राष्ट्रीय संगठन, रमेश तिवारी, वि.वि. प्रकाशन, बनारस।

इकाई 2 संयुक्त राष्ट्र संघ

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना से पूर्व के सम्मेलन
2.3 संयुक्त राष्ट्र संघ का गठन एवं उद्देश्य
2.4 संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर और संघ प्रतिज्ञापत्र : एक तुलनात्मक अध्ययन
2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

2.0 परिचय

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना ऐसे समय में हुई जब पूरा संसार द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका झेल रहा था और राष्ट्र संघ की अक्षमता पूरे विश्व के सामने स्पष्ट हो चुकी थी। द्वितीय विश्व युद्ध के काल में विभिन्न सम्मेलनों में मित्र राष्ट्रों ने यह निर्णय लिया कि वे संसार की भावी पीढ़ियों को युद्ध के विध्वंसकारी परिणामों से बचाने के लिए पुरजोर प्रयास करेंगे और इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने राष्ट्र संघ के स्थान पर संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना से पूर्व मित्र राष्ट्रों ने कई सम्मेलन आयोजित किए जिससे कि विश्व में एक ऐसी शक्तिशाली और प्रभावशाली वैश्विक संस्था की स्थापना हो सके जो न केवल बड़े पैमाने पर लड़े जाने वाले युद्धों बल्कि छोटे–छोटे संघर्षों को भी रोकने में सक्षम हो। सर्वप्रथम लंदन घोषणा में इसके संकेत मिलते हैं तत्पश्चात अटलांटिका घोषणा, संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणा, मास्को में विदेश मंत्रियों का सम्मेलन, तेहरान में सम्मेलन, डम्बर्टन ऑक्स सम्मेलन, क्रीमिया याल्टा सम्मेलन, सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन तथा अंत में हस्तांतरण के लिए अंतिम अधिवेशन के उपरांत संयुक्त राष्ट्र संघ पूरी तरह स्थापित हो गया। राष्ट्र संघ का संयुक्त राष्ट्र संघ में हस्तांतरण 8 अप्रैल, 1946 को अंतिम अधिवेशन में संपन्न हो गया था।

इस इकाई में संयुक्त राष्ट्र की स्थापना से पूर्व के सम्मेलनों, उसके गठन तथा उद्देश्य एवं संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के तुलनात्मक अध्ययन को विस्तार से समझाया गया है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना से पूर्व के सम्मेलनों को समझ पाएंगे;

- संयुक्त राष्ट्र संघ की संरचना और उसके उद्देश्यों को जान पाएंगे;
- संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर और राष्ट्र संघ की प्रसंविदा के अंतर से परिचित हो पाएंगे।

टिप्पणी

2.2 संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना से पूर्व के सम्मेलन

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना ऐसे समय में हुई जब द्वितीय महायुद्ध अपने भीषणतम रूप में सारे विश्व को आतंकित कर रहा था। जर्मनी, इटली और जापान की धुरी– राष्ट्र की सम्मिलित शक्ति का सामना करने में ब्रिटेन, अमेरिका तथा अन्य मित्र राष्ट्रों की सारी शक्ति लगी हुई थी। यह युद्ध केवल कुछ राष्ट्रों की प्रतिष्ठा के लिए ही लड़ा जा रहा था। धुरी राष्ट्रों की बढ़ी हुई सैनिक शक्ति वास्तव में प्रजातंत्र और मानवीय अधिकारों के लिए संकट का संकेत कर रही थी। इस युद्ध में यदि धुरी राष्ट्रों की विजय होती तो निश्चय ही समस्त विश्व पर उसका व्यापक प्रभाव पड़ता और संभव है स्वाधीनता और प्रजातंत्र के ऊंचे आदर्शों को भारी आघात पहुंचता।

संयुक्त राज्य अमेरिका के सैन फ्रांसिस्को नगर में 1 जनवरी, 1942 को ब्रिटेन, सोवियत संघ, चीन तथा अन्य 26 मित्र राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें यह निर्णय हुआ कि यह राष्ट्र सम्मिलित होकर धुरी राष्ट्रों का सामना करेंगे। इस संगठन को संयुक्त राष्ट्र अथवा यूनाइटेड नेशन्स का नाम अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट द्वारा प्रदान किया गया। 1 जून, 1945 को आगे चलकर जब सेन फ्रांसिस्को में संयुक्त राष्ट्र का सम्मेलन हुआ तो इसके सदस्यों की संख्या 50 हो चुकी थी। इस सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र के घोषणापत्र (प्रस्ताव और अनुच्छेद 111 के साथ) को अंतिम रूप दिया गया और संयुक्त राष्ट्र की औपचारिक स्थापना इसके अस्थायी मुख्यालय लेक सैक्सेस अमेरिका में हुई। अधिकार पत्र पर 50 राष्ट्रों के प्रतिनिधियों द्वारा 26 जून, 1945 को हस्ताक्षर किए गए।पोलैंड का प्रतिनिधि, अधिवेशन में सम्मिलित नहीं हुआ था। उसने बाद में इस पर हस्ताक्षर किए और वह 51 सदस्य राज्यों में से एक मूल सदस्य बन गया। आधिकारिक रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ 24 अक्टूबर, 1945 को अस्तित्व में आ गया था जबकि अधिकार पत्र की पुष्टि चीन, फ्रांस, सोवियत संघ, इंग्लैंड तथा अमेरिका तथा बहुसंख्यी अन्य हस्ताक्षरकर्ता द्वारा की गई थी। 24 अक्टूबर को प्रतिवर्ष संयुक्त राष्ट्र संघ दिवस के रूप में मनाया जाता है। 1946 से संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रधान कार्यालय न्यूयॉर्क में है और इसके सदस्यों की वर्तमान संख्या 193 है। सदस्यों की संख्या को देखते हुए अब यह कहा जा सकता है कि प्रायोजकों की कल्पना के अनुरूप संयुक्त राष्ट्र संघ सहज रूप में सार्वभौमिक अंतर्राष्ट्रीय संगठन बन गया है। आज संयुक्त राष्ट्र उसके 17 विशेष अभिकरणों एवं 14 मुख्य कार्यक्रम और निधियों से विश्व के किसी भी कोने के सभी मानवों से संबंधित है। यह विश्व का अंतःकरण और आशा का केंद्र बना हुआ है।

प्रथम महायुद्ध के बाद अंतर्राष्ट्रीय शांति की स्थापना के लिए राष्ट्र संघ अस्तित्व में आया था जो विभिन्न दुर्बलताओं और महा शक्तियों के असहयोग के कारण अपने देशों में असफल हुआ। 1939 में द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया जो अपार धन–जन के विनाश के बाद 1945 में समाप्त हुआ।

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना से पूर्व निम्नलिखित सम्मेलन हुए–

टिप्पणी

(1) **लंदन घोषणा, 1941**– 12 जून, 1941 को मित्र राष्ट्रों की घोषणा में इस ओर संकेत किया गया। ब्रिटेन, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, फ्रांस आदि अनेक हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्रों ने घोषित किया कि वे पृथक शांति स्थापित नहीं करेंगे। उसमें यह कहा गया कि शांति स्थापित करने का एकमात्र मूल आधार विश्व के सभी स्वतंत्र राष्ट्र का ऐच्छिक सहयोग है ताकि युद्ध और आक्रमण का भय समाप्त हो जाए। इसके बाद ही अंतर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना के संबंध में राजनीतिज्ञों में भेंट और सम्मेलनों का सिलसिला चालू हो गया।

(2) **अटलांटिका घोषणा, 1941** – 14 अगस्त, 1941 को अटलांटिका घोषणा में चर्चिल और रूजवेल्ट द्वारा विश्व शांति स्थापित करने के लिए कुछ सिद्धांतों की घोषणा की गई और कहा गया कि हम साम्राज्य विस्तार या किसी नए प्रदेश पर अधिकार नहीं करना चाहते। हम चाहते हैं कि जनमत द्वारा ही प्रत्येक राष्ट्र का शासन संचालन हो। सब राष्ट्रों में पारस्परिक आर्थिक सहयोग हो, युद्ध के उपरांत राज्य पुनः प्रस्थापित हों और उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो, प्रत्येक राष्ट्र युद्ध सामग्री में कमी करें तथा अंतर्राष्ट्रीय शांति के लिए प्रयत्न करें। इस अटलांटिक के घोषणा पत्र को ही संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्मदाता माना जाता है। इस चार्टर पर बाद में सोवियत रूस ने भी अपने हस्ताक्षर कर दिए।

(3) **संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणा, 1942**– संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की दिशा में दूसरा कदम जनवरी 1942 में संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणा द्वारा उठाया गया। अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, चीन आदि देशों को मिलाकर 26 राष्ट्रों ने इस घोषणा पर हस्ताक्षर करते हुए अटलांटिक घोषणा के सिद्धांतों को स्वीकार कर लिया। मई–जून, 1943 में 44 राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने एक खाद्य एवं कृषि सम्मेलन में लाखों विस्थापितों की भोजन समस्या पर विचार किया और इस प्रकार भावी खाद्य एवं कृषि संगठन की आधारशिला रखी।

(4) **मास्को में विदेश मंत्रियों का सम्मेलन, 1943**– अक्टूबर 1943 में मास्को में अमेरिका, ब्रिटेन, रूस और चीन के विदेश मंत्रियों का सम्मेलन हुआ, जिसमें उन्होंने अटलांटिक चार्टर के सिद्धांतों के आधार पर विश्व शांति और सुरक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना पर जोर दिया। मास्को घोषणा महत्वपूर्ण थी क्योंकि इसमें वक्तव्य अटलांटिक चार्टर की अपेक्षा अधिक स्पष्ट थे और इसके द्वारा रूस ने निश्चित रूप से यह प्रतिज्ञा की कि वह एक सुरक्षा संगठन की स्थापना की दिशा में सक्रिय सहयोग देगा। मास्को घोषणा में भावी अंतर्राष्ट्रीय संगठन का चित्रांकन करते हुए कहा गया कि उसमें शांति के इच्छुक सभी छोटे बड़े राज्य सम्मिलित होंगे तथा सभी राज्यों के साथ समानता का व्यवहार किया जाएगा।

(5) **तेहरान सम्मेलन, 1943**–नवंबर 1943 में तेहरान सम्मेलन में चर्चिल, रूजवेल्ट, स्टालिन ने यह निर्णय किया कि छोटे–बड़े सभी राष्ट्रों को संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनने के लिए आमंत्रित किया जाए। युद्ध काल के इस प्रथम शिखर सम्मेलन में प्रजातांत्रिक राष्ट्रों के विश्व परिवार की आशा प्रकट की गई।

टिप्पणी

(6) डम्बटर्न ऑक्स सम्मेलन, 1944 – 21 अगस्त से 7 दिसंबर, 1944 तक संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत रूस, ग्रेट ब्रिटेन और चीन के प्रतिनिधियों ने वाशिंगटन के निकट डम्बटर्न ऑक्स नामक स्थान में एकत्र होकर एक अंतर्राष्ट्रीय भावी संगठन – संयुक्त राष्ट्र संघ की रूपरेखा के संबंध में विचार–विमर्श किया और अनौपचारिक वार्ता की। इस सम्मेलन के निर्णय अंतिम नहीं थे, यद्यपि संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर का बहुत कुछ इसी सम्मेलन में बना।

इस सम्मेलन में विभिन्न प्रस्तावों को रखा गया और उन पर विचार किया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका ने प्रस्तावित संघ की सुरक्षा में ब्राजील को स्थायी सदस्य बनाने की मांग रखी, लेकिन ब्रिटेन एवं सोवियत रूस के विरोध के कारण यह प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका।

सोवियत संघ ने सम्मेलन में यह प्रस्ताव रखा था कि उसके 16 गणराज्यों को स्वतंत्र सदस्यों के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ में सम्मिलित किया जाए किंतु अमेरिका और ब्रिटेन ने सोवियत रूस के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। रूस ने यह मांग भी प्रस्तुत की कि आर्थिक और सामाजिक विषय पर विचार–विमर्श के लिए एक पृथक अंतर्राष्ट्रीय संगठन का निर्माण किया जाए, पर यह प्रस्ताव भी अन्य राष्ट्रों को मान्य नहीं हुआ। सोवियत संघ का यह प्रस्ताव भी स्वीकृत न हो सका कि संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद के आदेशों द्वारा संचालित होने वाली एक अंतर्राष्ट्रीय वायु सेना का निर्माण हो। किंतु ब्रिटेन और अमेरिका का यह प्रस्ताव स्वीकार हो गया कि आवश्यकता पड़ने पर सुरक्षा परिषद को प्रस्तावित समझौतों के आधार पर राष्ट्रीय सेनाओं के दस्ते प्रदान किए जाएं।

डम्बटर्न ऑक्स मिलन का सर्वाधिक विवादास्पद विषय था सुरक्षा परिषद के सदस्यों को निषेधाधिकार (Veto) प्रदान करना। ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका का मत यह था कि निषेधाधिकार इस प्रतिबंध के साथ प्रदान किया जाए कि राष्ट्र इस विषय पर, निषेधाधिकार का प्रयोग करें जो विषय से संबंधित न हो। सोवियत रूस ने इस प्रतिबंध का विरोध किया और यह मांग की कि निषेधाधिकार के प्रयोग पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाया जाना चाहिए। काफी वाद–विवाद के पश्चात भी जब इस विषय पर कोई निर्णय नहीं हुआ तो यह निश्चय किया गया कि तीनों राज्यों के शासनाध्यक्ष स्वयं इस प्रश्न का समाधान करेंगे।

(7) क्रीमिया याल्टा सम्मेलन, 1945– महायुद्धकालीन अंतिम महत्वपूर्ण सम्मेलन याल्टा (कृष्ण सागर में क्रीमिया प्रायदीप में) नामक स्थान पर 4 फरवरी, 1945 में हुआ और 11 फरवरी, 1945 तक जारी रहा। इस सम्मेलन में अनेक नेताओं ने भाग लिया जिसमें रूजवेल्ट, चर्चिल, स्टालिन, ईडन, मॉलोटोव, मार्शल बुक, एंटोनोव, हाफिर्किस, के. केडोगन, विर्शिसकी आदि प्रमुख थे। इस सम्मेलन में सुदूरपूर्व तथा मध्य पूर्व आदि के संबंध में विचार–विमर्श किया गया। युद्ध कालीन सम्मेलनों में याल्टा का यह सम्मेलन सबसे महत्वपूर्ण था क्योंकि इस सम्मेलन ने जिन समस्याओं को जन्म दिया उनका युद्धोत्तर अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इस सम्मेलन में व्यक्त विचारों ने जहां एक तरफ अंतर्राष्ट्रीय समझौते की आधारशिला रखी वहीं दूसरी तरफ मित्र राष्ट्रों ने आपसी मतभेदों को भी जन्म दिया, जिसकी चरम सीमा शीतयुद्ध मानी जाती है।

टिप्पणी

इसमें यह निश्चय किया गया कि विश्व संगठन के संबंध में 25 अप्रैल, 1945 सेनफ्रांसिस्को (अमेरिका) में संयुक्त राष्ट्र का एक सम्मेलन आमंत्रित किया जाए। मार्च 1947 तक जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने वाले राज्यों को निमंत्रण भेजे जाएं और यूक्रेन तथा सोवियत रूस को मित्र राष्ट्रों द्वारा पृथक रूप से आमंत्रित किया जाए, पांच राज्यों–संयुक्त राज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन, सोवियत रूस, चीन और फ्रांस को इस संघ की सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्य बनाया जाए। सुरक्षा परिषद के प्रत्येक सदस्य को सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न पर निषेधाधिकार प्राप्त हो।

(8) सेनफ्रांसिस्को सम्मेलन, 1945– संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर को अंतिम रूप देने के लिए सेनफ्रांसिस्को (अमेरिका) में विश्व के 40 राज्यों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। ई.पी. वेज ने इस सम्मेलन को सबसे महान अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन बताया है–ऐसा ना तो कभी हुआ था और ना ही भविष्य में होने की संभावना है। इस सम्मेलन के आरंभ होने से 13 दिन पहले राष्ट्रपति रूजवेल्ट का स्वर्गवास होने के कारण उनके उत्तराधिकारी टू मैन ने इसके उद्घाटन भाषण में कहा–इस सम्मेलन का उद्देश्य यह नहीं है कि वह पुराने ढर्रे की संधि करें। हमारा यह कार्य नहीं है कि हम प्रदेशों, सीमाओं, नागरिकता क्षतिपूर्ति से संबंधित प्रश्नों पर निर्णय ले। यह सम्मेलन अपनी संपूर्ण शक्ति, शांति को सुरक्षित रखने वाले संगठन के निर्माण में लगाएगा। आपको इसका मौलिक चार्टर बनाना है। हम युद्ध में अकेले नहीं थे अर्थात हम शांति में भी अकेले नहीं रह सकते। यदि हम युद्ध में एक साथ नहीं मरना चाहते तो हमें शांति काल में मिलकर रहना सीखना चाहिए।

यह सम्मेलन अप्रैल से जून 1945 तक चला। 25 जून को संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया और 26 जून को 50 देशों के प्रतिनिधियों ने इस पर हस्ताक्षर कर दिए। पोलैंड के प्रतिनिधि किसी कारण उपस्थित न हो सके, अतः उनके हस्ताक्षर के लिए स्थान छोड़ दिया। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ के कुल 51 प्रारंभिक सदस्य थे। 24 अक्टूबर, 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर लागू हो गया। अतः यह दिन विश्व में ''संयुक्त राष्ट्र दिवस'' U.N.O. के रूप में जाना चाहता है। 10 फरवरी, 1946 को लंदन के वेस्ट मिनिस्टर हॉल में संघ का प्रथम अधिवेशन हुआ। इसमें अनेक पदाधिकारी चुने गए। 15 फरवरी, 1946 को संघ का प्रथम अधिवेशन समाप्त हुआ। संघ का प्रधान कार्यालय पहले लेक सैक्सेस (अमेरिका) में रखा गया और तत्पश्चात न्यूयॉर्क में बने विशाल भवन में स्थानांतरित कर दिया गया।

(9) राष्ट्र संघ का संयुक्त राष्ट्र संघ में हस्तांतरण के लिए अंतिम अधिवेशन– जब संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्म हुआ तो राष्ट्र संघ औपचारिक रूप से विद्यमान था। स्थायी अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के भवन और पुस्तकालय जिनेवा तथा हेग में, अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन जिनेवा और मौन्ट्रियल में तथा संघ के सामाजिक एवं आर्थिक कार्यक्रम वाशिंगटन, लंदन, जिनेवा प्रिंसटन में कार्यरत थे। अतः समस्या पैदा हुई कि राष्ट्र संघ को किस प्रकार बंद किया जाए तथा उसके भवनों और पुस्तकालय की संपत्ति का क्या किया जाए। समस्या के समाधान हेतु संयुक्त

राष्ट्र संघ और राष्ट्र संघ में पत्र व्यवहार हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अधिकांश सामाजिक एवं आर्थिक कार्यक्रमों को स्वयं संभाल लिया और राष्ट्र संघ के भवनों एवं अन्य संपत्ति को अपने अधिकार में ले लिया। 8 अप्रैल, 1946 को राष्ट्र संघ की सभा ने अपने अंतिम अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित कर अपनी संपत्ति की घोषणा कर दी।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1 किस घोषणा पत्र को संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्मदाता माना जाता है?

(क) लंदन घोषणा पत्र (ख) संयुक्त राष्ट्र संघ घोषणा पत्र

(ग) अटलांटिक घोषणा पत्र (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

2 निषेधाधिकार का संबंध किस सम्मेलन से है?

(क) तेहरान (ख) डम्बर्टन ऑक्स

(ग) याल्टा (घ) सेनफ्रांसिस्को

3 सेनफ्रांसिस्को सम्मेलन में किस देश के प्रतिनिधि अनुपस्थित थे?

(क) हॉलैंड (ख) इंग्लैंड

(ग) पोलैंड (घ) भारत

4 राष्ट्र संघ का अंतिम अधिवेशन कब हुआ था?

(क) 8 अप्रैल, 1946 (ख) 30 अक्टूबर, 1945

(ग) 1 जनवरी, 1946 (घ) 8 मार्च, 1946

2.3 संयुक्त राष्ट्र संघ का गठन एवं उद्देश्य

यह विचित्र बात है कि मानव समाज के आचरण में युद्ध एवं शांति, विध्वंस तथा निर्माण के बीज साथ–साथ निहित हैं। नेपालियन युद्ध के बाद होली एलाइंस, प्रथम विश्व युद्ध के बाद राष्ट्र संघ तथा द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना इसके प्रमाण हैं। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना में वैसे ही भूमिका एक अन्य अमेरिकी राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डी. रूजवेल्ट की थी। रूजवेल्ट ने ही इस अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना की आवश्यकता तथा उसके दर्शन की धुंधली रूपरेखा प्रस्तुत की। रूजवेल्ट ने इस बात पर बल दिया कि भावी विश्व संगठन का आधार महा शक्तियों का पूर्ण मतैक्य होना चाहिए। उसने सोवियत संघ, ब्रिटेन तथा अन्य मित्र शक्तियों को इस बात पर सहमत किया कि विश्व संस्था के निर्माण की तैयारी युद्ध काल से ही शुरू कर दी जाए। उसने कहा कि इससे मित्र राष्ट्रों को युद्ध जीतने के लिए नैतिक समर्थन तथा संबल प्राप्त होगा।

30 अक्टूबर, 1943 को संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैंड तथा सोवियत संघ की सरकारों ने अपने–अपने विदेश मंत्रियों के माध्यम से एक संयुक्त घोषणा की। इस घोषणा में कहा गया कि जितनी जल्दी संभव हो सके एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन की

स्थापना करने की आवश्यकता वे महसूस करते हैं, यह संगठन सभी शांतिप्रिय राष्ट्र की संप्रभुता पर आधारित होगा। ऐसे सभी छोटे–बड़े राज्य इसके सदस्य बन सकेंगे। इसका उद्देश्य होगा अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा कायम करना।

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्र के निर्माण के संबंध में आगे विचार करने के लिए ईरान की राजधानी तेहरान में एक महत्वपूर्ण सम्मेलन हुआ। राष्ट्रपति रूजवेल्ट एवं मार्शल स्टालिन प्रथम बार आपस में मिले। सब राष्ट्रों के सहयोग से विश्व में शांति स्थापित करने की भावना को दोहराया गया। उनका विश्वास था कि संयुक्त राष्ट्र के निर्माण के बाद संसार का प्रत्येक व्यक्ति सुखी एवं स्वतंत्र जीवन यापन कर सकेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ की रूपरेखा का निर्माण करने के लिए बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन 21 अगस्त, 1944 को वाशिंगटन के डम्बटर्न ऑक्स भवन में आयोजित किया गया जो 7 अक्टूबर, 1944 तक चला। इस सम्मेलन में यह स्वीकार कर लिया गया कि संयुक्त राष्ट्र का कार्यक्षेत्र केवल अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाए रखने तक ही सीमित ना रखा जाए बल्कि उसका कार्य आर्थिक एवं सामाजिक प्रश्नों पर अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देना भी होना चाहिए। प्रस्तावित विश्व संगठन के संदर्भ में दृष्टिकोण यह था कि संयुक्त राष्ट्र में बड़ी शक्तियों की प्रभावशाली एवं निर्णयात्मक भूमिका को स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया जाए।

संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य–चार्टर के अनुसार, संयुक्त राष्ट्र संघ के चार प्रमुख उद्देश्य हैः

1 सामूहिक व्यवस्था द्वारा अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा कायम करना और आक्रामक प्रवृत्तियों को नियंत्रण में रखना।

2 अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान करना।

3 राष्ट्रों के आत्म निर्णय और उपनिवेशवाद विघटन की प्रक्रिया को गति देना।

4 सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय क्षेत्रों में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित एवं पुष्ट करना।

संघ के इन उद्देश्यों से जुड़े हुए दो और लक्ष्य भी निर्धारित किए हैं, वे हैं – निशस्त्रीकरण और नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक अर्थव्यवस्था की स्थापना।

संयुक्त राष्ट्र संघ सिद्धांत– संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की धारा 2 में इसके निम्नलिखित मौलिक सिद्धांत बताए गए हैंः–

1. इसका प्रधान आधार छोटे–बड़े सब देशों की समानता और सर्वोच्च सत्ता का सिद्धांत है।
2. सब सदस्यों से यह आशा रखी जाती है कि वे चार्टर द्वारा उन पर लागू होने वाले दायित्वों का पालन पूरी ईमानदारी से करेंगे।
3. सभी सदस्य अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों का निपटारा शांतिपूर्ण साधनों से करेंगे।
4. सभी राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों के प्रतिकूल कोई कार्य नहीं करेंगे। वे किसी देश की स्वतंत्रता का हनन करने की या आक्रमण करने की न तो धमकी देंगे, और न ऐसा कार्य करेंगे।

5. कोई भी देश चार्टर के प्रतिकूल काम करने वाले देश की सहायता नहीं करेगा।
6. संयुक्त राष्ट्र संघ इसका सदस्य ना बनने वाले राज्यों से भी अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने वाले सिद्धांत का पालन कराएगा।
7. संयुक्त राष्ट्र संघ किसी देश के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्र संघ का बजट– संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र के अनुच्छेद 17 के अनुसार, बजट पर विचार करने एवं उसे अनुमोदित करने की जिम्मेदारी महासभा की है। इस अनुच्छेद के अनुसार, संयुक्त राष्ट्र के खर्च का वहन सदस्य देशों द्वारा किया जाता है। राशि का निर्धारण महासभा करती है। संयुक्त राष्ट्र संघ का नियमित बजट महासभा द्वारा हर दूसरे वर्ष अनुमोदित किया जाता है। बजट महासचिव द्वारा पेश किया जाता है और उसकी एक 16 सदस्यीय विशेषज्ञ समिति द एडवाइजरी कमेटी ऑन एडमिनिस्ट्रेटिव एंड बजटरी क्वेश्चंस द्वारा समीक्षा की जाती है। बजट के कार्यक्रम संबंधी पहलुओं की एक 34 सदस्यीय कार्यक्रम और समन्वय समिति द्वारा समीक्षा की जाती है।

महासभा की सहायक संस्था द कमेटी ऑन कॉन्ट्रिब्यूशन, को विभिन्न देशों द्वारा दी जाने वाली राशि के निर्धारण की जिम्मेदारी सौंपी गई है। सदस्य देशों में यह राशि उनके घरेलू उत्पाद,उनके प्रति व्यक्ति आय तथा उनकी भुगतान करने की क्षमता के आधार पर ली जाती है। ऐसा करते समय देशों की राष्ट्रीय आय संबंधी आंकड़ों और जनसंख्या का विशेष ध्यान रखा जाता है। 1972 में महासभा द्वारा लिए गए एक निर्णय के अनुसार किसी भी देश द्वारा दी जाने वाली सहायता राशि की अधिकतम सीमा को संगठन के कुल खर्च का 25% और न्यूनतम सीमा को 0.01% निर्धारित किया गया है। वर्तमान में संयुक्त राज्य अमेरिका संयुक्त राष्ट्र के व्यय का 25%, जापान 20%, जर्मनी 9.85%, यू.के. 5.092%, कनाडा 2.73%, रूसी संघ 1.077%, फ्रांस 6.54%, इटली 5.43% तथा भारत 0.299% योगदानकर्ता है। इस समय संयुक्त राष्ट्र गंभीर आर्थिक संकट से गुजर रहा है, इसका मुख्य कारण यह है कि कुछ राज्यों ने संयुक्त राष्ट्र को दिए जाने वाले योगदान में कुछ कटौतियां कर दी हैं तथा योगदान देना स्थगित कर दिया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता– संयुक्त राष्ट्र चार्टर में दो प्रकार की सदस्यता का उल्लेख है। प्रथम, कुछ देश तो प्रारंभिक सदस्य हैं जिन्होंने 1 जनवरी, 1942 को संयुक्त राष्ट्र के घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किए थे, या सेनफ्रांसिस्को में चार्टर पर हस्ताक्षर करके उसकी पुष्टि की थी। द्वितीय,संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता उन सभी राष्ट्रों को भी उपलब्ध हो सकती है जो शांतिप्रिय हो एवं एक ही चार्टर में विश्वास रखते हो, जो चार्टर द्वारा निर्धारित कर्तव्य को स्वीकार करते हों एवं जिनको यह संस्था इन कर्तव्यों का पालन करने के लिए उपयुक्त समझती है। महासभा के दो–तिहाई बहुमत और सुरक्षा परिषद के 15 सदस्यों में से 9 सदस्यों की स्वीकृति से जिसमें 5 स्थायी सदस्य अवश्य हो, संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता प्राप्त होती है। महासभा में निर्णय के पूर्व भी सुरक्षा परिषद की स्वीकृति आवश्यक होती है अर्थात सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर ही महासभा किसी राज्य को सदस्यता प्रदान कर सकती है। इस पर सुरक्षा परिषद के पांच स्थायी सदस्यों को निषेधाधिकार (Veto) प्राप्त है। संयुक्त राष्ट्र की तुलना में संयुक्त राष्ट्र संघ सदस्यता की दृष्टि से एक विश्वव्यापी संगठन है जहां सन् 1934 में राष्ट्र संघ

के सदस्यों की संख्या 60 थी वहां आजकल संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों की संख्या 193 तक पहुंच गई है। संयुक्त राष्ट्र ने कुछ समय पहले तक पूर्वी तिमोर के नाम से प्रसिद्ध तिमोर लेस्ते को 29 सितंबर, 2002 को 191वां तथा 28 जून, 2006 को बाल्कन राष्ट्र मोंटेनेग्रो को 192वां तथा महासभा में 14 जुलाई, 2011 को कराए मतदान के बाद दक्षिण सूडान को 193वां सदस्य स्वीकार कर लिया गया।

टिप्पणी

सदस्यों का निलंबन– सुरक्षा परिषद की रिपोर्ट पर सदस्य देशों को महासभा से निलंबित भी किया जा सकता है। चार्टर में सदस्यता समाप्त करने के संबंध में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। चार्टर की धारा 5 एवं 6 के अनुसार संघ के किसी भी सदस्य को,चार्टर के सिद्धांतों का निरंतर उल्लंघन करने पर सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर महासभा द्वारा सदस्यता से वंचित किया जा सकता है एवं उसकी सुविधाओं पर बंधन भी लगाया जा सकता है। सुरक्षा परिषद को किसी भी निलंबित राष्ट्र को पुनः स्थापित करने का अधिकार प्राप्त है। 22 सितंबर, 1992 को पूर्व में यूगोस्लाविया को सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर संघ की सदस्यता से वंचित कर दिया गया था। महासभा ने 2 नवंबर, 2000 को नए लोकतांत्रिक यूगोस्लाविया को संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता पुनः देने की अनुमति दे दी। कम्बोडिया में विधिवत निर्वाचित सरकार के गठन के पश्चात 7 दिसंबर, 1998 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने कम्बोडिया सीट पर प्रतिनिधित्व का अधिकार नवगठित गठबंधन सरकार को प्रदान कर दिया।

सदस्यता का प्रत्याहरण– संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता के प्रत्याहार के संबंध में चार्टर मौन है। यह सदस्यों की सदस्यता के प्रत्याहार करने की न तो आज्ञा देता है और न मना ही करता है। सेनफ्रांसिस्को सम्मेलन में इस विषय पर बड़ी बहस हुई थी। कुछ राज्य इस पक्ष में थे कि सदस्यों की सदस्यता की वापसी के लिए निषेध कर लिया जाए। कुछ अन्य राज्य इस पक्ष में थे कि यदि सदस्यों के लिए चार्टर में किए गए संशोधनों को स्वीकार करना संभव हो जाता है तो ऐसे सदस्यों को अपनी सदस्यता वापस लेने का अधिकार होना चाहिए। अंत में यह निश्चित किया गया कि इस विषय में कोई व्यक्त प्रावधान न रखे जाएं जिसके अनुसार विशेष परिस्थितियों में सदस्य अपनी सदस्यता वापस ले सकते हैं।

पिछले 61 वर्षों के जीवनकाल में केवल इंडोनेशिया ने सन् 1965 में संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता का प्रत्याहार किया था। परंतु एक वर्ष बाद इंडोनेशिया पुनः संयुक्त राष्ट्र में लौट आया। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें अनेक सदस्यों ने संयुक्त राष्ट्र के अंगों एवं उनकी बैठकों का बहिष्कार या प्रत्याहार किया है, परंतु उनमें पुनः लौट आए। उदाहरण के लिए, अमेरिका ने 1 नवंबर, 1977 को अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की सदस्यता का परित्याग किया था। 1 जनवरी, 1985 से अमेरिका ने यूनेस्को की सदस्यता का परित्याग किया था। अमेरिका की तर्ज पर ब्रिटेन व सिंगापुर ने भी यूनेस्को पर भ्रष्टाचार एवं कुप्रबंध का आरोप लगाते हुए यूनेस्को की सदस्यता का त्याग कर दिया था। 12 वर्ष बाद मई 1997 में ब्रिटेन ने यूनेस्को की सदस्यता पुनः ग्रहण करने की घोषणा की।

सदस्यों का निष्कासन– चार्टर के अनुच्छेद 6 के अनुसार, यदि कोई सदस्य जानबूझकर तथा लगातार चार्टर में वर्णित सिद्धांतों का उल्लंघन करता है तो उसे सुरक्षा परिषद के सुझाव पर महासभा द्वारा संस्था से निकाला जा सकता है। चूंकि सदस्यों का निष्कासन एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, इसके लिए सुरक्षा परिषद के 9 सदस्यों की

टिप्पणी

सकारात्मक सहमति (जिसमें पांच स्थायी सदस्य भी शामिल होने चाहिए) तथा महासभा का निर्णय दो तिहाई सदस्यों के बहुमत से होना चाहिए।

देश जो संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य नहीं हैं – 1 ताइवान को राष्ट्रवादी चीन भी कहा जाता है। जब साम्यवादी चीन को संघ एवं सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य बनाया गया तो ताइवान को अल्बीनिया के प्रस्तावानुसार संघ की प्राथमिक सदस्यता से भी निष्कासित कर दिया गया। ताइवान से आग्रह किया गया कि वह ताइवान नाम से संघ का सदस्य बनना स्वीकार करें, लेकिन उसे यह निर्णय मंजूर नहीं था। 2 होली सिटी या वैटिकन की स्थिति स्थायी रूप से तटस्थीकृत प्रदेश की है। वैटिकन संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं है।

अपनी प्रगति जांचिए

5 1965 में किस राष्ट्र ने संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता का प्रत्याहार किया है?

(क) इण्डोनेशिया (ख) मलेशिया

(ग) रोडेशिया (घ) हर्जेगोविना

6 संयुक्त राष्ट्र संघ का सबसे नया सदस्य कौन सा है?

(क) दक्षिणी तिमोर (ख) बोस्निया

(ग) स्लोवाकिया (घ) दक्षिणी सूडान

7 संयुक्त राष्ट्र संघ से निकाला जाने वाला पहला देश कौन सा है?

(क) अबीसीनिया (ख) राष्ट्रवादी चीन

(ग) इराक (घ) अफगानिस्तान

8 भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का कैसा सदस्य है?

(क) प्रारम्भिक (ख) ऐच्छिक

(ग) अनिवार्य (घ) कोई नहीं

2.4 संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर और संघ प्रतिज्ञापत्र : एक तुलनात्मक अध्ययन

संयुक्त राष्ट्र संघ को अपनी पूर्ववर्ती अंतर्राष्ट्रीय संस्था से विरासत में क्या मिला और वह किस रूप में आज राष्ट्र संघ का अगला कदम सिद्ध हो रहा है। राष्ट्र संघ और संयुक्त राष्ट्र संघ में क्या समानताएं और विभिन्नताएं हैं, इसको इस प्रकार से समझा जा सकता है–

समानताएं– पामर एवं पार्किन्स के अनुसार, संयुक्त राष्ट्र संघ को बहुत सी बातें राष्ट्र संघ से विरासत में मिली हैं अर्थात् वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय संस्था की प्रकृति बहुत कुछ अपने पूर्वगामी संगठन से मिलती–जुलती है। गहन विश्लेषण से दोनों ही संस्थाओं में कुछ क्षेत्रों में समानताएं परिलक्षित होती हैं, वे कुछ इस प्रकार हैं–

1. राष्ट्रीय संघ के समान ही संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्म अंतर्राष्ट्रीय जगत में अंधड़ और तूफानों के मध्य हुआ तथा उत्तराधिकार में अपने पूर्वगामी संगठन की भांति ही उसे भी युद्ध–ध्वस्त विश्व की जटिल राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याएं प्राप्त हुई जिनकी काली छाया से वह अभी तक भी मुक्त नहीं हो सका है।

टिप्पणी

2. राष्ट्र संघ के समान ही संयुक्त राष्ट्र संघ में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में शक्ति प्रयोग के अधिकार की कुछ परिसीमाओं को छोड़कर सभी राष्ट्र अपनी इच्छानुसार कुछ भी कार्य करने में वैधानिक दृष्टि से स्वतंत्र हैं। वर्तमान विश्व संस्था की स्थापना भी पूर्वगामी अंतर्राष्ट्रीय संस्था की भांति ही, प्रभुतासंपन्न राष्ट्रों में सीमित अधिकार संपन्न संगठन के रूप में हुई है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी लीग की तरह ही, राज्यों में संप्रभुता का आदर करना स्वीकार किया है और सिद्धांत रूप में प्रत्येक देश के मत को बराबर का महत्व प्रदान करने को मान्यता दी हैं।

3. मूल रूप से दोनों ही संस्थाओं की स्थापना के समय विजेता राष्ट्रों ने पराजित राष्ट्रों को इस से पृथक् रखा था। जब राष्ट्र संघ की स्थापना हुई तो उसकी सदस्य–संख्या विजेता राष्ट्रों तक ही सीमित थी और संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के समय 51 राष्ट्र सदस्य थे।

4. संरचनात्मक दृष्टि से भी संयुक्त राष्ट्र संघ के संविधान और अधिपत्रों में लीग से आश्चर्यजनक रूप से समानता पाई जाती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रधान तथा सहायक अंगों का निर्माण करते समय राष्ट्र संघ के संगठन से बहुत कुछ प्रेरणा ली गई है। यह कहा जा सकता है कि उसने राष्ट्र संघ में थोड़ा सुधार करने के बाद उन्हें अपना लिया है। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा, सुरक्षा परिषद और अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय तथा सचिवालय राष्ट्र संघ की सभा, परिषद स्थायी अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय तथा सचिवालय के प्रतिरूप हैं। जहां तक गैर राजनीतिक कार्यों का संबंध है, राष्ट्र संघ की भांति ही संयुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न सहायक अंग भी अंतर्राष्ट्रीय जगत को गरीबी, बीमारी, भुखमरी, अशिक्षा, अज्ञान आदि से मुक्ति दिलाकर वहां सामाजिक, सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक विकास करना चाहते हैं।

5. राष्ट्र संघ के समान ही संयुक्त राष्ट्र संघ की परिषद में अध्यक्ष पद को वर्णमाला क्रम के अनुसार रखने की व्यवस्था की गई है और व्यवहार तथा दायित्व, निर्णय और सिफारिश में अंतर रखा है। राष्ट्र संघ के समान ही वर्तमान विश्व संस्था में भी समस्त विवादों के निर्णयों का सर्वोत्तम उपाय परस्पर वार्तालाप और समझौता माना गया है। दूसरे शब्दों में, संयुक्त राष्ट्र संघ भी अपने पूर्वज की भांति परस्पर विचार–विमर्श तथा वार्तालाप द्वारा ही कोई निर्णय लेता है।

6. राष्ट्र संघ के समान ही संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रकृति भी कुछ इस प्रकार की है कि वह अपने सदस्यों के सक्रिय सहयोग के बिना सफलतापूर्वक अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। सदस्यों के सहयोग के अभाव में राष्ट्र संघ समाप्त हो गया और यदि संयुक्त राष्ट्र संघ को इस पुनरावृत्ति से दूर रखना है तो इसके छोटे और बड़े, निर्बल और सबल सभी सदस्यों को इसे सहयोग देना होगा।

टिप्पणी

7. संयुक्त राष्ट्र संघ की न्यास व्यवस्था, राष्ट्र संघ की संरक्षण व्यवस्था का विकसित और श्रेष्ठतर रूप है तथा संरक्षण अथवा मैन्डेट व्यवस्था के समान है। यह श्वेत जातियों के भार के साम्राज्यवादी सिद्धांतों एवं आत्मनिर्णय और स्वशासन के साम्राज्यवाद विरोधी सिद्धांतों के बीच एक समझौता है, तथापि निश्चय ही इसका साम्राज्यवाद विरोधी पक्ष मैन्डेट व्यवस्था की अपेक्षा अधिक प्रबल है। 19वीं शताब्दी के उपनिवेशवाद की तुलना में राष्ट्र संघ की मैन्डेट व्यवस्था एक श्रेष्ठ कदम थी, क्योंकि इसके अंतर्गत राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े प्रदेशों पर अंतर्राष्ट्रीय देखभाल एवं नियंत्रण की बात सिद्धांततः स्वीकार कर ली गई थी। द्वितीय महायुद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ में पुनः इसी सिद्धांत के आधार पर न्यास व्यवस्था की आधारशिला स्थापित की गई और ऐसा करते समय राजनीतिज्ञों ने पुरानी मैन्डेट व्यवस्था की त्रुटियों को विशेष रूप से ध्यान में रखा।

8. यद्यपि नवीन संस्था सिद्धांत रूप में संप्रभु राज्यों का एक संघ है, तथापि राष्ट्र संघ की यह परंपरा कायम रही है कि ऐसी अनेक सत्ताओं को भी, जो 'संप्रभु राज्य' के तकनीकी स्तर पर खरी उतरती थी, संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रारंभिक सदस्य स्वीकार किया गया।

9. राष्ट्र संघ में प्रारंभ से अंत तक रिक्त स्थानों की समस्या बनी रही थी और वर्तमान संयुक्त राष्ट्र संघ तथा इनके विशिष्ट अभिकरण भी न्यूनाधिक रूप में इस समस्या से ग्रस्त है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण और निर्णयकारी अंतर्राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन की अनुपस्थिति बहुत कुछ उसी प्रकार खटकने वाली थी जिस प्रकार राष्ट्र संघ में संयुक्त राज्य अमेरिका की अनुपस्थिति। विश्व के कतिपय राष्ट्र इस या उस महाशक्ति की अड़ंगेबाजी के कारण अभी तक विश्व संस्था के सदस्य नहीं बन सके हैं।

10. वर्तमान संयुक्त राष्ट्र संघ के समान शक्ति–गुटों से प्रभावित रहा है। राष्ट्र संघ फ्रांस और जर्मनी के पारस्परिक द्वेष के कारण असफल हुआ तो संयुक्त राष्ट्र संघ की असफलता का ढीकरा अमेरिका और दूसरी ऐसी ही महाशक्तियों के माथे फूटा। नाजीवाद एवं फासीवाद के विरुद्ध मित्र–शक्तियां राष्ट्र संघ के समय संगठित थीं और संयुक्त राष्ट्र संघ में यह शक्तियां साम्यवाद के विरुद्ध संगठित हैं। हाल ही के अर्से में यह एक उत्साहवर्धक लक्षण दिखाई देने लगा है कि सह–अस्तित्व की विचारधारा को निरंतर बल मिल रहा है। संयुक्त राष्ट्र महासभा और सुरक्षा परिषद में साम्यवादी और साम्यवादी टकराव उतना कुछ नहीं रहा जितना पहले था।

    इन्हीं सब कारणों से अनेक विद्वान संयुक्त राष्ट्र संघ को राष्ट्र संघ का संशोधित और परिवर्तित संस्करण मानते हैं। प्रो. शूमेन ने तो यहां तक कहा कि "संयुक्त राष्ट्र संघ एक नए परिवेश में राष्ट्र संघ ही है।''

भिन्नताएं – संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्माताओं ने राष्ट्र संघ की दुर्बलताओं और दोषों के परिणामों तथा अनुभवों का लाभ उठाकर नवीन अंतर्राष्ट्रीय संस्था को उनकी

पुनरावृत्ति से बचाने का प्रयास किया, अतः स्वभावतः संयुक्त राष्ट्र संघ अनेक क्षेत्रों और व्यवस्थाओं में अपने पूर्ववर्ती संगठन से भिन्न है। क्लाडे इगिल्टन के अनुसार, ''यद्यपि दोनों संस्थाओं के स्वरूप और ढांचे में एकरूपता है फिर भी उन उद्देश्यों में मौलिक भेद हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ विचार और प्रकृति में राष्ट्र संघ से बिलकुल भिन्न है।'' यह निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है–

टिप्पणी

1. राष्ट्र संघ बहुत कुछ विजेता राष्ट्रों की संस्था के रूप में विख्यात रहा है क्योंकि उसका मुख्य कार्य युद्धोत्तर शांति–संधियों को क्रियान्वित करना था और उसकी प्रसंविदा भी वर्साय संधि का एक अंग थी। संयुक्त राष्ट्र संघ ने कोई भी ऐसा आरोप विरासत में ग्रहण नहीं किया है। उसका संबंध पराजित राष्ट्रों पर थोपी गई संधि से नहीं है। उसका संबंध विजय शक्तियों के शोषण और दमन को बनाए रखना न होकर उसे यथासंभव कम अथवा समाप्त कर देना है। संयुक्त राष्ट्र संघ का नाम भी अपने आप में अधिक प्रभावशाली और अर्थपूर्ण है जिससे राष्ट्र के उत्तरोत्तर अधिक घनिष्ठ संपर्क में आने की संभावना अभिव्यक्त होती है।
2. राष्ट्र संघ की प्रसंविदा की प्रस्तावना में केवल अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा का उल्लेख था। प्रसंविदा के प्रारंभिक शब्द थे– ''महान संविदाकार राष्ट्र संघ की प्रसंविदा को स्वीकार करते हुए'' जबकि संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की प्रस्तावना में शांति और सुरक्षा के अतिरिक्त आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र का भी उल्लेख है तथा प्रस्तावना के यह शब्द 'हम संयुक्त राष्ट्र के लोग' अधिक महत्वपूर्ण है। इन शब्दों से आभास होता है कि वर्तमान विश्व–संस्था का निर्माण किसी राष्ट्र विशेष ने नहीं किया है। यह अधिक प्रजातांत्रिक और प्रगतिशील भावना का घोतक है।
3. राष्ट्र संघ की अपेक्षा संयुक्त राष्ट्र संघ का संगठन अधिक व्यापक है। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रमुख अंग केवल सभा, परिषद, अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय, आर्थिक एवं सामाजिक परिषद, न्यास परिषद तथा सचिवालय हैं। आर्थिक एवं सामाजिक परिषद पूर्णतः नवीन है जिसकी स्थापना इस तथ्य को ध्यान में रखकर की गई है कि आर्थिक एवं सामाजिक न्यास के बिना विश्व–शांति की स्थापना नहीं हो सकती। संयुक्त राष्ट्र संघ में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय कार्य तथा ऐसे ही अन्य विषय अपेक्षाकृत बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। नवीन संगठन में मानव व्यक्तित्व के विकास और व्यक्तियों के मानव अधिकारों के संरक्षण के महत्व को समझा गया है। इसके विभिन्न संगठन जैसे अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व स्वास्थ्य संगठन, यूनेस्को आदि हैं। यूनेस्को के संविधान की भूमिका में कहा गया है, ''चूंकि युद्ध पहले मनुष्य के मन में उत्पन्न होता है, शांति की आधारशिलाएं मनुष्य के मन में स्थापित की जानी चाहिए।'' संस्था का कार्यक्षेत्र प्रतिबन्धात्मक होने के साथ रचनात्मक भी है। ऐसे संगठन का राष्ट्र संघ में सर्वथा का अभाव था।
4. संयुक्त राष्ट्र संघ की सभा और परिषद के कार्यों में राष्ट्र संघ की अपेक्षा स्पष्ट विभाजन है। राष्ट्र संघ में इन दोनों के कार्यों के बारे में अनिश्चय और संदेह

टिप्पणी

की स्थिति थी, अतः संघ की स्थिति अंत तक बड़ी दुर्बल रही, पर वर्तमान संघ के चार्टर में इस प्रकार की दुर्बलता के प्रति सावधानी बढ़ती गई है। अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने का कार्य सुरक्षा परिषद का विषय है। सुरक्षा परिषद का कार्य क्षेत्र राष्ट्र संघ की परिषद की अपेक्षा मर्यादित होते हुए भी सुस्पष्ट है। राष्ट्र संघ की परिषद सभी प्रकार के विषयों पर विचार कर सकती थी जबकि वर्तमान सुरक्षा परिषद का उत्तरदायित्व केवल अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा की स्थापना तक सीमित है। इसके बावजूद वर्तमान सुरक्षा परिषद अधिक शक्तिशाली है क्योंकि उसके निर्णयों के अनुपालन के लिए सदस्य बाध्य हैं। 1905 में पारित 'शांति के लिए एकता का प्रस्ताव' द्वारा महासभा को शांति रक्षा का कार्य सौंपा गया है। लेकिन वह इसे तभी करती है जब सुरक्षा परिषद किसी महत्वपूर्ण विषय पर कार्यवाही करने में निषेधाधिकार के कारण विफल हो जाती है और विश्व शांति भंग होने की आशंका पैदा हो जाती है तथापि इस स्थिति में भी महासभा संबंधित प्रश्न पर विचार, विवाद और सिफारिश कर सकती है क्योंकि कार्रवाई करने का अधिकार केवल सुरक्षा परिषद को ही है। सुरक्षा परिषद में वास्तविक शक्ति निहित है तथा उसके संगठन एवं व्यवहार के अनेक नियमों ने उसे महत्वपूर्ण संस्था बना दिया है। यह सदस्य राज्य द्वारा प्राप्त सशस्त्र सेना का उपयोग कर सकती है।

5. दोनों विश्वसंस्थाओं में एक अंतर उनके अंगों के अधिवेशन और उनकी मतदान पद्धति में है। राष्ट्र संघ की परिषद और सभा में अधिवेशन अति अल्पकालीन होते थे। परिषद वर्ष भर में तीन या चार बार समवेत होती थी और उसके अधिवेशन वर्ष में केवल 2 बार होते थे। इसके विपरीत वर्तमान संगठन की सुरक्षा परिषद की बैठक 14 दिन में एक बार अवश्य होती है। यह संघ की निरंतर बनी रहने वाली कार्यकारिणी है। इसके सदस्य राष्ट्रों का एक–एक प्रतिनिधि संघ कार्यालय में स्थायी रूप से रहता है। इस प्रकार यह हमेशा क्रियाशील रहती है। संकटकाल में सुरक्षा परिषद की आवश्यक बैठक अविलंब बुलाई जा सकती है। राष्ट्र संघ में कोई ऐसी व्यवस्था नहीं थी जो परिषद के सदस्य राष्ट्रों के प्रतिनिधि प्रधान कार्यालय में स्थायी रूप से रहे। इसके अतिरिक्त राष्ट्र संघ की सभा की तुलना में वर्तमान महासभा के अधिवेशन महीनों चलते हैं। आवश्यकता पड़ने पर विशेष अधिवेशन भी आयोजित किए जा सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के अंगों के अधिवेशन भी वर्ष में दो या तीन बार होते हैं जो लगभग 5 या 6 सप्ताह तक चलते हैं। इतना ही नहीं आयोग की बैठक भी लगभग सप्ताह पर्यन्त चलती है।

   राष्ट्र संघ की सभा और परिषद के निर्णय सर्वसम्मति से किए जाते थे जबकि वर्तमान विश्व संस्था में महासभा के निर्णय दो–तिहाई बहुमत से लिए जाते हैं। महत्वपूर्ण निर्णयों में 9 सदस्यों की स्वीकृति अनिवार्य होती है। मतदान पद्धति के इस अंतर से संयुक्त राष्ट्र संघ अपने पूर्ववर्ती संगठन की अपेक्षा अधिक गतिशील और व्यावहारिक संगठन है जिसके निर्णय शीघ्रता से हो सकते हैं।

6. राष्ट्र संघ की तुलना में संयुक्त राष्ट्र संघ एक अधिक सक्षम और प्रभावशाली संस्था है तथा विश्व शांति की स्थापना में अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है। यह निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है–

(क) राष्ट्र संघ में आक्रमण होने पर उसे रोकने के लिए कार्रवाई की जा सकती थी जबकि संयुक्त राष्ट्र संघ वास्तविक युद्ध छिड़ने पर ही नहीं वरन् शांति भंग होने की आशंका और आक्रमण का भय होने पर भी अपनी कार्यवाही प्रारंभ कर सकता है।

टिप्पणी

(ख) राष्ट्र संघ में शांति भंग करने वालों के विरोध में मुख्य रूप से आर्थिक प्रतिबंधों की व्यवस्था थी। इस पर भी जो आर्थिक प्रतिबंध लगाए जाते थे वे नाम मात्र के ही थे। जापान के विरुद्ध कोई प्रतिबंध नहीं लगाए गए थे और इटली के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबंध बिल्कुल असफल सिद्ध हुए थे। यद्यपि संयुक्त राष्ट्र संघ भी अपनी कार्यवाही यथासंभव आर्थिक प्रतिबंध तक ही सीमित रखता है। सुरक्षा परिषद सदस्य राष्ट्रों से सैनिक सहायता की अपील कर सकती है। सैनिक योजनाओं को सुचारू रूप से क्रियान्वित करने के लिए उसकी एक सैनिक स्टाफ समिति भी है। कोरिया और कांगों में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जो प्रभावशाली सैनिक कार्यवाही की गई, उसका उदाहरण राष्ट्र संघ के समुचित इतिहास में नहीं मिलता।

(ग) राष्ट्र संघ के पास संकट में प्रयुक्त की जाने वाली अपनी कोई सेना नहीं थी, अतः आक्रांता को रोकने की उसकी व्यवस्था संयुक्त राष्ट्र संघ की तुलना में बहुत ही अप्रभावी थी। आक्रमण के समय यह सदस्य राज्यों की इच्छा पर निर्भर था कि वह सहायता करें या न करें। परंतु संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य इस बात के लिए वचनबद्ध हैं कि समय आने पर सुरक्षा परिषद की प्रार्थना पर सैनिक सहायता देंगे और अविलंब सहायता के लिए हवाई सेना भी तैयार रखेंगे। राष्ट्र संघ में यह निर्णय करना सदस्य राज्यों का कार्य था कि किसी सदस्य ने संघ के संविधान के दायित्वों का उल्लंघन किया है या नहीं तथा उसके विरुद्ध सैनिक कार्रवाई की जाए अथवा नहीं। इसके विपरीत संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में शांति भंग की दशा को निश्चित करना और सैनिक कार्रवाई का निर्णय करना सदस्यों का नहीं अपितु सुरक्षा परिषद का कार्य है और उसके निर्णयों का पालन सदस्यों की इच्छा पर निर्भर न होकर आवश्यक है। 'शांति के लिए एकता' के प्रस्ताव में महासभा को भी सुरक्षा परिषद में निषेधाधिकार के कारण गतिरोध होने पर शांति स्थापित करने के लिए सैनिक कार्यवाही करने का अधिकार प्रदान किया है, इस प्रकार की व्यवस्था राष्ट्र संघ की संविदा में नहीं थी।

(घ) राष्ट्र संघ स्वयंमेव युद्ध और शांति संबंधी कोई कार्यवाही नहीं कर सकता था। उसके द्वारा किसी स्थिति पर विचार तभी संभव था जब उस ओर उसका ध्यान किसी सदस्य–राष्ट्र द्वारा आकर्षित किया जाता था। संयुक्त राष्ट्र इस दोष से मुक्त है। सुरक्षा परिषद को विश्व–शांति को खतरा पहुंचाने वाली स्थिति पर स्वयं ही कार्यवाही करने का अधिकार है।

महासचिव का कर्तव्य है कि वह सुरक्षा परिषद का ध्यान उन तत्वों की ओर आकर्षित करें जो उस शांति के लिए घातक प्रतीक होते हैं।

(ङ) राष्ट्रसंघीय व्यवस्था में प्रत्येक राज्य आक्रांता के विरुद्ध व्यक्तिगत रूप से कार्य करता था। अनुशास्ति के प्रयोग से पूर्व प्रत्येक राज्य को स्वयं इस बात का निश्चय करना पड़ता था कि आक्रमण हुआ है अथवा नहीं और यदि आक्रमण हुआ है तो आक्रांता कौन है? प्रत्येक राज्य यह निश्चय करता था कि अनुशासित के प्रयोग में शामिल हुआ जाए या नहीं? जब कोई सदस्य–राष्ट्र आक्रांत की सहायता करना चाहता है तो यह सहायता अमुख राष्ट्र को ही दी जाती थी, राष्ट्र संघ को नहीं। लेकिन वर्तमान विश्व संघ में सुरक्षा परिषद ही इस बात का निर्णय करती है कि आक्रमण हुआ है अथवा नहीं और सदस्यों का यह कर्तव्य है कि वे हर संभव तरीकों से सुरक्षा परिषद की सहायता करें।

टिप्पणी

7. राष्ट्र संघ में यूरोप के प्रतिनिधि अधिक थे जबकि संयुक्त राष्ट्र संघ में सभी क्षेत्रों के प्रतिनिधि हैं। वर्तमान संस्था केवल यूरोपीय देशों का अखाड़ा मात्र नहीं है। एशियाई और अफ्रीका के राष्ट्रों को प्रभावशाली प्रतिनिधित्व प्राप्त है। राष्ट्र संघ की तुलना में संयुक्त राष्ट्र संघ पूरे विश्व का संगठन है। राष्ट्र संघ में तत्कालीन पांच शक्तियों में से अधिकांशतः दो ही स्थायी सदस्य के रूप में सम्मिलित नहीं थीं जबकि संयुक्त राष्ट्र संघ में द्वितीय महायुद्धोत्तर की 3 महाशक्तियां सम्मिलित हैं।

8. राष्ट्र की सदस्यता ऐच्छिक थी और कोई भी राष्ट्र 2 वर्ष का नोटिस देकर सदस्यता का परित्याग कर सकता था। जापान, इटली और जर्मनी जैसे प्रमुख राष्ट्रों ने निजी स्वार्थों के अनुकूल अवसर पाकर राष्ट्र संघ की सदस्यता त्याग दी थी। संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुसार, "किसी सदस्य राष्ट्र को संघ से पृथक होने का अधिकार नहीं है।"

9. राष्ट्र संघ की संविदा में युद्ध को अवैध घोषित नहीं किया गया था। संघ का सदस्य–राष्ट्र कुछ अवस्था में संविदा की अवहेलना किए बिना ही युद्धरत हो सकता था। इसके विपरीत संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में युद्ध बिल्कुल अवैध है, केवल अनुच्छेद 15 के अनुसार, सदस्य व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से अपनी आत्मरक्षा के लिए युद्ध कर सकते हैं।

10. दोनों संस्थाओं के 'घरेलू कार्य क्षेत्र' के संबंध में भी मौलिक अंतर पाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ में इस विषय में राष्ट्र संघ की अपेक्षा अधिक व्यापक व्यवस्था है तथा सदस्यों को अधिक स्वतंत्रता है। चार्टर के अनुच्छेद 27 में उल्लेख है कि ''संयुक्त राष्ट्र संघ का किसी भी राज्य के उन मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है जो निश्चित रूप से राज्य के घरेलू क्षेत्र के अंतर्गत हो। '' यह अनुच्छेद इस बात को स्पष्ट नहीं करता है कि घरेलू क्षेत्र का निश्चय कौन करेगा। स्पष्ट है कि अनुच्छेद द्वारा प्रत्येक सदस्य को घरेलू क्षेत्र का निर्णय करने की स्वतंत्रता मिल जाती है और इससे संयुक्त राष्ट्र संघ का कार्य क्षेत्र में प्रभाव संकुचित हो जाता है। राष्ट्र संघ में इस विषय की व्यवस्था अधिक

अच्छी है क्योंकि उसमें घरेलू क्षेत्र का निर्धारण सदस्यों पर नहीं छोड़ा गया था अपितु अंतर्राष्ट्रीय कानून के आधार पर इसका निर्णय करने का भार परिषद पर था।

टिप्पणी

11. संयुक्त राष्ट्र संघ की अंतर्राष्ट्रीय न्यास प्रणाली राष्ट्र संघ की मैन्डेट पद्धति की अपेक्षा अधिक सुनिश्चित है। न्यास प्रणाली में सीधी योजना बनाने की प्रणाली, समय–समय पर दौरा करने वाले शिष्ट मंडल तथा मौखिक सुनवाई आदि की व्यवस्था है और न्यास क्षेत्रों में जनता की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक प्रगति को सुनिश्चित करने के लिए पूरा ध्यान दिया गया है। राष्ट्र संघ की सुरक्षा व्यवस्था को तीन श्रेणियों 'अ','ब','स' में वर्गीकृत किया गया था। जो संरक्षित क्षेत्रों में राजनीतिक विकास के मापदंड के अनुसार था, जबकि संयुक्त राष्ट्र संघ की न्यास व्यवस्था के अंतर्गत न्यास–क्षेत्रों और गैर–स्वशासित क्षेत्रों को स्वतंत्रता प्रदान करने की निर्दिष्ट तिथियां तक निश्चित ही कर दी गई थीं। उदाहरणार्थ, लीबिया के संबंध में 1952 तथा इटली सोमालीलैंड के संबंध में 1960 का वर्ष निश्चित किया गया था। राष्ट्र संघ के अंतर्गत इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

    राष्ट्र संघ की संरक्षण पद्धति में संरक्षित क्षेत्रों की समस्या संरक्षण आयोग का विषय समझी जाती थी और चूंकि संरक्षण आयोग राष्ट्र संघ का कोई महत्वपूर्ण अंग नहीं था अतः संरक्षित क्षेत्रों की समस्या को प्रायः उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था, किंतु वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय संगठन में न्यास परिषद संघ का एक महत्वपूर्ण अंग है और न्यास–क्षेत्रों की समस्याओं के बारे में छोटे राज्यों का बहुमत है जो उपनिवेशवाद के कट्टर विरोधी हैं। राष्ट्रसंघीय संरक्षण पद्धति उपनिवेशवाद का दूसरा रूप था। इसमें उन प्रदेशों की स्वतंत्रता और प्रगति के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी, दूसरी ओर संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में यह स्पष्ट उल्लेखित है कि शासक देशों का यह कर्तव्य है कि वह अपने प्रदेशों का इतना विकास करें जिससे वह स्वशासन के योग्य बन सके। वर्तमान न्यास व्यवस्था के अंतर्गत अब कोई प्रदेश नहीं रहा है, सब स्वतंत्र हो चुके हैं।

12. राष्ट्र संघ की प्रसंविदा में निशस्त्रीकरण और शास्त्रास्त्रों के नियंत्रण के संबंध में उल्लेख था, तथापि वह इस दिशा में कोई सफलता प्राप्त नहीं कर सका। संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में शास्त्रास्त्रों को कम करने के साथ ही यह भी कहा गया है कि विभिन्न राज्यों के शास्त्रास्त्रों के उत्पादन को नियंत्रित किया जाए। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए महासभा को सिफारिशें प्रस्तुत करने का अधिकार है तथा सुरक्षा परिषद को इस बारे में योजनाएं बनाने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है।

    उपर्युक्त विवरण से निष्कर्ष निकलता है कि राष्ट्र संघ की तुलना में अनेक अंशों में संयुक्त राष्ट्र संघ अधिक उत्कृष्ट और श्रेष्ठ है, तथापि यह भी स्वीकार करना होगा कि संयुक्त राष्ट्र संघ बिल्कुल निर्दोष संस्था नहीं है। इसमें अधिक दोष हैं जिनका परिमार्जन होने पर यह संस्था और भी अधिक शक्तिशाली तथा प्रभावशाली बन सकती है। यह अंतर्राष्ट्रीय कानून को यथेष्ठ नैतिक और भौतिक

समर्थन प्रदान करने में असमर्थ है। इसके पास ऐसी किसी सैनिक शक्ति का अभाव है जिसके बल पर वह सभी राष्ट्रों को अंतर्राष्ट्रीय कानून का पालन करवा सकें।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

9 सुरक्षा परिषद की बैठक कितने दिनों में एक बार अवश्य होती है?

(क) 10 (ख) 15

(ग) 14 (घ) 30

10 न्यास व्यवस्था राष्ट्र संघ की किस व्यवस्था का परिमार्जित रूप है?

(क) संरक्षण या मैन्डेट (ख) सुरक्षा व्यवस्था

(ग) अतिक्रमण व्यवस्था (घ) कूटनीतिक व्यवस्था

11 शांति के लिए एकता का प्रस्ताव किस वर्ष पारित हुआ था?

(क) 1919 (ख) 1914

(ग) 1923 (घ) 1905

12 राष्ट्र संघ की सदस्यता का परित्याग करने के लिए कितने वर्ष का नोटिस दिया जाता था?

(क) दो (ख) तीन

(ग) एक (घ) पांच

2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1 (ग)

2 (ख)

3 (ग)

4 (क)

5 (क)

6 (घ)

7 (ख)

8 (क)

9 (ग)

10 (क)

11 (घ)

12 (क)

2.6 सारांश

होली एलायंस राष्ट्र संघ और संयुक्त राष्ट्र संघ, इन सभी विश्व संस्थाओं का जन्म युद्धों से ही हुआ है। होली एलायंस, नेपोलियन से हुए युद्ध के उपरांत अस्तित्व में आया, राष्ट्रसंघ प्रथम विश्व युद्ध के उपरांत और द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत संयुक्त राष्ट्र संघ अस्तित्व में आया। संयुक्त राष्ट्र संघ की उत्पत्ति मित्र राष्ट्रों के लगातार किए गए प्रयासों और वार्ताओं का परिणाम है जो द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ही समय–समय पर संपन्न हुए।

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्र संघ का मुख्य उद्देश्य विश्व में शांति और सुरक्षा बनाए रखना है। अंतर्राष्ट्रीय विवादों का निपटारा करना, उपनिवेशवाद का विघटन राष्ट्रों के आत्म निर्णय तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और मानवीय क्षेत्रों में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहन देना आदि अन्य उद्देश्य हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता भी राष्ट्र संघ की भांति ऐच्छिक नहीं है और न यह त्याज्य है। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के लिए युद्ध काल के दौरान ही आठ सम्मेलन आयोजित किए गए थे। सर्वप्रथम लंदन घोषणा में ही वैश्विक संस्था को स्थापना के संकेत दिए गए थे। अटलांटिका घोषणा में प्रस्तुत अटलांटिका घोषणा पत्र को संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्मदाता माना जाता है जबकि इस क्रम में छठा सम्मेलन जोकि डम्बटर्न ऑक्स में बुलाया गया था यह निषेधाधिकार की व्यवस्था के लिए स्मरणीय है।

राष्ट्र संघ का संयुक्त राष्ट्र संघ में हस्तांतरण अप्रैल 1946 को अंततोगत्वा संपन्न हो गया। संयुक्त राष्ट्र संघ निस्संदेह राष्ट्र संघ से अधिक सक्षम, व्यापक और शक्तिशाली है। किंतु फिर भी राष्ट्र संघ की प्रसंविदा और संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में असमानताएं होने के साथ कुछ समानताएं भी विद्यमान हैं। जैसे– दोनों का जन्म युद्धों के बाद हुआ है, विजेता राष्ट्र की महत्वपूर्ण भूमिका का होना और न्यास व्यवस्था मैन्डेट व्यवस्था का विकसित रूप है।

2.7 मुख्य शब्दावली

- **संयुक्त राष्ट्र** : संयुक्त राष्ट्र एक ऐसा अंतर्राष्ट्रीय संगठन है जिसका उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय कानून को सुविधाजनक बनाने के सहयोग, अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति, मानव अधिकार, विश्व शांति के लिए कार्यरत रहता है।
- **अटलांटिक चार्टर** : संयुक्त घोषणा जिसके अंतर्गत आठ बिंदुओं पर हस्ताक्षर किए गए थे।
- **सम्मेलन** : किसी विशेष उद्देश्य से अथवा किसी विशेष विषय पर विचार करने के लिए एकत्र होना।
- **घोषणापत्र** : सार्वजनिक रूप से अपने सिद्धांतों एवं इरादों को प्रकट करना।

टिप्पणी

2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।
2. संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धांतों को स्पष्ट कीजिए।
3. संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
4. राष्ट्र और संयुक्त राष्ट्र संघ के बीच समानताएं संक्षेप में लिखिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना से पूर्व अंतर युद्धकालीन सम्मेलनों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. संयुक्त राष्ट्र संघ पर एक विस्तृत लेख लिखिए।
3. राष्ट्र संघ और संयुक्त राष्ट्र संघ के बीच समानता और असमानताओं का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
4. अटलांटिक घोषणा और डम्बटर्न सम्मेलन पर टिप्पणी लिखिए।

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

- अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, एम.पी. रॉय, कालिज बुक डिपो, जयपुर।
- अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, रमेश तिवारी, वि.वि. प्रकाशन, बनारस।

इकाई 3 महासभा, सुरक्षा परिषद, आर्थिक व सामाजिक परिषद, न्यास परिषद, अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय, सचिवालय व अन्य विशिष्ट अभिकरण

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 महासभा : संगठन एवं भूमिका
3.3 सुरक्षा परिषद संगठन एवं भूमिका
3.4 आर्थिक तथा सामाजिक परिषद
3.5 न्यास परिषद : संगठन एवं भूमिका
3.6 अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय
3.7 सचिवालय
3.8 संयुक्त राष्ट्र संघ के विशिष्ट अभिकरण एवं गैर राजनीतिक कार्य
3.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.10 सारांश
3.11 मुख्य शब्दावली
3.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.13 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

महासभा संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी अंगों में सबसे महत्वपूर्ण अंग है। शूमा ने इसे संसार की नगर सभा तथा सीनेटर काण्डेनबर्ग ने इसे विश्व की लघु संसद कहा है। महासभा में संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्यों को बैठने का अधिकार होता है। प्रत्येक राष्ट्र इसमें अपने 5 प्रतिनिधि भेजता है। महासभा का वर्ष में एक बार अधिवेशन होता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण अंग है सुरक्षा परिषद महासभा की तुलना में बहुत ही छोटा सदन है परन्तु उससे कहीं अधिक शक्तिशाली है। इसे संयुक्त राष्ट्र संघ की कुंजी भी कहा जाता है। सदस्यता की दृष्टि से केवल पांच शक्तिशाली देशों का समूह है लेकिन यह वर्ष भर कार्यरत रहता है। इसमें कुल 15 सदस्य होते हैं। पांच स्थायी सदस्य और दस अस्थायी सदस्य प्रत्येक वर्ष पांच अस्थायी सदस्यों को दो वर्षों के लिए चुना जाता है। सुरक्षा परिषद की सबसे महत्वपूर्ण शक्ति इसके निषेधाधिकार की है जो उसे अन्य अंगों से विशिष्ट बनाती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर का आठवां अध्याय न्यास परिषद के संबंध में है। 75वें अनुच्छेद के अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ न्यास प्रदेशों के प्रशासन और नियंत्रण के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय न्यास व्यवस्था को स्थापित करेगा जो आपसी समझौतों के आधार पर संचालित होगा। हालांकि 1 नवम्बर, 1994 को पलाऊ की स्वतंत्रता के पश्चात न्यास

परिषद ने अपने कार्यकलाप रोक दिए हैं। तथापि 25 मई 1994 को एक प्रस्ताव पास किया गया जिसमें यह सुनिश्चित किया गया कि परिषद की वर्ष में एक बार बैठक होगी या आवश्यकतानुसार बैठक होगी।

संयुक्त राष्ट्र संघ की सामाजिक और आर्थिक परिषद का गठन इस तथ्य पर आधारित है कि अंतर्राष्ट्रीय शांति केवल राजनीतिक विवादों का समाधान करने से ही संभव नहीं है। जब तक विश्व में सामाजिक और आर्थिक समस्याएं विद्यमान रहेंगी तब तक राजनीतिक अस्थिरता बनी रहेगी। इस परिषद का गठन 1945 में किया गया था उस समय केवल 18 देश इसके सदस्य थे वर्तमान में 54 देश इस परिषद के सदस्य हैं।

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रमुख कानूनी संस्था है। इस न्यायालय मे केवल विधिक मामलों को ही देखा जाता है। इसकी स्थापना 3 अप्रैल सन 1945 को हेग में हुई थी। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में 15 न्यायाधीश होते हैं। अपनी दुर्बलताओं के बावजूद अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने बड़ी कुशलता के साथ अपने कार्यों का संचालन किया है। साथ ही साथ अंतर्राष्ट्रीय विधि के विकास और संहिताकरण में महत्वपूर्ण तथा अतुलनीय योगदान दिया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के छठे अंग के रूप में सचिवालय का उल्लेख करना अत्यंत आवश्यक है। सचिवालय में स्थायी सेवाओं वाले व्यक्ति कार्यरत रहते हैं जिससे इसमें हमेशा कार्य चलता रहता है। फलतः यह एक स्थायी संस्था है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्य अंगों की अपेक्षा यह अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यही महासभा और सुरक्षा परिषद के अधिवेशनों को वास्तविक स्थायी और शाश्वत आकार प्रदान करता है। सचिवालय का मुख्य पदाधिकारी महासचिव होता है। जिसकी नियुक्ति 5 वर्षों के लिए होती है।

प्रस्तुत इकाई में हम विश्व के प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय संगठन संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रमुख अंगों के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- संयुक्त राष्ट्र संघ के 6 प्रमुख अंगों के बारे में विस्तार से जान पाएंगे;
- महासभा के गठन, सदस्यता, इसकी बैठक, मतदान पद्धति आदि को समझ पाएंगे;
- सुरक्षा परिषद के एक स्थायी सदन होने के कारण क्या हैं? तथा उसके शक्तिशाली होने के पीछे के कारणों को भी समझ पाएंगे;
- न्यास परिषद तथा आर्थिक और सामाजिक परिषद की भूमिका का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- सचिवालय संयुक्त राष्ट्र संघ की रीढ़ है इस कथन का मूल्यांकन कर पाएंगे।

3.2 महासभा : संगठन एवं भूमिका

महासभा, संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख अंगों में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। शूमां ने इसे संसार की नगरसभा कहा है तथा सीनेटर काण्डेनबर्ग ने इसे विश्व की लघु संसद की संज्ञा दी थी। इसके गठन, अधिकार एवं दायित्वों के अवलोकन से जान पड़ता है कि इस विश्व संस्था के संस्थापकों का उद्देश्य महासभा को एक महान अंतर्राष्ट्रीय नैतिक तथा राजनीतिक मंच बनाना था।

संयुक्त राष्ट्र के समस्त सदस्यों को महासभा में बैठने का अधिकार है। इसका अधिवेशन साधारणतः वर्ष में एक बार होता है और चार्टर के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत इसको सभी विषयों पर विचार करने का अधिकार है। इस संस्था का रूप मानव पार्लियामेण्ट का है यद्यपि आज भी कुछ राष्ट्र इसके सदस्य नहीं हैं। चार्टर के अनुसार सुरक्षा परिषद को स्वतंत्र रूप से कुछ अधिकार प्राप्त हैं। इन अधिकारों के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ के समस्त विभागों पर महासभा का पर्याप्त अधिकार है।

प्रतिनिधित्व– महासभा में संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्यों को प्रतिनिधित्व प्राप्त है और प्रत्येक राष्ट्र को एक मत देने का अधिकार प्राप्त है। यद्यपि प्रत्येक राष्ट्र को अधिकतम 5 प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। प्रतिनिधियों को वाद–विवाद में भाग लेने का अधिकार तो है किंतु वोट देने के समय एक देश का चाहे यह कितना ही बड़ा राष्ट्र हो अथवा छोटा राष्ट्र हो एक ही वोट समझा जाता है।

संयुक्त राष्ट्र का यह प्रमुख अंग इस युग में विश्व लोकमत का प्रतीक बन गया है। आजकल इसके 193 सदस्य राज्य हैं। इसकी सदस्य संख्या को ही देखकर इसकी सार्वदेशिक विशेषता का अनुभव किया जा सकता है।

मतदान प्रक्रिया– चार्टर के अनुच्छेद 18 में महासभा की मतदान प्रक्रिया का उपबंध किया गया और राष्ट्र संघ की सीमा की भांति राज्यों की समानता का यह सिद्धांत उपर्युक्त अनुच्छेद में बनाए रखा गया है कि महासभा के प्रत्येक सदस्य का एक ही वोट होगा। महत्वपूर्ण प्रश्नों पर महासभा के निर्णय उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से होंगे और अन्य प्रश्नों पर निर्णय जिनमें दो–तिहाई बहुमत द्वारा निर्णय किए जाने वाले प्रश्नों के अतिरिक्त प्रवर्गों का निर्धारण भी सम्मिलित है, उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के साधारण बहुमत द्वारा किया जाएगा। इस प्रकार राष्ट्र संघ की प्रसंविदा का सर्वसम्मति का नियम त्याग दिया गया है।

चार्टर के महत्वपूर्ण प्रश्नों के विषय में निर्णय उस समय उपस्थित एवं मत देने वाले सदस्यों के दो–तिहाई बहुमत से किए जाएंगे एवं अन्य प्रश्न जिनके विषय में निर्णय उस समय उपस्थित सदस्यों के बहुमत से किया जाएगा, में भेद करता है। महत्वपूर्ण प्रश्नों की सूची में अनेक प्रश्न गिनाए गए हैं जैसे –

(1) अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाए रखने के विषय में सिफारिशें

(2) सुरक्षा परिषद के अस्थायी सदस्यों का निर्वाचन

(3) आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के सदस्यों का निर्वाचन

(4) चार्टर के अनुच्छेद 86 के खंड1(ग) के अनुसार न्यास परिषद के सदस्यों का निर्वाचन

टिप्पणी

(5) संयुक्त राष्ट्र में नवीन सदस्यों का प्रवेश

(6) सदस्यता के अधिकारों एवं विशेषाधिकारों का निलंबन

(7) सदस्यों का निष्कासन

(8) न्यास पद्धति के परिचालन संबंधी प्रश्न और

(9) बजट संबंधी प्रश्न यद्यपि नवीन महत्वपूर्ण प्रश्न उपर्युक्त सूची में बहुमत से निर्णय लेकर बढ़ाए जा सकते हैं। विगत वर्षों में महासभा ने उपर्युक्त प्रश्नों के अतिरिक्त किसी अन्य प्रश्न विशेष को महत्वपूर्ण प्रश्नों के वर्ग में नहीं रखा है और अनेक विशिष्ट मामलों में अस्थायी आधार पर ही निर्णय लेने का निश्चय किया है।

महासभा का वार्षिक अधिवेशन नियमित रूप से सितंबर माह के तीसरे मंगलवार से शुरू होता है और प्रायः दिसंबर मध्य तक चलता है। प्रत्येक नियमित सत्र के आरंभ में महासभा नया अध्यक्ष, 21 उपाध्यक्ष और अपनी सात मुख्य समितियों के सभापति (चेयरमैन) निर्वाचन करती है। समान भौगोलिक प्रतिनिधित्व प्रदान करने की दृष्टि से महासभा की अध्यक्षता प्रतिवर्ष राज्यों के पांच समूहों–अफ्रीकी एशियाई, पूर्वी यूरोपीय, लैटिन, अमरीकी और पश्चिमी यूरोपीय तथा अन्य राज्यों में बारी–बारी से दी जाती है। विशेष अधिवेशन बुलाने का विकल्प भी उपलब्ध है। ऐसे विशेष अधिवेशन सुरक्षा परिषद अथवा संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों के बहुमत द्वारा अनुरोध किए जाने पर महासचिव द्वारा बुलाए जाते हैं। महासभा एक स्वीकृत प्रक्रिया द्वारा नियमों को स्वतः अंगीकार करती है। प्रत्येक अधिवेशन के लिए अपना सभापति निर्वाचित करती है जो महासभा की कार्रवाई का संचालन करता है।

अधिकार और कर्तव्य– सुरक्षा परिषद के अंतर्गत विचाराधीन विषयों पर महासभा वाद–विवाद कर सकती है। महासभा सुरक्षा परिषद की रिपोर्ट पर आलोचना करने के अतिरिक्त इसमें कोई हेर–फेर नहीं कर सकती। महासभा द्वारा सुरक्षा परिषद के 10 अस्थायी सदस्यों, आर्थिक तथा सामाजिक परिषद के 54 सदस्यों एवं न्यास परिषद के अस्थायी सदस्यों का निर्वाचन होता है। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के सदस्यों को निर्वाचित करने का अधिकार समान रूप से महासभा एवं सुरक्षा परिषद को है। सुरक्षा परिषद की स्वीकृति प्राप्त होने पर ही महासभा नए सदस्यों को पद ग्रहण करने की अनुमति देती हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों की नियुक्ति भी महासभा, सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर करती हैं संयुक्त राष्ट्र संघ का आय–व्यय (बजट) महासभा द्वारा ही स्वीकृत होता है। अतः महासभा का अन्य अंगों पर स्वतः आर्थिक नियंत्रण हो जाता है। चार्टर की उपधारा एक के अनुसार राष्ट्र संघ की सदस्यता का अर्थ है महासभा की सदस्यता से उद्दण्ड राष्ट्रों को निकालने का अधिकार महासभा को प्राप्त है। यह किसी राष्ट्र को सुरक्षा परिषद के अनुरोध पर कुछ समय के लिए संघ की सदस्यता से हटा सकती है। किंतु यदि कोई चार्टर के आदेशों और सिद्धांतों की लगातार अवहेलना करता है तो सुरक्षा परिषद के अनुरोध पर महासभा उसे सदा के लिए निकाल सकती है लेकिन अभी तक ऐसा कोई अवसर उपस्थित नहीं हुआ है। जो राष्ट्र सदस्यता शुल्क दो वर्ष लगातार अदा नहीं करता उसे साधारण सभा में मत देने का अधिकार नहीं होता किंतु आर्थिक कठिनाई अथवा किसी अन्य विवशता के कारण यदि वह शुल्क बाकी रह गया

हो तो महासभा को अधिकार है कि इस संबंध में संतोष होने पर कि जानबूझकर देरी नहीं की गई है उसे मत देने के अधिकार से वंचित न करे।

महासभा का ऐच्छिक कार्य– चार्टर के अनुसार महासभा के दो प्रकार के कार्य हैं। इसमें एक ऐच्छिक और दूसरा अनिवार्य है। पहला प्रकार अर्थात् शांति की स्थापना अंतर्राष्ट्रीय है, संयुक्त राष्ट्र संघ एक सक्रिय क्रियाशील अंतर्राष्ट्रीय निकाय है, इसका तीसरा उद्देश्य जहां सामूहिक कार्रवाई संभव न हो प्रभावपूर्ण ढ़ग से राजनीतिक दबाव डालना है ताकि आक्रमण या हस्तक्षेप का प्रतिरोध किया जा सके। इसका एक उद्देश्य यह भी है कि वीटो के डंक को कम किया जा सके।

शांति के लिए एकता प्रस्ताव के पक्ष व विपक्ष में भले ही कितने ही तर्क दिए जाएं किंतु संयुक्त राष्ट्र के प्रयोजनों एवं सिद्धांतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उक्त प्रस्ताव सर्वथा न्यायसंगत है। यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि उक्त प्रस्ताव के अंतर्गत महासभा को शांति के लिए संकट सिद्ध होने वाले, शांति भंग अथवा आक्रमण कृत्यों की विद्यमानता पर निर्णय करने का अधिकार है बशर्ते कि सुरक्षा परिषद अपने प्रारम्भिक दायित्वों (शांति एवं सुरक्षा के पोषण) के पालन में निषेधाधिकार के कारण असफल हो गई हो।

छोटी असेम्बली– 1947 में सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यों के उग्र विरोधी और वीटो के प्रयोग के कारण ऐसा गतिरोध उत्पन्न हो गया कि सुरक्षा परिषद से युद्ध और आक्रमणों की आशंकाओं से भयभीत विश्व को सुरक्षा पाने या शांति बनाए रखने की आशाओं का पूरा होना असंभव प्रतीत हुआ। अतः महासभा ने इस नवीन परिस्थिति का समाधान करने के लिए 13 नवम्बर, 1947 को अंतरिम समिति नामक एक सहायक अंग स्थापित किया। इसे छोटी असेम्बली कहा जाता है। यह महासभा का सामान्य अधिवेशन न होने की दशा में उसके अधिकार–क्षेत्र में आने वाले प्रश्नों पर विचार करती है। इसके लिए इसे जांच कमीशन नियत कराने, आवश्यक अन्वेषण कराने और महासचिव को महासभा का विशेष अधिवेशन बुलाने की सिफारिश करने का अधिकार है। महासभा के प्रत्येक सदस्य को इसमें एक सदस्य भेजने का अधिकार है। आरंभ में यह दो बार एक वर्ष के लिए बनाई गई थी। नवम्बर 1949 में इसे अनिश्चित अवधि के लिए पुनः स्थापित किया गया। सन 1952 के बाद इसकी कोई बैठक नहीं हुई है। सोवियत संघ तथा उसके समर्थक देश इसके घोर विरोधी थे।

महासभा की प्रतिष्ठा में वृद्धि के कारण– डॉ. नगेन्द्र सिंह के अनुसार, 1949 से सुरक्षा परिषद की तुलना में महासभा का महत्व बढ़ रहा है। सुरक्षा परिषद की अपेक्षा वर्तमान में महासभा की शक्तियों में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इसके निम्न प्रमुख कारण हैं–

(1) महासभा में सभी देशों को प्रतिनिधित्व मिला हुआ है जिससे लोकतंत्र के इस युग में यह विश्व लोकमत का प्रतीक बन गई है। जनमत की शक्ति के कारण इसके द्वारा लिए गए निर्णयों की उपेक्षा करना किसी भी सदस्य राष्ट्र के लिए संभव नहीं होता।

(2) राज्यों के आपसी विवादों को दूर करने के लिए महासभा द्वारा जो प्रस्ताव पारित किए गए हैं उनका असाधारण महत्व है जिससे इसकी शक्तियों एवं प्रभाव में भी वृद्धि हो गई है।

टिप्पणी

(3) सुरक्षा परिषद में निषेधाधिकार के बार–बार प्रयोग होने के कारण अनेक बार महासभा को महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का अवसर मिलता है। निषेधाधिकार से उत्पन्न गतिरोध को दूर करने के लिए पहले इसने छोटी सभा बनाई थी और बाद में शांति के लिए एकता प्रस्ताव पारित किया। इन दोनों घटनाओं ने इसकी प्रतिष्ठा एवं शक्तियों में अभूतपूर्व वृद्धि की।

(4) वस्तुतः संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों की संख्या में निरन्तर होने वाली वृद्धि इसके आकार और प्रतिष्ठा की अभिवृद्धि का स्वाभाविक कारण रही है संयुक्त राष्ट्र की महासभा का प्रारम्भ 51 सदस्य राज्यों से हुआ था और आजकल इसके सदस्य राज्यों की संख्या 179 है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि संयुक्त राष्ट्र वस्तुतः एक सार्वदेशिक संस्था है।

(5) महासभा को विश्व का उन्मुक्त अंतःकरण कहा जा सकता है क्योंकि यह अणु बम से लेकर मानवीय कल्याण, भोजन, कपड़ा, आवास तक की सभी समस्याओं पर विचार करती है और सिफारिश करती है। एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के नवोदित राष्ट्र इसकी कार्यवाहियों को बड़ी आशा भरी दृष्टि से देखते हैं।

हेरल्ड निकल्सन के अनुसार इसकी सिफारिशों का नैतिक प्रभाव ही नहीं वरन् राजनीतिक प्रभाव भी निश्चित एवं स्पष्ट रूप से पड़ता है।

(6) आपातकालीन सेना की नियुक्ति के कारण भी महासभा की शक्ति और प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई है।

(7) सुरक्षा परिषद के साथ ही महासभा को भी अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के प्रश्नों पर विचार करने का अधिकार है। इस अधिकार का समुचित प्रयोग कर महासभा ने अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि की है।

(8) महासभा का अन्वेषणात्मक और निरीक्षणात्मक अधिकार भी इसे संघ के अन्य अंगों की अपेक्षा विशिष्ट स्थिति प्रदान करता है।

महासभा की भूमिका : मूल्यांकन– महासभा को आधुनिक विश्व का उन्मुक्त अंतःकरण कहा जाता है। श्लीचर के अनुसार महासभा की प्रतिष्ठा दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। गुडरिच के अनुसार महासभा एक सार्वजनिक सभास्थल ही नहीं बल्कि इसने अपने आपको निश्चय लेने योग्य भी प्रमाणित कर दिया है। विश्व–शांति और सुरक्षा स्थापित करने में भी इसने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। स्टार्क के अनुसार यह बात उल्लेखनीय है कि महासभा ने अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा संबंधी प्रश्नों के समाधान में प्रमुख रूप से भाग लिया है। इसने संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष लाए गए कुछ प्रमुख प्रश्नों पर विचार करके फिलिस्तीन, यूनान, स्पेन और कोरिया के संबंध में कार्रवाई की है।

लंबे समय तक महासभा की बैठकों में गुटीय भावनाओं का आभास मिलता रहा है। कभी–कभी अफ्रीकन, अफ्रो–एशियन तथा लैटिन अमेरिकन समूह नियमित रूप से मिलते हैं और अपनी समस्याओं पर गुटीय दृष्टि से विचार करते हैं। गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का भी एक वर्ग बन गया है। अधिकतर यह देखा गया है कि अमेरिका एवं यूरोपीय

मित्र–राष्ट्र पश्चिम का साथ देते हैं एवं अफ्रीकन–एशियन आवश्यकताओं के प्रति अपेक्षाकृत कम उदार होते हैं जबकि सोवियत संघ एवं कुछ अफ्रीकन–एशियन राष्ट्र उनके विरोध में रहे थे।

अपनी प्रगति जांचिए

1. वर्तमान समय में महासभा की सदस्य संख्या कितनी है।
   (क) 159 (ख) 110
   (ग) 193 (घ) 170
2. विश्व की प्रथम भारतीय महिला जिसे महासभा के लिए सभापति निर्वाचित किया गया था?
   (क) सरोजिनी नायडू (ख) विजय लक्ष्मी पण्डित
   (ग) सुचेता कृपलानी (घ) कोकिला नायडू
3. महासभा के अधिवेशन में एक राज्य कितने प्रतिनिधि भेजता है?
   (क) 5 (ख) 7
   (ग) 1 (घ) 10
4. महासभा का अधिवेशन वर्ष में कितनी बार होता है?
   (क) एक (ख) तीन
   (ग) दो (घ) चार
5. किस विद्वान ने महासभा को संसार की नागरिक सभा की संज्ञा दी है?
   (क) विन्सटन चर्चिल (ख) सीनेटर वेण्डेन बर्ग
   (ग) कोफी अन्नान (घ) शूमां

3.3 सुरक्षा परिषद संगठन एवं भूमिका

राष्ट्र संघ के अनुभवों ने संयुक्त राष्ट्र के निर्माताओं के मस्तिष्क में यह धारणा उत्पन्न करा दी थी कि समूचे विश्व समुदाय के अंदर एक पांच महाशक्तियों का भी समुदाय विद्यमान है, जिनकी मित्रता एवं मतैक्य पर ही विश्व की शांति एवं सुरक्षा कायम रह सकती है। फलतः डम्बर्टन ऑक्स सम्मेलन में इस तथ्य पर अधिक बल दिया गया था कि एक ऐसे कार्यपालक अंग की स्थापना की जाए, जिसकी सदस्यता सीमित हो, जिसमें पांच बड़े राष्ट्रों की प्राथमिकता हो, जो विश्व में शांति एवं सुरक्षा की रक्षा के हेतु पुलिस दायित्व से संपन्न हो, जो अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए एक सजग प्रहरी का कार्यभार ग्रहण कर सके, जिसका सत्र कभी समाप्त न हो और जो शांति के लिए संकट सिद्ध होने वाले, शांति भंग अथवा आक्रामक कृत्यों की विद्यमानता पर शीघ्र निर्णय लेकर उनके निराकरण के लिए तुरंत एवं प्रभावी कार्रवाई करने में पूर्णतः सक्षम हो।

इसलिए संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्माताओं ने विश्व संस्था की संपूर्ण शक्ति 'सुरक्षा परिषद' में निहित कर दी है। सुरक्षा परिषद को अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा का

पहरेदार माना जाता है। महासभा की अपेक्षा सुरक्षा परिषद बहुत ही छोटा सदन है परंतु इसकी शक्ति महासभा की अपेक्षा बहुत व्यापक है। यदि महासभा मानवता की सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है तो सुरक्षा परिषद विश्व की सर्वोच्च शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। राजनीतिक विषयों में सुरक्षा परिषद, संयुक्त राष्ट्र का कार्यपालिका का अंग है। पामर और पर्किन्स ने इसे संयुक्त राष्ट्र की कुंजी कहा है। ए.एच. डॉक्टर ने इसे संघ की प्रवर्तन भुजा तथा डेविड कुशमेन ने दुनिया का पुलिसमैन कहा है। सुरक्षा परिषद संयुक्त राष्ट्र संघ का हृदय है। संकट का समय हो या शांति का, संयुक्त राष्ट्र के दूसरे अंग कार्य कर रहे हों या न कर रहे हों, वर्ष का कोई समय हो या कैसा ही मौसम हो, सुरक्षा परिषद अपने कार्य करती ही रहती है।

संगठन– चार्टर के पांचवें अध्याय में सुरक्षा परिषद के संगठन संबंधी नियम दिए गए हैं। इसके अनुसार परिषद में मूलतः पांच स्थायी और छह अस्थायी कुल 11 सदस्य होते हैं। परंतु सितंबर 1965 में चार्टर के संशोधन के द्वारा अस्थायी सदस्य की संख्या बढ़ाकर 10 कर दी गई। ऐसा इसलिए किया गया कि सन 1945 के पश्चात् संघ के सदस्यों की संख्या दोगुनी से भी अधिक हो गई और छोटे–छोटे सदस्य राज्य सुरक्षा परिषद में अधिक स्थान की मांग करने लगे थे। तदनुसार महासभा ने निर्णय लिया कि 10 अस्थायी सदस्यों में से 5 एशियाई –अफ्रीकी राज्यों में से, एक पूर्वी यूरोप से, दो दक्षिणी अमेरिका व शेष दो पश्चिमी यूरोप व अन्य राज्यों में से होने चाहिए। इस प्रकार सुरक्षा परिषद की कुल सदस्य संख्या 15 हो गई। चीन, फ्रांस, सोवियत संघ (अब सोवियत संघ का स्थान रूस ने ले लिया है), ग्रेट ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका इसके स्थायी सदस्य हैं। सोवियत संघ के विघटन के बाद सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्य का उसका स्थान 'रूस' को प्रदान कर दिया गया है। जब तक सुरक्षा परिषद का अस्तित्व रहेगा इनकी सदस्यता भी बनी रहेगी। अस्थायी सदस्यों का निर्वाचन महासभा अपने दो तिहाई बहुमत से 2 वर्ष के लिए करती है सदस्यों का निर्वाचन करते समय महासभा संगठन के उद्देश्यों, अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के संबंध में संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों के योगदान का तथा भौगोलिक क्षेत्रों को प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता का ध्यान रखती है। जिस देश का कार्यकाल समाप्त हो जाता है उसे उसी साल पुनः उम्मीदवार होने का अधिकार प्राप्त नहीं होता है। अस्थायी सदस्यों के प्रथम निर्वाचन में 3 सदस्य 1 वर्ष के कार्यकाल के लिए चुने गए थे 14 नवंबर, 1970 को भारत सहित 19 गुटनिरपेक्ष देशों ने सुरक्षा परिषद की संख्या बढ़ाने हेतु एक प्रस्ताव महासभा में पेश किया। इस प्रस्ताव में मांग की गई कि परिषद के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 21 कर दी जाए। गुटनिरपेक्ष देशों का तर्क था कि इससे तीसरी दुनिया के देशों को परिषद में समुचित प्रतिनिधित्व मिल सकेगा। अमेरिका और सोवियत संघ का मत था कि इससे सुरक्षा परिषद की कुशलता नकारात्मक रूप से प्रभावित होगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महासभा के विपरीत संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की सदस्यता सीमित कर दी गई है। आजकल इसकी सदस्यता संख्या 15 है जिनमें से पांच स्थायी सदस्य हैं एवं दूसरे 10 अस्थायी सदस्य हैं। 1947 में ही 5 सदस्यों का नामोल्लेख कर दिया गया था क्योंकि उस समय यही उपधारणा की गई थी कि द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात इन 5 राष्ट्रों के अतिरिक्त और कोई महाशक्ति विद्यमान नहीं थी जो विश्व में शांति एवं सुरक्षा कायम रखने में सक्षम हो। वास्तव में यह उस समय का

एक राजनीतिक निर्णय था तथा इन पांच स्थायी सदस्यों के नामोल्लेख ने चार्टर में गतिशीलता की जगह स्थायित्व के तत्वों का समावेश करने का प्रयास किया था। चार्टर अंगीकार करने के पश्चात कम से कम 25 वर्षों तक स्थायी सदस्यों की सूची पूर्ववत बनी रही और उक्त सूची में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। किंतु साम्यवादी चीन के प्रवेश के बाद यह प्रमाणित हो गया कि चार्टर विधि स्थिर नहीं गतिशील है। विश्व की महान शक्तियों की सूची भी परिवर्तनशील है। सन 1945 में तथाकथित 5:00 बजे स्थायी सदस्य राज्यों में चीनी गणराज्य को भी रखा गया था किंतु सन 1971 में उसे स्थायी सदस्यों की सूची से निष्कासित कर साम्यवादी चीन को स्थायी सदस्य बनाया गया। स्पष्ट हो जाता है कि संयुक्त राष्ट्र के संस्थापकों द्वारा विनिर्दिष्ट स्थायी सदस्यों की सूची तर्कहीन थी।

परिषद की कार्यप्रणाली– UN चार्टर का अनुच्छेद 27 सुरक्षा परिषद में मतदान प्रक्रियाओं को नियंत्रित करता है। इसके अनुसार :

1. सुरक्षा परिषद के प्रत्येक सदस्य का एक वोट होगा।
2. प्रक्रियात्मक मामलों (Procedural Matters) पर निर्णय सुरक्षा परिषद के कुल 15 में से 9 सदस्यों के सकारात्मक वोट द्वारा किए जाएंगे।
3. अन्य सभी मामलों पर सुरक्षा परिषद के निर्णय, स्थायी सदस्यों के समवर्ती वोटों सहित, नौ सदस्यों के सकारात्मक वोट द्वारा किए जाएंगे; बशर्ते कि, अध्याय VI के अंतर्गत किए जाने वाले निर्णयों में विवाद से संबंधित पक्ष मतदान न करे।

इसका मतलब यह है कि गैर–प्रक्रियात्मक मुद्दों (Non-Procedural Issues) पर, जैसे कि इराक के खिलाफ बल के उपयोग को अधिकृत करने वाला एक प्रस्ताव, यदि इसे पारित करना है तो सुरक्षा परिषद के नौ सदस्यों को इसके पक्ष में मतदान करना होगा और स्थायी पांच सदस्यों में से कोई भी इसे वीटो न करे। हालांकि, अनुपस्थिति को वीटो नहीं माना जाता है।

सुरक्षा परिषद में प्रत्येक सदस्य राष्ट्र के सिर्फ एक–एक प्रतिनिधि रहते हैं अतः इस परिषद की बैठक में अधिक से अधिक 15 सदस्य उपस्थित होते हैं जिनसे गंभीर विषय पर विचार विमर्श करने और निर्णय देने में सुविधा होती है। सुरक्षा परिषद के प्रत्येक सदस्य राज्य का एक प्रतिनिधि संघ के मुख्य कार्यालय में बना रहता है। प्रक्रिया संबंधी मामलों पर निर्णय के लिए 9 मतों की आवश्यकता होती है प्रक्रिया संबंधी विषयों का आशय ऐसे मामलों से है जिनमें सुरक्षा परिषद की बैठक के समय, स्थान का निर्णय करना, इसके सहायक अंगों की स्थापना, कार्रवाई चलाने के नियम और सदस्यों को बैठक में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित करना आदि से है परंतु अन्य सभी महत्वपूर्ण मामलों में निर्णय के लिए 9 स्वीकारात्मक मतों के साथ यह भी आवश्यक है कि 5 स्थायी सदस्य भी उस निर्णय से सहमत हों, इस प्रकार प्रत्येक सदस्य को सभी महत्वपूर्ण विषयों में निषेधाधिकार प्राप्त है।

कार्य एवं क्षेत्राधिकार–प्रमुख रूप से विश्व शांति एवं सुरक्षा उसका कार्य क्षेत्र है। सुरक्षा परिषद के क्षेत्राधिकार में आने वाले बहुत से संगठनात्मक विषयों में उसे कानूनी रूप से बाध्यकारी अधिकार प्राप्त हैं। नए राष्ट्र को संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता प्रदान करना, महासचिव का चयन, अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति, आदि

सभी ऐसे कार्य जो वह महासभा से मिलकर करती है बाध्यकारी प्रभाव रखते हैं। सुरक्षा परिषद अपने आंतरिक मामलों का स्वयं निर्णय करती है। यद्यपि महासभा उनके संबंध में चर्चा एवं सिफारिश कर सकती है। जहां तक शांति एवं सुरक्षा संबंधी निर्णयों को लागू करने का प्रश्न है केवल सुरक्षा परिषद ही शांति भंग करने वाले के विरुद्ध कठोर कार्रवाई कर सकती है। यदि सुरक्षा परिषद यह निर्णय करती है कि किसी परिस्थिति से विश्व शांति एवं सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गया है या शांति भंग हो रही है एवं यदि किसी राष्ट्र ने दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण कर दिया है तो उसे कूटनीतिक,आर्थिक एवं सैनिक कार्रवाई का आदेश करने का अधिकार है एवं सदस्य राष्ट्र की इच्छा अनुसार उक्त निर्णय को मानने एवं लागू करने को बाध्य है।

नए सदस्य को सदस्यता प्रदान करने के क्षेत्र में सुरक्षा परिषद को महासभा की अपेक्षा अधिक निर्णयात्मक अधिकार प्राप्त हैं। सदस्यता प्राप्त करने के लिए किसी भी देश को संयुक्त राष्ट्रीय महासचिव के पास आवेदन प्रस्तुत करना पड़ता है जिसे वह सुरक्षा परिषद के विचार हेतु भेज देता है। सुरक्षा परिषद की सदस्यता प्रदान करने से संबंधित अपनी समिति की राय पर स्वयं उक्त देश की सदस्यता की पात्रता पर विचार करती है जिसमें वह बहुत ही विशिष्ट परिस्थितियों में संतुष्ट होकर महासभा के पास अपनी सिफारिश भेज देती है। सुरक्षा परिषद की सिफारिश उसके सभी स्थायी सदस्यों की सहमति पर ही आधारित है।

संयुक्त राष्ट्र का महासचिव सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर ही महासभा द्वारा नियुक्त किया जाता है। स्थायी सदस्यों की सहमति के आधार पर सुरक्षा परिषद एवं अंत में महासभा अपना निर्णय ले सकती है। द्वितीय महासचिव डॉग हैमरशोल्ड के निधन के उपरांत महासचिव के लिए स्थायी सदस्यों की सहमति प्राप्त करना एक संकट का विषय बन गया था।

सुरक्षा परिषद का उद्देश्य शांति की स्थापना माना जाता है। सुरक्षा परिषद पहले तो विवाद को प्रस्तावों द्वारा समाप्त करना चाहती है, उसके बाद आर्थिक प्रतिबंध लगाने पर विचार करती है और अंत में सैनिक कार्रवाई की शक्ति एवं अधिकारों का प्रयोग कर सकती है। चार्टर में संयुक्त राष्ट्र की सेना का कहीं उल्लेख नहीं है। सुरक्षा परिषद के पास यह अधिकार अवश्य है कि वह सदस्य राष्ट्रों में किसी भी समय उसे सेवाएं उपलब्ध कराने को कह सकती है, जिसे वह निर्धारित उद्देश्य के लिए उपयोग करने का आदेश भी कर सकती है। चार्टर ने सुरक्षा परिषद को अधिकृत किया है कि वह शांति के जल, थल तथा नभ सेना का यथा उचित प्रयोग कर सकें।

सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर कोई भी राष्ट्र जिसके खिलाफ अनुशासन की कार्रवाई की गई हो, सदस्यता के अधिकार से अनिश्चित काल के लिए वंचित किया जा सकता है। परिषद को पुनः सदस्यता प्राप्त करा देने का भी अधिकार है। सुरक्षा परिषद के निर्णय पर ऐसा राज्य जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ की लगातार अवहेलना की गई हो सदस्यता से निकाला जा सकता है।

अनुच्छेद 109 के अनुसार 'संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में परिवर्तन' महासभा के दो तिहाई सदस्यों के मतों के अतिरिक्त सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों के समर्थन पर ही हो सकता है।

परिषद के चार तरीके– अंतर्राष्ट्रीय विवादों को निपटाने के लिए सुरक्षा परिषद निम्नलिखित चार प्रकार के तरीके अपना सकती है–

1. सर्वप्रथम, संबंधित राष्ट्रों को आपसी वार्ता में पत्र व्यवहार के लिए प्रेरित करती है।
2. द्वितीय, पंचों, मध्यस्थों अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा निर्णय का सुझाव रखती है।
3. तीसरे व प्रभावी उपाय के रूप में दोषी राष्ट्र के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबंध की आज्ञा दे सकती है।
4. आवश्यकता पड़ने पर अंतिम उपाय के रूप में सैनिक कार्रवाई कर सकती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के पास अपनी सेना नहीं है पर सैनिक कार्रवाई के लिए उसे सदस्य राष्ट्रों की सेनाएं प्राप्त होती हैं।

सुरक्षा परिषद संबंधित राष्ट्रों से अपने विवादों को शांतिपूर्ण माध्यम से सुलझाने का आग्रह कर सकती है। परिषद प्रत्येक ऐसी परिस्थिति की जांच भी कर सकती है जब उसे स्थिति के बिगड़ने का आभास होने लगे। सुरक्षा परिषद को संयुक्त राष्ट्र का पुलिस स्टेशन कहा जा सकता है। वह सदस्य राष्ट्रों से अपराधी राष्ट्र के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई के अतिरिक्त सभी उपाय करने का आग्रह कर सकती है। यदि किसी राष्ट्र ने सुरक्षा परिषद के शांतिपूर्ण समाधान की अवज्ञा कर दी हो तो वह सभी सदस्यों से इस बात का अनुरोध कर सकती है कि वह अपराधी राष्ट्र से अपने आर्थिक संबंध पूर्ण या आंशिक रूप से समाप्त कर ले। सदस्य राष्ट्रों से यह भी कहा जा सकता है कि उक्त राष्ट्र से हर तरह के कूटनीतिक संबंध समाप्त कर लिए जाएं एवं सभी सदस्य राष्ट्र उससे सब तरह के रेल, समुद्र, वायु, पोस्ट, रेडियो, टेलीफोन एवं संचार के लिए अन्य संबंध समाप्त कर ले। खाड़ी संकट के समय (1990–91) इराक के खिलाफ सुरक्षा परिषद ने सैनिक कार्रवाई की तथा लीबिया के खिलाफ आर्थिक प्रतिबंध (अप्रैल 1992) लगाने का निर्णय लिया। इन प्रतिबंधों में लीबिया के हवाई संपर्कों पर प्रतिबंध लगाना शामिल है जिसके कारण लीबिया का वायु मार्ग के जरिए शेष विश्व से संपर्क कट गया। सबसे बड़ी समस्या यह है कि सुरक्षा परिषद के अधिकार में ऐसे कोई साधन नहीं हैं जिनका वह अपराधी राष्ट्र के विरुद्ध प्रत्यक्ष उपयोग कर सके। अधिकतर संभावना यही होती है कि सुरक्षा परिषद के द्वारा की गई सलाह पर महासभा न करे क्योंकि सुरक्षा परिषद के उपदेश भी बाध्यकारी नहीं होते। यदि कभी दुर्भाग्यवश अपराधी राष्ट्र का समर्थन कोई महाशक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कर रही है तो सुरक्षा परिषद की सब कार्रवाई उपदेश मात्र रह जाएगी।

यदि सुरक्षा परिषद को यह विश्वास हो जाए कि शांति भंग करने वाले राष्ट्र के विरुद्ध किए गए ऐसे असैनिक उपाय अपर्याप्त हैं, तो यह तुरंत जल, थल तथा नभ सेना द्वारा कार्रवाई कर सकती है। इस तरह की कार्रवाई पूर्ण सैनिक दबाव का रूप भी ग्रहण कर सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि सुरक्षा परिषद का संगठन ऐसा किया गया है कि यदि उसके सभी स्थायी सदस्य एकमत होकर कार्य करें तो विश्व में शांति भंग होने का भय हमेशा के लिए समाप्त हो जाए। महाशक्तियों के बीच विचारधाराओं का अंतर है और उनके राष्ट्रहित आपस में इतने अधिक टकराते हैं कि सुरक्षा परिषद को जो भी सैनिक शक्तियां उपलब्ध हैं उनका यथार्थ उपयोग संभव ही नहीं है।

परिषद की सैनिक स्टाफ समिति– एक सैनिक स्टाफ समिति की सलाह से सुरक्षा परिषद, सशस्त्र सेनाओं को उपयोग में लाने की योजनाओं को बनाएगी। यह समिति, सुरक्षा परिषद को सैनिक विषयों में सहायता और परामर्श देगी– अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बनाए रखने, सेनाओं का प्रयोग और कमान, शस्त्रों का नियंत्रण एवं संभावित निशस्त्रीकरण का कार्य यह समिति करेगी। इस समिति के सदस्य, सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों के सैनिक स्टाफों के अध्यक्ष या उनके प्रतिनिधि होंगे। सुरक्षा परिषद को उपयोग के लिए दी गई सशस्त्र सेनाओं का सामरिक संचालन सैनिक समिति के हाथ में होगा और यह सुरक्षा परिषद के अधीन होगी।

सुरक्षा परिषद में मतदान की प्रणाली तथा वीटो– चार्टर की धारा 27 में सुरक्षा परिषद में मतदान की प्रक्रिया का वर्णन है। इसके अनुसार प्रक्रिया संबंधी विषय में परिषद के निर्णय 9 सदस्यों के स्वीकारात्मक मत से किए जाएंगे। प्रक्रिया संबंधी विषयों का आशय ऐसे मामलों से है जिनमें सुरक्षा परिषद की बैठक के समय या स्थान का निर्णय करना, इसके सहायक अंगों की स्थापना, कार्रवाई चलाने के नियम और सदस्यों को बैठक में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित करना आदि हो इसके अतिरिक्त अन्य सभी विषय महत्वपूर्ण या सारवान समझे जाते हैं। ऐसे विषयों के निर्णय के लिए 9 सदस्यों के स्वीकारात्मक वोट के साथ पांच स्थायी सदस्यों के सभी स्वीकारात्मक वोट भी होने चाहिए। इसी व्यवस्था के अनुसार यदि पांच स्थायी सदस्यों में से कोई एक भी किसी महत्वपूर्ण निर्णय के विपक्ष में वोट देता है तो वह विषय अस्वीकृत समझा जाएगा। इस प्रकार प्रत्येक स्थायी सदस्य को निषेधाधिकार प्राप्त है।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रक्रिया संबंधी विषय को छोड़कर अन्य सभी विषयों में निर्णय लेने में पांच स्थायी सदस्यों की सर्वसम्मति अनिवार्य है यदि कोई भी स्थायी सदस्य इन विषयों में निर्णय लेने के समय अपना नकारात्मक मत प्रदान करता है तो सुरक्षा परिषद उन विषयों पर कोई निर्णय नहीं ले सकती है। इस प्रकार स्थायी सदस्यों में से किसी भी एक का नकारात्मक वोट सुरक्षा परिषद को निर्णय लेने से रोक सकता है। सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों की इस शक्ति को निषेधाधिकार की शक्ति (वीटो) कहते हैं। इस प्रकार तथाकथित 5 बड़े राष्ट्रों में से प्रत्येक सदस्य दूसरे राज्यों के संबंध में निर्णय लेने एवं उनके विरोध में विधि लागू करने में सक्षम है किंतु स्वयं विधि से ऊपर है।

निषेधाधिकार की पृष्ठभूमि – द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान याल्टा शिखर सम्मेलन में अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने सबसे पहले निषेधाधिकार का प्रस्ताव रखा था। स्टालिन तथा चर्चिल ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया था। बाद में सैन फ्रांसिस्को सम्मेलन में भी मतदान प्रक्रिया पर विचार विमर्श के क्रम में चारों महाशक्तियां इस प्रकार एकमत रहीं। निषेधाधिकार का आधार यह विचार था कि उत्तरदायित्व तथा अधिकार परस्पर संबंधित होने चाहिए। सैन फ्रांसिस्को सम्मेलन के तीसरे आयोग के अधिशासी अधिकारी ग्रेसन क्रिर्क के अनुसार निषेधाधिकार दो मूलभूत धाराओं पर आधारित है। इनमें से पहली धारणा यह थी कि किसी भी सशस्त्र कार्रवाई में उसका भार प्रधानतः महाशक्तियों को वहन करना पड़ेगा। परिणामस्वरूप परिषद के इन सदस्यों से यह आशा करना अव्यावहारिक होगा कि वह अपनी सेनाओं को उन कार्रवाई के लिए प्रदान करेंगे जिनके कि विरोध में वे हैं। दूसरी धारणा यह थी कि

संयुक्त राष्ट्र संघ को अपनी शक्ति के लिए महाशक्तियों के आवश्यक सहयोग पर निर्भर रहना चाहिए। यदि वह सहयोग अपर्याप्त रहता है, तब सशस्त्र सुरक्षा संबंधी व्यवस्थाएं भी अवश्य ही असफल हो जाएंगी।

निषेधाधिकार का प्रयोग– सोवियत संघ ने 16 फरवरी 1946 को पहली बार निषेधाधिकार का प्रयोग किया। लेबनान तथा सीरिया ने अपने देशों से ब्रिटिश एवं फ्रांसीसी सेना हटाए जाने का आग्रह किया था अमेरिका का प्रस्ताव था कि सेना हटाई जाए। इसलिए सोवियत संघ ने अमेरिकी प्रस्ताव को वीटो के द्वारा समाप्त कर दिया। जनवरी 1951 तक करीब 20 विभिन्न विषयों पर सोवियत संघ ने 48 बार वीटो का प्रयोग किया। अगस्त 1947 में फ्रांस ने हिंदेशिया के प्रश्न के अध्ययन के लिए आयोग की नियुक्ति के प्रस्ताव के विरोध में वीटो का प्रयोग किया। दिसंबर 1971 में सोवियत संघ ने दो बार वीटो का प्रयोग, ऐसा उसने भारत–पाक युद्ध में अमेरिका के भारत विरोधी प्रस्ताव को रद्द करने के लिए किया था। अगस्त 1975 तक 5 राष्ट्रों द्वारा 139 बार वीटो का प्रयोग किया गया था। सोवियत संघ ने सुरक्षा परिषद के उस प्रस्ताव पर भी वीटो का प्रयोग किया जिसमें अफगानिस्तान से सोवियत सेनाएं हटाने की मांग की गई थी। दूसरी ओर अमेरिका ने फिलिस्तीन से संबंधित प्रस्ताव पर वीटो का प्रयोग किया जिसमें फिलिस्तीन के लिए राष्ट्रीय स्वतंत्रता और संप्रभुता के अधिकार की पुष्टि की गई थी पूर्व सुरक्षा परिषद की प्रथम बैठक की 40 वीं वर्षगांठ पर अमेरिका ने एक प्रस्ताव के खिलाफ वीटो का प्रयोग किया जिसमें दक्षिणी लेबनान में इजराइल सेना को हटाने की मांग की गई थी। विगत 40 वर्षों में अमेरिका ने 44 बार वीटो का उपयोग किया है 16 बार वीटो का उपयोग किया है। सुरक्षा परिषद में इतने कम समय में इतनी अधिक बार वीटो के प्रयोग से विश्व में निराशा का वातावरण तैयार होना स्वाभाविक था।

क्या वीटो के बार–बार प्रयोग के लिए सोवियत संघ को दोषी ठहराना तर्क संगत है? यह सच है कि अब तक सोवियत संघ ने ही सबसे अधिक बार वीटो का प्रयोग किया परंतु इसके साथ सोवियत संघ की कठिनाइयों को भी समझने का प्रयत्न करना चाहिए। किसी भी दशा में अपनी वीटो शक्ति के द्वारा यह संयुक्त राष्ट्र को पंगु नहीं बनाना चाहता था क्योंकि इसकी स्थापना में उसकी प्रमुख भूमिका थी। पश्चिमी राष्ट्रों ने यदि प्रारंभ से ही सोवियत संघ को विश्वास में लेकर कार्य करना प्रारंभ किया होता तो सोवियत संघ के वीटो के द्वारा महत्वपूर्ण प्रश्न अनिर्णीत नहीं रह पाते। संयुक्त राष्ट्र के निर्माताओं की यह इच्छा कभी नहीं थी कि इस संगठन को स्थायी राष्ट्रों द्वारा अपने हित साधन का एक माध्यम समझ लिया जाएगा। अमेरिका ने संयुक्त राष्ट्र पर अपना अधिकार यह कहकर बनाए रखने का प्रयास किया है कि वह संयुक्त राष्ट्र के अधिकांश व्यय का भार वहन करता है। कुछ आलोचकों का मत है कि अमेरिका तथा उनके मित्र राष्ट्र अपना आर्थिक, राजनीतिक तथा सैनिक प्रभाव बनाने के लिए संयुक्त राष्ट्र का खुलकर प्रयोग करने लगे हैं इसलिए सोवियत संघ को बार–बार वीटो का प्रयोग करना पड़ा। वस्तुतः सुरक्षा परिषद में वीटो का प्रयोग शीत युद्ध का दूसरा रूप था।

निषेधाधिकार का परिणाम– निषेधाधिकार के कारण अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं का निर्णय असंभव हो गया। सोवियत संघ के समर्थक राष्ट्रों को अमेरिका के विरोध के कारण एवं अमेरिकी समर्थक राष्ट्रों को सोवियत संघ के विरोध के कारण बहुत दिनों

तक संघ की सदस्यता नहीं मिली। प्रांतों का सहारा लेकर सन 1956 में मध्य पूर्व की शांति एवं सुरक्षा को भंग किया गया।

निषेधाधिकार के अधिक प्रयोग से सुरक्षा परिषद का प्रभाव घटने लगा। सुरक्षा परिषद की निर्बलता के कारण महासभा का प्रभाव बढ़ने लगा। निषेधाधिकार के प्रभाव को कम करने, अंतरिम समिति और शांति के लिए एकता प्रस्ताव पारित करने हेतु संयुक्त राष्ट्र के महासचिव की नियुक्ति में भी बहुत बाधा उत्पन्न हुई।

दोहरा निषेधाधिकार– संयुक्त राष्ट्र चार्टर 'प्रक्रिया संबंधी' तथा 'महत्वपूर्ण विषयों' में भेद तो करता है परंतु उसकी स्पष्ट व्याख्या नहीं करता। प्रक्रिया संबंधी मामले के अतिरिक्त किसी भी विषय में निर्णय के समय महाशक्तियों (स्थायी सदस्यों) में से कोई भी नकारात्मक मतदान कर सकता है और इस प्रकार परिषद को निर्णय लेने से रोक सकता है। यह शक्ति पहली वीटो की शक्ति कहलाती है। दूसरे वीटो का प्रश्न उसमें होता है जबकि सुरक्षा परिषद को यह तय करना होता है कि कोई विषय प्रक्रिया संबंधी है या नहीं? इस पर निर्णय लेते वक्त 9 सदस्यों के मत अनिवार्य हैं जिनमें पांच स्थायी सदस्यों के मत भी सम्मिलित होते हैं। इस प्रश्न के निर्धारण में स्थायी सदस्य दूसरे वीटो का प्रयोग कर सकते हैं संक्षेप में इन प्रावधानों के कारण ऐसा कहा जाता है कि दोहरी वीटो की शक्ति के कारण महाशक्तियों को ऐसी शक्ति प्राप्त हो जाती है जिसके द्वारा वह सुरक्षा परिषद की किसी भी कार्रवाई को रद्द करवा सकती हैं।

निषेधाधिकार के विपक्ष में तर्क : आलोचना – अनेक आलोचकों के अनुसार सुरक्षा परिषद अपने सामूहिक सुरक्षा के कार्य में असफल हो गई है और इस असफलता का प्रधान कारण महाशक्तियों का निषेधाधिकार है। पामर तथा पर्किन्स के अनुसार, ''किसी भी बात ने संयुक्त राष्ट्र में लोक विश्वास को कम करने में उतना योगदान नहीं दिया है जितना कि सुरक्षा परिषद में वीटो के बार–बार उपयोग अथवा दुरुपयोग ने।" डब्ल्यू आर्नोल्ड फास्टर के अनुसार, ''वीटो का भय संपूर्ण व्यवस्था पर छाया हुआ है। ऐसी व्यवस्था के रक्त में ही पक्षाघात है। यह उस कार के समान है जिसका स्टार्टर किसी भी समय उसकी यंत्र व्यवस्था को गर्म करके उसके इंजन को रोक सकता है।" वीटो की निम्नलिखित तर्कों के आधार पर आलोचना की जाती है–

1. विषम वित्त व्यवस्था के कारण सुरक्षा परिषद में बड़े राष्ट्रों का आधिपत्य जम गया है और बहुमत का कोई महत्व नहीं रह गया है। केल्सन ने लिखा है कि वीटो के द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ में पांच स्थायी सदस्यों को विशेषाधिकार प्राप्त हो गया है और इस प्रकार अन्य सदस्यों पर उनकी कानूनी प्रभुता स्थापित हो गई है। चार्टर के द्वारा सब सदस्यों को समान माना गया है पर वीटो की व्यवस्था इस सिद्धांत का उल्लंघन करती है।
2. वीटो के प्रयोग से सुरक्षा परिषद का कोई भी स्थायी सदस्य किसी भी कार्रवाई को विफल कर सकता है और विश्व लोकमत की उपेक्षा कर सकता है।
3. वीटो महाशक्तियों की निरंकुशता और स्वच्छंदता का परिणाम है। इसे महाशक्तियों ने अपनी शक्ति के बल पर अन्य सदस्यों पर लाद दिया है क्योंकि कोई भी महाशक्ति वीटो की अनुपस्थिति में संघ का सदस्य बनने के लिए तैयार नहीं थी। वीटो की तुलना ऐसी शादी से की गई जो बंदूक के बल पर की गई है।

4. महाशक्तियों ने वीटो का दुरुपयोग किया है। वीटो के कारण सुरक्षा परिषद शांति और सुरक्षा की व्यवस्था के अपने उत्तरदायित्व को पूरा करने में असमर्थ हो गई है। त्रिग्वेली के शब्दों में ''वीटो के कारण संयुक्त राष्ट्र नपुंसक है। इसको महाशक्तियों के संघ द्वारा पक्षाघातग्रस्त कर दिया गया है।''
5. वीटो के प्रयोग ने सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था को नष्ट कर दिया है। अब राष्ट्र अपनी सुरक्षा के लिए नाटो, सीटो, सेण्टो जैसे प्रादेशिक सुरक्षा संगठनों की रचना करने लगे हैं। सन 1946 मे फिलीपींस के प्रतिनिधि ने तो यहां तक कहा कि "वीटो एक फ्रैंकेन्सटीन दैत्य है। यह संयुक्त राष्ट्र संघ में सभी विभागीय कार्रवाई को रोक देता है।"

निषेधाधिकार के पक्ष में तर्क : अनिवार्यता – सुरक्षा परिषद से वीटो की व्यवस्था को हटा देने से समस्या का समाधान नहीं हो सकता है। सोवियत संघ को संयुक्त राष्ट्र संघ का एक प्रभावशाली सदस्य बनाए रखने के लिए यह व्यवस्था आवश्यक थी। वीटो की व्यवस्था न होने पर अमेरिका और ब्रिटेन जिन्हें विश्व के राष्ट्रों का बहुमत प्राप्त था, सोवियत संघ और उसके सहयोगी राष्ट्रों को हर मौके पर पराजित कर सकते थे। इस स्थिति में संयुक्त राष्ट्र संघ पश्चिमी गुट के हाथों में एक कठपुतली बन जाता और सोवियत संघ का उसमें शामिल होना व्यर्थ होता। वीटो की व्यवस्था ने सोवियत संघ को संयुक्त राष्ट्र संघ में उतना ही प्रभावकारी बना दिया जितना प्रभावकारी अमेरिका और ब्रिटेन का बहुमत था। ए. ई. स्टीवेन्सन ने कहा कि ''स्वयं वीटो हमारी कठिनाइयों का आधारभूत कारण नहीं है। यह सोवियत संघ के लोगों के साथ दुर्भाग्यपूर्ण एवं स्थित विभेदों का प्रतिबिंब मात्र ही है।'' संक्षेप में वीटो के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं–

1. संयुक्त राष्ट्र संघ की सफलता के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि शांति एवं सुरक्षा की स्थापना के लिए महाशक्तियों के बीच पारस्परिक सहयोग हो। महाशक्तियों के सामूहिक सहयोग के बिना ऐसा संभव नहीं है। राष्ट्र संघ की विफलता का एक कारण अमेरिका और रूस का उस से पृथक् रहना था। स्टीवेन्सन के शब्दों में, ''यदि 5 बड़े राष्ट्र अपने महत्वपूर्ण हितों से संबंधित किसी मामले में राजी नहीं होते तो उनमें से किसी के विरुद्ध शक्ति का प्रयोग एक बड़े युद्ध को जन्म देगा।''
2. वीटो की व्यवस्था ने शांति और सुरक्षा संबंधी मामलों में बड़े राष्ट्रों का सहयोग निश्चित करके यह भी तय कर दिया कि सुरक्षा परिषद का जो भी निर्णय होगा वह बहुत सोच विचार कर और पूर्ण जिम्मेदारी के साथ होगा, वह ऐसा निर्णय नहीं कर सकेगी जिन्हें पूरा करने की शक्ति उसमें न हो। चूंकि उसके निर्णयों के लिए पांच बड़े राष्ट्रों का सहयोग अनिवार्य है अतएव उन निर्णयों को कार्यांवित करने का उन पर सामूहिक दायित्व होगा। अतः उसकी कार्रवाइयों की सफलता प्रायः निश्चित हुआ करेगी।
3. वीटो कई बार अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्वक हल करने में वरदान भी सिद्ध हुआ। संयुक्त राष्ट्र के आरंभिक वर्षों में यह कहा जाता था कि यदि वीटो को हटा दिया जाए तो अंतर्राष्ट्रीय शांति बनाए रखने का कार्य सुगम हो जाएगा।

टिप्पणी

किंतु यदि ऐसा होता तो इसमें एक गुट की प्रधानता हो जाती, वीटों ने संघ में विभिन्न पक्षों में संतुलन बनाए रखा है और किसी भी गुट को अपना मनमाना कार्य करने से रोका है। उदाहरणार्थ सुरक्षा परिषद में कश्मीर के प्रश्न पर जब ब्रिटिश अमेरिकन गुट ने पाकिस्तान का समर्थन करना चाहा तो सोवियत संघ ने 1958 में 2 बार वीटो के प्रयोग से अंतर्राष्ट्रीय स्थिति को संभाला।

4. वीटो का प्रयोग बड़ी शक्तियां एक दूसरे पर अंकुश बनाए रखने के लिए करती हैं। यदि कभी वीटो को समाप्त करने का प्रयास सफल भी हुआ तो रूस निश्चित ही संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता का त्याग कर देगा एवं इस बात में दो मत नहीं हो सकते कि रूस के अभाव में संयुक्त राष्ट्र का अस्तित्व नगण्य हो जाएगा। संयुक्त राष्ट्र को बनाए रखने के लिए वीटों की बुराइयों को स्वीकार करना ही सार्थक है। पंडित जवाहरलाल नेहरू कहा करते थे कि संयुक्त राष्ट्र बिल्कुल न होने से लंगड़ा संयुक्त राष्ट्र ही अच्छा है।

5. वीटो संयुक्त राष्ट्र की समस्त कार्यवाहियों को प्रभावित नहीं करता। संयुक्त राष्ट्र की विशेष एजेंसियों, अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय, न्यास परिषद, आर्थिक तथा सामाजिक परिषद एवं महासभा में वीटो की व्यवस्था नहीं है।

6. यदि हम वीटो रहित सुरक्षा परिषद की कल्पना करें तो हमें आभास होगा कि किसी बड़े अशुभ को रोकने के लिए छोटे अशुभ के रूप में वीटो एक आवश्यकता है। उदाहरण के लिए यदि अमेरिका अपने सभी स्थायी सदस्यों की सहायता से एवं अपने बहुमत के प्रभाव से कोई ऐसा निर्णय कराने में सफल हो जाता है जिसे रूस स्वीकार नहीं करना चाहता या उक्त निर्णय रूस के हितों के प्रतिकूल है तो निश्चित ही रूस अपनी हर संभव शक्ति से उस निर्णय के क्रियान्वयन को रोकने का प्रयास करेगा जिससे संभावित रूप से दोनों गुटों (पूर्व एवं पश्चिम) के मध्य बड़ा संघर्ष हो सकता है जो अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष का स्वरूप ग्रहण कर सकता है। ऐसी स्थिति में सुरक्षा परिषद के निर्णयों की अवहेलना होगी जिससे उसका महत्व घट जाएगा। उक्त अप्रिय घटनाओं से बचने के लिए यही उचित होगा कि रूस अपने निषेधाधिकार के द्वारा उस प्रस्ताव को ही समाप्त कर दे।

7. इसके अतिरिक्त शांति के लिए एकता प्रस्ताव स्वीकृत होने से वीटो का महत्व गौण हो गया है। अभी तो वीटो का प्रभाव मुख्य रूप से सदस्यता के संबंध में रह गया है। विश्व शांति के संबंध में अब साधारण सभा को अत्यंत विस्तृत अधिकार मिल गए हैं जिससे संयुक्त राष्ट्र संघ का कोई काम रुक नहीं सकता। वीटो के कायम रहते हुए भी महासभा द्वारा बहुत से कामों को संपन्न कराया जा सकता है।

श्लीचर के शब्दों में वीटो– असहमतिसूचक लक्षण है न कि इसका कारण है। अतः वीटो व्यवस्था के समाप्त कर देने से महाशक्तियों के मतभेद दूर नहीं होंगे और इससे कोई बड़ा लाभ नहीं होगा। फिर वीटो कई प्रकार के प्रश्नों के लिए प्रयुक्त होता है। सदस्यता और शांतिपूर्ण समझौते के संबंध में इस व्यवस्था की समाप्ति लाभप्रद है, किंतु शांति भंग की तथा आक्रमण की दशा में सैनिक कार्रवाई के संबंध में वीटो की व्यवस्था को समाप्त करना बहुत विवादास्पद और नई समस्याओं को उत्पन्न करने वाला है अतः इस परिस्थिति में वीटो की व्यवस्था बनी रहनी चाहिए।

निषेधाधिकार का सुधार– निषेधाधिकार की बुराइयों को दूर करने के लिए समय–समय पर अनेक सुझाव दिए गए हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि सब तरह के निर्णय के लिए 15 सदस्यों में से 8,9 या अधिक मत पर्याप्त माने जाएं। प्रक्रिया संबंधी विषयों में केवल साधारण बहुमत का होना ही उचित है एवं सुरक्षा संबंधी विषयों पर दो तिहाई अर्थात 15 में से 10 मत होना ही पर्याप्त है। कुछ व्यक्तियों का विचार है कि जिन प्रश्नों पर सुरक्षा परिषद के सभी सदस्य एक मत हो उन्हें अंतिम निर्णय के लिए महासभा के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यह भी सुझाव दिया जाता है कि वीटो का प्रयोग तभी उचित होगा जब संयुक्त राष्ट्र संघ किसी देश के विरुद्ध सैनिक कार्य करे। इस प्रकार वीटो के सुधार के लिए अनेक प्रस्ताव रखे गए हैं परंतु वीटो की व्यवस्था में कोई औपचारिक परिवर्तन नहीं किया जा सका है वैसे शांति के लिए एक प्रस्ताव तथा लघु एसेंबली जैसे व्यावहारिक उपायों से वीटो का महत्व कुछ कम अवश्य हो गया है।

सुरक्षा परिषद तथा महासभा के पारस्परिक संबंध– सुरक्षा परिषद तथा महासभा दोनों संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख अंग हैं। महासभा को कुछ विद्वान संघ की 'संसद' और सुरक्षा परिषद को 'कार्यपालिका' कहकर पुकारते हैं। चार्टर के अनुसार दोनों अंगों का एक दूसरे के साथ घनिष्ठ संबंध है। कई मामलों में दोनों आपस में मिलकर काम करती हैं जैसे अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों का निर्वाचन करना। कोई भी राज्य संयुक्त राष्ट्र का सदस्य तभी बनाया जा सकता है जब उसके प्रार्थना पत्र पर सुरक्षा परिषद अपनी सहमति प्रदान करे तथा महासभा निर्धारित बहुमत से उस पर निर्णय ले। इसी प्रकार सदस्यों के निलंबन तथा निष्कासन के विषय में महासभा तथा सुरक्षा परिषद दोनों मिलकर कार्य करती हैं। दोनों ही अंगो का योगदान आवश्यक है। यदि इनमें से एक भी संस्था विरोधी मत प्रकट करती है तो उस प्रश्न पर निर्णय असंभव हो जाता है।

सुरक्षा परिषद को अपनी वार्षिक रिपोर्ट महासभा को भेजनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त सुरक्षा परिषद के बजट को भी महासभा पारित करती है जहां तक विश्व शांति तथा सुरक्षा बनाए रखने का प्रश्न है इसकी प्राथमिक जिम्मेदारी सुरक्षा परिषद पर है परंतु सुरक्षा परिषद अपनी जिम्मेदारी पूरी करने में असमर्थ या असफल रहती है तो महासभा इस विषय में भी कार्रवाई कर सकती है। 'शांति के लिए एकता प्रस्ताव' ने महासभा को यह शक्ति प्रदान की है।

संक्षेप में संयुक्त राष्ट्र संघ अपने उद्देश्य को तभी प्राप्त कर सकता है जब महासभा तथा सुरक्षा परिषद एक दूसरे के साथ सहयोग करें तथा मिलकर अंतर्राष्ट्रीय संकटों का निवारण करें।

सुरक्षा परिषद की भूमिका : मूल्यांकन– बड़े राष्ट्रों ने सुरक्षा परिषद को अपनी राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए औजार की तरह प्रयोग किया है। कुछ विद्वानों का मत है कि सुरक्षा परिषद शक्तिशाली राष्ट्रों के हाथ में खिलौना मात्र है। आजकल महाशक्तियों का सहारा पाकर सदस्य राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद के निर्णयों की अनसुनी कर देते हैं। बड़े राष्ट्रों की इच्छा के विपरीत किसी भी तरह का निर्णय वहां संभव नहीं है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सुरक्षा परिषद का निर्णय वीटो संपन्न राष्ट्रों का

निर्णय है। सुरक्षा परिषद की सफलता में उसकी शक्तिहीनता भी बाधक है। उसके पास अपनी कोई फौजी शक्ति नहीं है। सुरक्षा परिषद के निर्णयों का आज अनेक राष्ट्र सम्मान नहीं करते एवं बड़े राष्ट्र स्वयं उसकी उपेक्षा करते हैं। ऐसी स्थिति में संयुक्त राष्ट्र महासभा का प्रभाव बढ़ना एक अनिवार्य तथ्य हो गया है। महासभा के पास भी कोई स्पष्ट शक्ति तो नहीं है परंतु वह विश्व की संसद का स्वरूप धारण करती जा रही है। शांति की अवधारणा ने महासभा को अभूतपूर्व शक्ति प्रदान की है संक्षेप में महासभा का बढ़ता महत्व सुरक्षा परिषद की भूमिका के ह्रास का कारण है।

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद (यूएनएससी) में सुधार की मांग भारत पिछले काफी वक्त से लगातार कर रहा है। भारत सुरक्षा परिषद में बतौर सदस्य अपनी दावेदारी भी रख रहा है और पिछले कुछ वक्त से लगातार भारत इन सुधारों की मांग अलग–अलग मंचों से करता रहा है। दुनिया के कई देश सुरक्षा परिषद में भारत को बतौर सदस्य शामिल करने के पक्षधर भी हैं, लेकिन इस बाबत अभी तक कोई ठोस कदम उठाया नहीं गया है। इस साल 2020 में संयुक्त राष्ट्र अपनी स्थापना के 75 साल पूरे कर रहा है। ऐसे में संयुक्त राष्ट्र में सुधारों और सुरक्षा परिषद के विस्तार को लेकर भारत का रुख थोड़ा आक्रामक और स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

हाल के दिनों में भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी समेत कई वरिष्ठ राजनयिक और मंत्री संयुक्त राष्ट्र की भूमिका और सुधारों में इस संस्था की नाकामी को लेकर तल्ख टिप्पणियां भी कर चुके हैं। संयुक्त राष्ट्र में सुधारों की पहल को लेकर हालिया वक्त में भारत का रवैया काफी आक्रामक हुआ है। इसी कड़ी में नवम्बर में संयुक्त राष्ट्र में भारत के स्थायी प्रतिनिधि (पीआर यानी परमानेंट रेप्रेजेंटेटिव) टी एस तिरुमूर्ति ने एक कड़ी टिप्पणी की है। उन्होंने अपने संबोधन में कहा है कि "संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद 'एक खराब हो चुका अंग बन' गया है।"

फिर भी सुरक्षा परिषद का महत्व बिल्कुल समाप्त नहीं हुआ है। सुरक्षा परिषद का महत्व इसलिए भी कम नहीं हो सकता क्योंकि पांचों महाशक्तियों का इसमें प्रतिनिधित्व है और वर्तमान समय में विश्व के किसी भी महत्वपूर्ण कार्य को करने के लिए पांचों का सहयोग आवश्यक है परंतु स्थायी सदस्यों के कारण सामूहिक सुरक्षा तथा विश्व शांति हेतु संयुक्त राष्ट्र प्रणाली दुर्बल तथा अव्यावहारिक सिद्ध हुई है।

अपनी प्रगति जांचिए

6. सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यों की संख्या कितनी है?

(क) 15 (ख) 10

(ग) 5 (घ) 09

7. सुरक्षा परिषद के अस्थायी सदस्यों की संख्या कितनी है?

(क) 10 (ख) 11

(ग) 15 (घ) 09

8. सुरक्षा परिषद में अस्थायी सदस्यों को कितने समय के लिए निर्वाचित किया जाता है?

(क) 03 वर्ष (ख) 01 वर्ष

(ग) 04 वर्ष (घ) 02 वर्ष

9. सुरक्षा परिषद में निषेधाधिकार का प्रस्ताव सर्वप्रथम किसने रखा था।

(क) चर्चिल (ख) स्टालिन

(ग) रूजवेल्ट (घ) कोई नहीं

3.4 आर्थिक तथा सामाजिक परिषद

आर्थिक और सामाजिक परिषद इस धारणा पर आधारित है कि अंतर्राष्ट्रीय शांति केवल राजनीतिक विवादों के समाधान पर ही निर्भर नहीं करती है वरन् अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सामाजिक और उनसे संबंधित अन्य समस्याओं के संबंध में उचित और प्रभावपूर्ण कार्रवाई पर भी निर्भर करती है। राजनीतिक स्थिरता के अतिरिक्त सामाजिक स्थिरता और आर्थिक संतोष भी अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की स्थापना के लिए जरूरी है। डलेस के शब्दों में, आर्थिक और सामाजिक समस्याएं युद्ध के अंतर्निहित कारण हैं। फैनविक के शब्दों में, महासभा के अधीनस्थ एवं उसके कार्यों को उसके प्रतिनिधि के रूप में संपन्न करने वाली संस्था आर्थिक और सामाजिक परिषद है।

सरंचना– प्रारम्भ में इस परिषद में 18 सदस्य होते थे। 1966 में चार्टर में एक संशोधन द्वारा इसके सदस्यों की संख्या 18 से बढ़ाकर 27 कर दी गई। तत्पश्चात अनुच्छेद 61 का एक बार पुनः संशोधन हुआ जो 24 सितम्बर, 1973 को लागू हुआ। इसके अनुसार अब आर्थिक एंव सामाजिक परिषद की सदस्य संख्या 54 हो गई है।

यह एक स्थायी संस्था है परन्तु इसके एक तिहाई सदस्य प्रति वर्ष पदमुक्त होते रहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक सदस्य की अवधि 3–3 वर्ष होती है परंतु अवकाश ग्रहण करने वाला सदस्य तुरंत पुनः निर्वाचित हो सकता है। परिषद में प्रत्येक सदस्य राज्य का एक ही प्रतिनिधि होता है।

यद्यपि आर्थिक तथा सामाजिक परिषद की सदस्यता हेतु, 5 स्थायी सदस्यों के पास कोई प्रावधान उपलब्ध नहीं है तथापि व्यवहार में तथाकथित पांच बड़े सदस्य निर्वाचित हो जाते हैं। साधारणतया इसके निर्वाचित सदस्य ही इसकी बैठकों में भाग लेते हैं पर यह संयुक्त राष्ट्र के किसी भी सदस्य को बिना मतदान के किसी ऐसे विषय पर अपने विचार–विमर्श में आमंत्रित कर सकती है जो उस सदस्य के लिए विशेष चिंता का विषय हो।

मतदान प्रक्रिया– आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के प्रत्येक सदस्य को केवल एक मत देने का अधिकार होता है अर्थात् संयुक्त राष्ट्र के अन्य अंगों की भांति आर्थिक एवं सामाजिक परिषद में प्रत्येक निर्वाचित राज्य का केवल एक सदस्य बैठकों में भाग ले सकता है। इसमें निर्णय उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के साधारण

बहुमत द्वारा लिए जाते हैं। परिषद जब किसी विशेष राज्य के विषय पर विचार विनिमय करने बैठती है तो वह उस राज्य के प्रतिनिधि को आमंत्रित करती है किंतु ऐसे आमंत्रित प्रतिनिधि को मत देने का अधिकार नहीं होता। आर्थिक एवं सामाजिक परिषद की बैठकें साल में दो बार होती हैं अप्रैल और जुलाई में क्रमशः न्यूयार्क और जेनेवा में। आर्थिक एवं सामाजिक परिषद की बैठकें उसके नियमों के अनुसार जिनमें सदस्यों के बहुमत के अनुरोध पर बैठकें बुलाने का उपबंध भी सम्मिलित है। आवश्यकतानुसार कभी भी की जा सकती है। महासभा की भांति एक साल के लिए सदस्य राज्यों में से ही एक सदस्य इसका सभापति निर्वाचित होता है।

कार्य एवं शक्तियां– चार्टर के अनुसार, आर्थिक तथा सामाजिक परिषद के निम्नलिखित कार्य तथा शक्तियां हैं–

(1) वह अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य तथा संबंधित मामलों पर अध्ययन कर सकती है तथा इस विषय में महासभा संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों तथा विशिष्ट अभिकरणों को रिपोर्ट दे सकती है।

(2) यह सबके मानवीय अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रता के आदर तथा इसे लागू करने के लिए संस्तुति दे सकती है।

(3) यह अपनी क्षमता के अंतर्गत आने वाले विषयों से संबंधित अभिसमयों के आलेख महासभा को प्रेषित कर सकती है।

(4) संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार अपनी क्षमता के अंतर्गत आने वाले विषयों से संबंधित मामलों पर सम्मेलन बुला सकती है।

(5) सुरक्षा परिषद की प्रार्थना पर यह सुरक्षा परिषद को सूचनाएं प्रेषित कर सकती है तथा सहायता कर सकती है।

(6) आर्थिक तथा सामाजिक परिषद महासभा की संस्तुतियों के पालन हेतु वह सब कार्य संपादित कर सकती है जो इसकी क्षमता के अंतर्गत होते हैं।

(7) महासभा के अनुमोदन से आर्थिक तथा सामाजिक परिषद सदस्यों तथा विशिष्ट एजेन्सियों की प्रार्थना पर सेवाएं अर्पित कर सकती है।

(8) उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त यह चार्टर के अंतर्गत निर्दिष्ट तथा महासभा द्वारा बनाए गए सभी कार्यों को संपादित करेगी।

उपर्युक्त कर्तव्यों और अधिकारों के अतिरिक्त आर्थिक एवं सामाजिक परिषद संयुक्त राष्ट्र के अन्य अंगों को सहायता देती है। अनुच्छेद 65 के अनुसार यह सुरक्षा परिषद को सूचनाएं दे सकती है और यदि सुरक्षा परिषद अनुरोध करे तो उसे सहायता देगी। अनुच्छेद 66 के अनुसार यह महासभा की सिफारिशों के क्रियान्वयन के संबंध में ऐसे कार्य कर सकती है, जो उसी अधिकारिता में आते हों और वह उन दूसरे सभी कार्यों को कर सकती है जो संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में अन्यत्र दिए गए हैं अथवा महासभा द्वारा उसे सौंपे गए हैं।

आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के प्रमुख–प्रमुख कार्यों में से एक विभिन्न विशिष्ट अभिकरणों की गतिविधियों में समन्वय करना भी है।

वस्तुतः गरीबों, घायलों तथा अशिक्षितों की सहायता करके आर्थिक तथा सामाजिक परिषद विश्व शांति की स्थापना में सहायता करती है। यह सभी प्रकार से लोगों के जीवन में सुधार करने का प्रयत्न करती है।

आयोग– आर्थिक और सामाजिक परिषद अपना कार्य प्रधानतः कुछ आयोगों के माध्यम से करती है। ये आयोग दो प्रकार के होते हैं– कार्यात्मक तथा प्रादेशिक। कार्यात्मक आयोग निम्नलिखित हैं–

1. आर्थिक, रोजगार तथा विकास आयोग।
2. यातायात तथा संचार आयोग।
3. वित्तीय आयोग।
4. सांख्यिकी आयोग।
5. जनसंख्या आयोग।
6. सामाजिक आयोग।
7. मानव अधिकारों संबंधी आयोग।
8. महिलाओं की स्थिति संबंधी आयोग।
9. नशीले द्रव्यों संबंधी आयोग।

प्रादेशिक आयोग निम्नलिखित हैं–

1. यूरोप के लिए आर्थिक आयोग।
2. एशिया तथा सुदूरपूर्व के लिए आर्थिक आयोग।
3. दक्षिण अमेरिका के लिए आर्थिक आयोग।

आर्थिक तथा सामाजिक परिषद के कार्यों का मूल्यांकन– आर्थिक और सामाजिक परिषद ने अनेक क्षेत्रों में सराहनीय कार्य किया है। विशेषतः इसके तथा विशिष्ट समितियों के तत्वाधान में एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के पिछड़े हुए देशों को दी गई तकनीकी सहायता तथा मानवीय अधिकारों की घोषणा इसकी प्रमुख सफलताएं मानी जाती हैं। यह संस्था संयुक्त राष्ट्र को अधिक व्यापक और जनकल्याणी संस्था बना देती है। शरणार्थियों, राज्यविहीन व्यक्तियों, ट्रेड यूनियनों के अधिकारों, दासता तथा बेगार जैसी समाज विरोधी कार्रवाइयों पर परिषद द्वारा सतत विचार–विमर्श होता रहता है। परिषद ने अपने एक प्रस्ताव द्वारा किसी भी राष्ट्रीय नस्ली तथा धार्मिक समुदाय को पूर्णतया समाप्त करने के प्रयास को अवैध घोषित कर दिया है। आर्थिक एवं प्राविधिक सहायता तथा योजनाओं से पिछड़े हुए राष्ट्रों का विकास इस परिषद का उद्देश्य है। आर्थिक दृष्टि से अभावग्रस्त जातियों एवं समुदायों के सामाजिक स्तर को ऊपर उठाया जाता है। परिषद के द्वारा अर्ध–विकसित राष्ट्रों को विशेषज्ञों का सहयोग दिया जाता है साथ ही उन्हें यन्त्रों उपकरणों आदि आवश्यक वस्तुओं को खरीदने के लिए आर्थिक सहयोग दिया जाता है। आर्थिक तथा सामाजिक परिषद आधुनिक पद्धतियों से उत्पादन बढ़ाने में सहयोग देकर गरीबी–निवारण में सहयोग देती है। यह आवश्यक उपकरणों, यंत्रों, मशीनों, भवनों, सड़कों एवं बंदरगाहों को उपलब्ध कराकर व्यापार उद्योग तथा कृषि की उन्नति में सहयोग देती है जिससे भारत सहित एशिया तथा अफ्रीकी राष्ट्रों को बहुत सहयोग मिल रहा है।

संक्षेप में आर्थिक एवं सामाजिक परिषद ने एक विश्वव्यापी कल्याणकारी परिषद के रूप में कार्य किया है। इसने विश्व को अभाव, दरिद्रता, रोग और निरक्षरता से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया है। इसने सन 1948 की मानवीय अधिकारों की घोषणा और 1952 के महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों से संबंधित सम्मेलन द्वारा मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति अपार जन जागृति पैदा करने का प्रयास किया है।

यद्यपि इसे आर्थिक एवं सामाजिक विषयों पर नियम बनाने की क्षमता प्राप्त नहीं है तथापि इसने मानव जाति के उत्थान एवं उसे सुखी जीवन प्रदान करने की दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया है। संयुक्त राष्ट्र बाल निधि, संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी निधि, तकनीकी सहायता समिति, यूरोप के लिए, एशिया व सुदूरपूर्व के लिए, लैटिन अमरीकी के लिए, अफ्रीका के लिए आर्थिक आयोग संयुक्त राष्ट्र कोरियाई पुनर्निर्माण अभिकरण और आर्थिक विकास के लिए विशेष निधि– सभी ने सम्पूर्ण विश्व की आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति के लिए महान योगदान दिया है। वास्तव में द्वितीय महायुद्ध की विभीषिकाओं से पीड़ित मानव जाति के अविकसित एवं नवोदित राष्ट्रों के लिए यह एक प्रेरणा व सहायता का स्रोत रही है।

14 सितंबर, 2020 को भारत, संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक परिषद (ECOSOC) के महिला स्थिति आयोग (Commission on the Status of Women) का सदस्य चुना गया। भारतवर्ष 2021 से 2025 तक चार वर्ष के लिए इस प्रतिष्ठित संस्था का सदस्य रहेगा।

अपनी प्रगति जांचिए

10. आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के सदस्यों की वर्तमान में कितनी संख्या है?

(क) 27 (ख) 18

(ग) 54 (घ) 193

11. आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के सदस्यों का कार्यकाल कितना होता है?

(क) 04 वर्ष (ख) 03 वर्ष

(ग) 02 वर्ष (घ) 05 वर्ष

12. आर्थिक एवं सामाजिक परिषद की वर्ष में कितनी बैठक होती हैं।

(क) 3 (ख) 4

(ग) 2 (घ) परिस्थितिनुसार

13. आर्थिक एवं सामाजिक परिषद की जुलाई में होने वाली बैठक कहां होती है?

(क) न्यूयार्क (ख) जिनेवा

(ग) रोम (घ) हेग

14. उपर्युक्त परिषद की अप्रैल में होने वाली बैठक कहां होती है।

(क) रोम (ख) लन्दन

(ग) जिनेवा (घ) न्यूयार्क

3.5 न्यास परिषद : संगठन एवं भूमिका

संयुक्त राष्ट्र चार्टर का आठवां अध्याय 'न्यास परिषद' के संबंध में विचार करता है। चार्टर के अनुच्छेद 75 के अनुसार संयुक्त राष्ट्र अपने अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत न्यासप्रदेशों के प्रशासन और नियंत्रण के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय न्यास व्यवस्था स्थापित करेगा जो समझौतों द्वारा संपादित होगी।

न्यास सिद्धांत का उद्भव– यूरोपीय उपनिवेशीय राष्ट्रों ने बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के विशाल भूखंडों पर अपना क्रूरतम शासन स्थापित कर रखा था। इन पराधीन क्षेत्रों के लोगों के साथ तरह तरह से अन्यायपूर्ण व्यवहार किया जाता था। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में पराधीन देशों के लोगों ने अपने–अपने क्षेत्रों में 'आत्म निर्णय' के अधिकार की मांग की और स्वशासन की प्राप्ति के लिए मुक्ति आंदोलन शुरू किया।

वर्साय संधि के पश्चात इस धारणा में आमूल परिवर्तन हुआ कि उपनिवेश केवल साम्राज्यवादी उपनिवेशवादी शक्तियों के हित के लिए विद्यमान हैं। सिद्धांत रूप में यह कहा जाने लगा कि उपनिवेशों को अंततः स्वशासन प्रदान किया जाएगा। प्रथम विश्व युद्ध के बाद राष्ट्र संघ की मैंडेट पद्धति में यह सिद्धांत अंतर्निहित था। जब द्वितीय विश्व युद्ध चल ही रहा था तभी मित्र राष्ट्रों ने 'आत्म निर्णय' के इस सिद्धांत का उद्घोष किया था। यह सर्वविदित है कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान एक ओर पश्चिमी यूरोप के अधिकांश एशियाई उपनिवेशों पर जापान ने अधिकार कर लिया था उसने पूर्वी एशिया एवं प्रशांत महासागर के क्षेत्रों में विजय प्राप्त कर ली थी जिससे संयुक्त राज्य अमेरिका अत्यंत चिंतित हो गया था तो दूसरी ओर एशिया के अधिकांश पराधीन भूखंडों के लोग जागृत हो चुके थे और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे। ऐसी परिस्थिति में अमेरिका के लिए इन क्षेत्रों को स्वाधीनता का आश्वासन देना अत्यावश्यक हो गया था। अंततः अमेरिका इस विचार पर दृढ़ हो गया था की उपनिवेशवाद का युग समाप्त हो चुका है। अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने पराधीन लोगों के साथ निर्णय के अधिकार का समर्थन किया परंतु ग्रेट ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल साम्राज्यवाद का शंख फूंकते रहे, उपनिवेशवाद उन्मूलन के मार्ग पर अमेरिका पीछे नहीं हटा। जब संयुक्त राष्ट्र चार्टर का प्रारूप तैयार हो रहा था उससे बहुत पहले ही भावी संगठन संबंधी अमेरिकी प्रारूप 14 जुलाई, 1943 को प्रकाशित हो चुका था। उक्त प्रारूप के अनुच्छेद 12 में कहा गया था 'ऐसे पराधीन क्षेत्रों में जहां के लोग अभी पूरी तरह स्वशासन प्राप्त नहीं कर पाए थे, उन पर न्यास पद्धति का सिद्धांत लागू किया जाएगा जिसके अंतर्गत स्थानीय लोगों के हितों को सर्वोपरि मानकर उन्हें अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण में रखा जाएगा। इस पद्धति का अंतिम उद्देश्य यह होगा कि इन पराधीन क्षेत्रों के लोग राजनीतिक परिपक्वता प्राप्त कर सकेंगे और आगे चलकर अपने–अपने क्षेत्रों का शासन भार स्वयं वहन करेंगे।'

न्यास परिषद के उद्देश्य– चार्टर के अनुसार न्यास पद्धति के चार उद्देश्य हैं–

1. अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बनाना।
2. लोगों की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और शिक्षा संबंधी उन्नति में सहयोग देना : स्वशासन अथवा स्वतंत्रता के क्रमिक विकास में सहायता देना।

3. जाति, लिंग, भाषा और धर्म का भेदभाव किए बिना सबके लिए मानवीय अधिकारों और मूल स्वतंत्रता के प्रति आस्था बढ़ाना और उनमें यह भाव जगाना कि संसार के सब लोग एक दूसरे पर निर्भर हैं।

4 सामाजिक, आर्थिक और वाणिज्य संबंधी मामलों में संयुक्त राष्ट्र संघ के सब सदस्यों के और उनके नागरिकों के प्रति समानता के व्यवहार का विश्वास दिलाना (धारा 76)।

न्यास पद्धति का इतिहास– संयुक्त राष्ट्र संघ ने राष्ट्र संघ की मैंडेट व्यवस्था के स्थान पर न्यास पद्धति को ग्रहण किया और उसके संचालन के लिए न्याय समिति का निर्माण किया। मैंडेट की भांति न्यास की व्यवस्था भी विभिन्न शक्तियों में समझौतों का परिणाम थी। न्यास पद्धति का मूल सिद्धांत यह है कि इस समय कुछ पिछड़े हुए अल्पविकसित और आदिम दशा वाले प्रदेशों के निवासी इस योग्य नहीं हैं कि वे अपने देश का शासन स्वयं कर सकें और अपने भाग्य विधाता बन सकें, इन्हें दूसरे विकसित और उन्नत देशों की सहायता अपेक्षित है। सब देशों का यह दायित्व है कि वे उनके विकास में पूरी सहायता दें और जब तक वे अपना शासन करने में समर्थ नहीं हो जाते, तब तक इनकी और इनके हितों की देखभाल इन्हें न्यास या अमानत समझते हुए करें, इनका अपने स्वार्थों के लिए शोषण न करें। यह कार्य संयुक्त राष्ट्र संघ के नियंत्रण में होना चाहिए। राष्ट्र संघ की मैंडेट व्यवस्था केवल जर्मनी, टर्की आदि के साम्राज्यवाद द्वारा पराधीन बनाए गए सभी क्षेत्रों के लिए है।

न्यास पद्धति के प्रदेश– चार्टर में न्यास पद्धति में आने वाले दो प्रकार के पराधीन प्रदेशों का वर्णन है–

1. ब्रिटेन, फ्रांस, हालैंड, आदि पश्चिमी देशों के वशवर्ती और उनके साम्राज्य के विविध प्रदेश। इन्हें स्वशासन न करने वाले प्रदेश कहा जाता है। इसके संबंध में चार्टर में केवल सामान्य सिद्धांतों का वर्णन है और इन पर शासन करने वाली शक्तियों पर, राष्ट्र संघ का, इसके अतिरिक्त कोई नियंत्रण नहीं है कि यह इसके संबंध में कुछ सूचनाएं संघ को दे।
2. न्यास प्रदेश– तीन प्रकार के हैं–
   (अ) मैंडेट के अधीन प्रदेश,
   (ब) द्वितीय विश्व युद्ध के परिणाम स्वरूप शत्रु राज्यों से छीने गए प्रदेश
   (स) अपनी इच्छा से महाशक्ति द्वारा राष्ट्र संघ को सौंपे जाने वाले प्रदेश। अभी तक किसी देश ने अपने वशवर्ती किसी क्षेत्र को राष्ट्र संघ को सौंपने की उदारता प्रदर्शित नहीं की। राष्ट्र संघ के मैंडेट वाले प्रदेशों में दक्षिण अफ्रीका की यूनियन ने दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका की आलोचनाओं के बावजूद संयुक्त राष्ट्र संघ की न्यास पद्धति के अंतर्गत स्वीकार नहीं किया।

क्रम सं.	न्यास प्रदेश	प्रशासक देश	जनसंख्या	क्षेत्रफल
1.	न्यूगिनी	ऑस्ट्रेलिया	19,06,200	1,48.800.0
2.	रूआण्डा–उरूण्डी	बेल्जियम	37.18.696	33,464.8
3.	फ्रेंच कैमरून्ज	फ्रांस	26,02,500	2,66,873.5
4.	फ्रेंच टोगोलैंड	फ्रांस	9,44,446	33,976.5
5.	पश्चिमी समोआ	न्यूजीलैण्ड	72,936	1,810.4
6.	टांगानिका	ग्रेट ब्रिटेन	70,79,557	5,80,298.4
7.	ब्रिटिश कैमरून्ज	ग्रेट ब्रिटेन	9,91,000	58,028.8
8.	ब्रिटिश टोगोलैंड	ग्रेट ब्रिटेन	3,82,200	20.864.0
9.	नौरू	ऑस्ट्रेलिया	3,162	129.6
10.	प्रशान्त महासागर के द्वीपों का न्यास प्रदेश	सं. रा.अमरीका	60,000	1,097.6
11.	सुमालीलैंड	इटली	9,15,000	3,02,400.0
	योग 11	7	1,74,75,647	14,47,743.6

न्यास परिषद का संगठन– न्यास परिषद का संगठन निम्न प्रकार से होता है–

(क) जिन राष्ट्रों को न्यास का भार सौंपा गया है, ऐसे राज्य हैं– (1) ऑस्ट्रेलिया, (2) न्यूजीलैंड, (3) अमेरिका, (4) ब्रिटेन।

(ख) सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य जिनके शासन में कोई न्यास क्षेत्र नहीं है, ऐसे राज्य चीन, फ्रांस और सोवियत संघ हैं।

(ग) और महासभा द्वारा तीन साल के लिए निर्वाचित संयुक्त राष्ट्र के कुछ सदस्य, न्यास परिषद में प्रशासक और गैर–प्रशासक देशों के बीच एक समान विभाजन सुनिश्चित करने के लिए। ऐसे सदस्यों का निर्वाचन महासभा द्वारा 3 वर्षों के लिए होता है। निर्वाचित सदस्य अपनी अवधि समाप्त होने के तुरंत बाद ही फिर निर्वाचित हो सकता है।

इस प्रकार न्यास परिषद के 12 सदस्य हैं जिनमें चार प्रबंधकर्ता देश हैं। तीन सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य होने के कारण स्थायी सदस्य और 5 निर्वाचित सदस्य हैं।

न्यास परिषद के कार्य

1. न्यासीय प्रदेशों की जनता की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा शिक्षा संबंधी प्रगति के बारे में सूची तैयार करना जिसके आधार पर शासन प्रबंध चलाने वाली संस्थाएं वार्षिक रिपोर्ट भेजती हैं।
2. इन प्रशासनिक सत्ताओं से प्राप्त रिपोर्टों की जांच और उन पर विचार करना।
3. इन सत्ताओं के परामर्श से प्रार्थना पत्र पर विचार करना, सत्ता के साथ यदा–कदा नियत समय पर निरीक्षण के लिए न्यासीय प्रदेशों का दौरा करना।

4. न्यास परिषद में निर्णय साधारण बहुमत से होते हैं। प्रत्येक सदस्य का एक ही वोट होता है।

न्यास परिषद स्वयं ही अपने कार्य संचालन के नियम बनाती है जिसमें अध्यक्ष के चुनाव का ढंग भी सम्मिलित है। वर्ष में साधारणतया दो अधिवेशन होते हैं, जिनमें पहला जून के अंतिम पक्ष में और दूसरा नवंबर के उत्तरार्द्ध में आवश्यकता अनुसार विशेष अधिवेशन न्यास परिषद अथवा महासभा के प्रस्ताव अथवा सुरक्षा परिषद के अधिकांश सदस्यों के अनुरोध पर बुलाया जा सकता है।

एक नियमित प्रतिनिधिमंडल हर साल दौरे के लिए बाहर भेजा जाता है। 1948 में इसी प्रकार एक टोली टांगानिका और रूआण्डा–और उरूण्डी गई थी। सन 1949 में एक टोली कैमरुन और टोगोलैण्ड गई थी। 1950, 1953 और 1956 में प्रतिनिधिमंडल ने नौरू, न्यूगिनी, पश्चिमी समोआ और प्रशांत द्वीपों वाले न्यास प्रदेशों का दौरा किया था। 1951, 1954 तथा 1957 में एक दूसरी टोली पूर्वी अफ्रीका प्रदेश रूआण्डा–और उरूण्डी, टांगानिका व सोमालीलैण्ड का दौरा करने गई। ये देश अब स्वतंत्रता प्राप्त कर चुके हैं।

1947 में एक आवेदन के उत्तर में एक विशेष टोली ने पश्चिमी समोआ का दौरा किया।

1955 में टोगोलैण्ड का दौरा करने वाली टोली ने सिफारिश की थी कि अपनी भावी राजनीति की स्थिति के बारे में ब्रिटेन के प्रबंध के अंतर्गत टोगोलैंड के लोगों की राय जानने के लिए एक जनमत संग्रह किया जाए। इस सुझाव को महासभा ने 1955 के दिसंबर में स्वीकार किया और संयुक्त राष्ट्र संघ की देखरेख में 9 मई, 1956 को जनमत संग्रह किया गया। इसमें 1,60,000 निवासियों ने वोट दिए। मतदाताओं से इन विकल्पों में से चुनने को कहा गया था कि क्या वे पड़ोसी गोल्ड कोस्ट के साथ जो जल्द ही स्वतंत्र होने वाला था, अपना प्रदेश मिलाना चाहते हैं, अथवा जब तक गोल्डकोस्ट से अलग होकर न्यास पद्धति के अंदर बने रहना चाहते हैं।

मत लेने पर 93,365 लोगों ने गोल्ड कोस्ट के साथ जुड़ना पसंद किया और 67, 422 ने न्यास पद्धति में रहना चाहा। इस मतगणना के परिणाम स्वरूप महासभा ने अपने 11वें अधिवेशन में टोगोलैण्ड का गोल्डकोस्ट से मिलने का निर्णय स्वीकार किया और 6 मार्च, 1957 को टोगोलैण्ड स्वतंत्र गोल्ड कोस्ट में, जो बाद में घाना राज्य के रूप में संयुक्त राष्ट्र का सदस्य हुआ, मिलकर उस का अंग बन गया।

न्यास व्यवस्था तथा मैंडेट व्यवस्था : तुलना– न्यास व्यवस्था की तुलना राष्ट्र संघ द्वारा स्थापित मैंडेट व्यवस्था से करना प्रासंगिक होगा। कतिपय विद्वानों का मत है कि संयुक्त राष्ट्र की न्यास व्यवस्था राष्ट्र संघ की मैंडेट व्यवस्था के समान एक 'चमकीला धोखा' है। शूमां के अनुसार, न्याय व्यवस्था नई वास्तविकता न होकर, औपचारिकता ही अधिक है। जबकि राल्फ जे. बून्चे के अनुसार, न्यास व्यवस्था एक विस्तृत क्षेत्र रखती है तथा इसमें अधिक व्यापक अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण संभव है।

पैडलफोर्ड व लिंकन के मतानुसार नवीन अंतर्राष्ट्रीय न्यास पद्धति अपने पूर्ववर्ती मैंडेट पद्धति से मुख्यतः चार बातों में भिन्न है–

1. न्यास प्रदेशों के प्रशासकीय अधिकारियों को अपने अपने अधीन राज्य क्षेत्रों में सैनिक प्रतिष्ठान बनाने तथा अपनी स्थिति को दृढ़ बनाने का अधिकार है।

2. मैंडेट पद्धति के विपरीत न्यास पद्धति के अंतर्गत कुछ प्रदेशों को सामरिक महत्व के क्षेत्र घोषित किया गया है। जिनकी सुविधा के लिए विशेष उपबंध किए गए हैं। ऐसे सामरिक महत्व के क्षेत्रों में कार्य करने का प्राधिकरण, न्यास परिषद के स्थान पर सुरक्षा परिषद को सौंपा गया है।
3. अंतर्राष्ट्रीय न्यास पद्धति के अंतर्गत न्यास एवं पराधीन प्रदेशों की प्रगति एवं प्रशासन के संबंध में निष्कर्ष निकालने के लिए प्रयोजन से उन क्षेत्रों में प्रेक्षक मंडल भेजने का अधिकार न्यास परिषद को दिया गया है।
4. राष्ट्र संघ के 'स्थायी अधिदेश आयोग' की तुलना में न्यास परिषद के सदस्य उपनिवेश प्रशासन विशेषज्ञ के स्थान पर सरकारी प्रतिनिधि होते हैं। यद्यपि दोनों पद्धतियों की स्थापना के पीछे सिद्धांत एक ही था। तथापि आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय न्यास पद्धति पुरानी मैंडेट पद्धति से न केवल भिन्न है अपितु उससे श्रेष्ठतर भी है। दोनों पद्धतियों में निम्नलिखित विभिन्नताएं पाई जाती हैं–
   (क) न्यास प्रणाली का क्षेत्र विस्तृत है। मैंडेट प्रणाली जर्मनी और टर्की से छीने गए प्रदेशों तक सीमित थी किंतु न्यास पद्धति न केवल शत्रु से छीने गए प्रदेशों के लिए है अपितु स्वशासन न करने वाले पराधीन और साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का शिकार बने सभी क्षेत्रों पर लागू होती हैं।
   (ख) न्यास व्यवस्था में न्यास प्रदेशों पर शासन करने वाली शक्तियों पर मैंडेट प्रणाली की अपेक्षा अधिक कड़ा निरीक्षण है। मैंडेट प्रणाली में मैंडेट कमीशन को न तो मैंडेट वाले प्रदेशों में जाकर निरीक्षण करने का अधिकार था और न ही वह मैंडेट के संबंध में किसी प्रकार के प्रार्थना पत्र पर विचार कर सकता था जबकि न्यास पद्धति में परिषद आवेदन कर सकती है और अपने निरीक्षक मंडल भेज सकती है।
   (ग) मैंडेट प्रणाली विभिन्न प्रदेशों को अपने साम्राज्य में सीधा सम्मिलित करने का आवरण मात्र थी, जबकि न्यास पद्धति में स्वशासन का सुस्पष्ट विचार है और शासन करने वाले देशों का यह दायित्व है कि वह अपने प्रदेशों को स्वशासन और स्वतंत्रता के लिए समर्थ तथा योग्य बनाएं।
   (घ) मैंडेट व्यवस्था के अंतर्गत मैंडेटों की समस्या मुख्य रूप से स्थायी मैंडेट आयोग का क्षेत्र समझी जाती थी परंतु न्यास व्यवस्था के अंतर्गत न्यास परिषद के अध्यक्ष महासभा और सुरक्षा परिषद पराधीन देशों की समस्या में दिलचस्पी लेती हैं। महासभा में एशिया अफ्रीका के राज्यों का बहुमत है अतः यह औपनिवेशिक शक्तियों की तीव्र आलोचक है तथा निवेश वाले प्रदेशों के हित चिंता तथा कल्याण के लिए बहुत व्यग्र रहती हैं।
   (ङ) न्यास परिषद की रचना और संगठन स्थायी मैंडेट कमीशन की अपेक्षा अधिक संतुलित, स्वतंत्र और सुसंगठित है। मैंडेट कमीशन में केवल विशेषज्ञ होते थे जबकि न्यास परिषद में न केवल प्रशासन करने वाला देश है इसके अतिरिक्त सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य तथा इनकी संख्या के बराबर महासभा से चुने जाने वाले सदस्य होते हैं। इससे इस परिषद में केवल शक्तियों की प्रधानता नहीं रहती बल्कि दोनों पक्षों का प्रतिनिधित्व होने से संतुलन भी बना रहता है।

न्यास परिषद : मूल्यांकन – न्यास परिषद को अपने उद्देश्य में अपूर्व सफलता मिली है। सी.टी. रोमलू के शब्दों में, "न्यास पद्धति की सतत प्रगति आधुनिक विश्व में राजनीतिक नैतिकता के उच्च बिंदु का प्रतिनिधित्व करती है।" प्लानो और रिग्स ने लिखा है कि ''अपनी सफलता के कारण न्यास परिषद को विलापन का सामना करना पड़ रहा है।'' परिषद की यह सबसे बड़ी उपलब्धि है कि अधिकांश न्यास प्रदेश 15 –20 वर्षों की अल्प अवधि में ही स्वतंत्र हो गए। सन 1957 में ब्रिटिश टोगोलैंड, सन 1960 में फ्रेंच कैमरून तथा फ्रेंच टोगोलैंड तथा इटली सुमालीलैंड स्वतंत्र हो गए। सन 1961 में ब्रिटिश कैमरून तथा टांगानिका, 1962 में रूआण्डा–और उरूण्डी, 1968 में नौरू द्वीप तथा 1973 में न्यूगिनी के न्यास प्रदेश स्वतंत्र हो गए। जहां अधिकांश मैंडेट प्रदेश पराधीन रहे वहां न्यास प्रदेशों ने शीघ्र ही स्वतंत्रता प्राप्त कर ली।

दक्षिणी–पश्चिमी अफ्रीका या नामीबिया का मामला– इस मामले का संबंध मैंडेट तथा न्यास व्यवस्था से है। प्रथम विश्व–युद्ध से पहले दक्षिणी–पश्चिमी अफ्रीका का प्रदेश जर्मनी के अधीन था। युद्ध में जर्मनी के हारने पर वर्साय की संधि द्वारा जर्मनी ने यह प्रदेश मित्र–राष्ट्रों को सौंप दिया। इन्होंने राष्ट्र संघ के प्रपत्र की धारा 22 के अनुसार इस प्रदेश पर शासन करने का अधिकार ब्रिटिश सरकार की ओर से दक्षिणी अफ्रीका के संघ को सौंप दिया। द्वितीय विश्व–युद्ध की समाप्ति पर संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना होने से राष्ट्र संघ द्वारा शासनादेश प्राप्त सभी प्रदेश या तो स्वतंत्र हो गए अथवा संयुक्त राष्ट्र संघ की संरक्षणता में आ गए। किंतु दक्षिणी अफ्रीका ने दक्षिणी–पश्चिमी अफ्रीका को संयुक्त राष्ट्र न्यास परिषद को नहीं सौंपा। वह उसे अपने प्रदेश में मिलाना चाहता था। अतः उसने संयुक्त राष्ट्र संघ को प्रतिवर्ष रिपोर्ट भेजना भी सन 1945 से बंद कर दिया।

ऐसी स्थिति में महासभा ने अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय से दक्षिणी– पश्चिमी अफ्रीका की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति पर परामर्शात्मक सम्मति मांगी। 1950, 1955 तथा 1956 में न्यायालय ने इस विषय में अपनी सम्मतियां देते हुए कहा कि–

(1) राष्ट्र संघ का अंत हो जाने पर भी उसका शासनदेश बना हुआ है।

(2) सामान्य सभा को इस प्रदेश की देखभाल का अधिकार है।

(3) दक्षिणी अफ्रीका का कर्तव्य है कि वह इस बारे में महासभा के नियंत्रण स्वीकार करे।

(4) दक्षिणी अफ्रीका को यह अधिकार नहीं है कि वह सं. रा. संघ की सहमति के बिना दक्षिणी अफ्रीका की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति में कोई परिवर्तन करे। दक्षिणी अफ्रीका ने इन सम्मतियों को मानने से इंकार कर दिया। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने दक्षिणी अफ्रीका के विरूद्ध अनेक प्रस्ताव पाारित किए किंतु दक्षिणी अफ्रीका ने सं. रा. के प्रस्तावों की खुली उपेक्षा की। इसका कारण यह था कि दक्षिणी अफ्रीका के हित अमेरिका के साथ जुड़े हुए हैं इसलिए जब 1974 में दक्षिणी अफ्रीका को संयुक्त राष्ट्र संघ से निष्कासित करने संबंधी प्रस्ताव रखा गया तो उसे तीनों के निषेधाधिकार द्वारा रद्द कर दिया गया। 1975 में शस्त्र नियंत्रण के प्रस्ताव को वीटो द्वारा रद्द किया गया। तीन महाशक्तियों के इस दृष्टिकोण को तंजानिया के राजदूत सलीम ने अफ्रीकी आकांक्षाओं के प्रति उदासीनता की संज्ञा दी।

सितम्बर 1978 में सुरक्षा परिषद ने अपने संकल्प 435 में नामीबिया को स्वतंत्रता दिलाने की संयुक्त राष्ट्र संघ की योजना को पुष्टि प्रदान की। स्वापो ने 9 अगस्त 1988 को घोषणा की कि उनका देश 1 नवम्बर, 1988 तक स्वतंत्र हो जाएगा। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव संख्या 435 के लागू करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया गया। दक्षिणी नामीबिया में कठपुतली सरकार को अंतर्राष्ट्रीय दबाव के बाद हटना पड़ा और 5 अक्टूबर, 1988 को जेनेवा में दक्षिणी अफ्रीका क्यूबा और अंगोला के बीच शांति समझौते के फलस्वरूप 1989 में स्वाधीनता का मार्ग खुला। समस्त विदेशी सेनाएं हट गईं और संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव के अनुसार चुनाव संपन्न हुए।

अपनी प्रगति जांचिए

15. मित्र राष्ट्रों ने किस सिद्वांत का उद्घोष किया था?

    (क) स्वनिर्णय (ख) आत्म निर्णय

    (ग) समूह निर्णय (घ) कोई नहीं

16. न्यास परिषद में कितने सदस्य थे?

    (क) 15 (ख) 10

    (ग) 05 (घ) 12

17. न्यास परिषद से अंतिम स्वतंत्र होने वाला न्यास क्षेत्र कौन सा है?

    (क) टोगोलैण्ड (ख) पलाउ

    (ग) नौरू (घ) सुमालीलैण्ड

18. न्यास परिषद के अधीन कुल कितने क्षेत्र थे?

    (क) 11 (ख) 12

    (ग) 04 (घ) 10

3.6 अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय राष्ट्र संघ की प्रमुख कानूनी संस्था है। कानून से संबंध रखने वाले प्रश्नों पर ही यह विचार करता है। राजनीतिक झगड़ों से इसका कोई संबंध नहीं है। ऐसे देश जो इस न्यायालय के सदस्य हों यदि किसी मामले को न्यायालय के समक्ष उपस्थित करना चाहें तो कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त सुरक्षा परिषद कानूनी विवाद उपस्थित होने पर उसे न्यायालय के सम्मुख पेश कर सकती है। संयुक्त राष्ट्र की अन्य संस्थाएं भी किसी कानूनी प्रश्न पर न्यायालय से परामर्श ले सकती हैं। व्यक्तिगत झगड़े इस अदालत में पेश नहीं किए जा सकते हैं।

चीन, सोवियत संघ, ब्रिटेन और अमेरिका ने डम्बार्टन ऑक्स सम्मेलन के समय संयुक्त राष्ट्र संघ के संगठन के संबंध में जो प्रस्ताव प्रस्तुत किए थे उनमें यह कहा गया था कि एक अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय भी होना चाहिए।

सेनफ्रांसिस्को सम्मेलन का आयोजन करने वाले राष्ट्रों के आमंत्रण पर विधिवेत्ताओं की समिति जिसमें 14 देशों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे, की बैठक 9 अप्रैल से 20 अप्रैल, 1945 तक वाशिंगटन में हुई। इस बैठक में वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय का प्रारूप तैयार हुआ।

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में 92 से 96 तक के अनुच्छेदों में अंतर्राष्ट्रीय कानून का विधान है। अनुच्छेद 92 का मंतव्य है कि अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय संयुक्त राष्ट्र संघ का न्याय संबंधी प्रधान उपकरण होगा। उसका काम उस विधान के अनुसार होगा जो परिशिष्ट रूप से चार्टर के साथ संलग्न है। अनुच्छेद 94 के अनुसार प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य है कि वह न्यायालयों के निर्णयों का ठीक तरह से पालन करे। यदि एक पक्ष पालन न करे तो दूसरे पक्ष को अधिकार है कि सुरक्षा परिषद का ध्यान इस ओर उपयुक्त कार्रवाई के लिए आकृष्ट करे।

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना हेग में 3 अप्रैल, 1946 को हुई थी। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय का संविधान 70 अनुच्छेदों में है। इसमें न्यायालय के अधिकार अधिकार–क्षेत्र कार्य संचालन नियम आदि सभी आवश्यक बातें दी हुई हैं।

स्थायी न्यायालय का कार्यालय हेग में दूसरे विश्व युद्ध के आरंभ तक था। युद्धकाल में वह स्विट्जरलैण्ड चला गया था क्योंकि सारे हालैण्ड पर जर्मनी का अधिकार हो गया था। युद्ध समाप्ति के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ के अंतर्गत जिस न्यायालय की स्थापना हुई उसका मुख्य स्थान हेग ही रखा गया। इसका कारण भी था। कार्यालय के भव्य भवन का निर्माण अमरीकी दानवीर स्वर्गीय कार्नेगी ने अपने धन से कराया था। अतः आज अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय का कार्यालय उसी भवन में है। पहले न्यायालय ने जो निर्णय किए थे या आदेश दिए थे उन सबको नए न्यायालय ने अंगीकार कर लिया।

न्यायालय का गठन– संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की धारा 92 के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय न्याय के लिए अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय का गठन हुआ। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के जजों की संख्या 15 रखी गई। ये न्यायाधीश अपने में से ही एक सभापति तथा उपसभापति को चुनते हैं। न्यायाधीशों का चुनाव सुरक्षा परिषद तथा सामान्य सभा द्वारा 9 वर्ष के लिए किया जाता है। न्यायाधीशों का चुनाव जाति, भेद, रंग, भेद तथा धर्म भेद के आधार पर न होकर योग्यता के आधार पर होता है। ये व्यक्ति अपने राष्ट्र में विधिवेत्ता के रूप में ख्याति पा चुके होते हैं और अंतर्राष्ट्रीय कानून के विशेषज्ञ माने जाते हैं। संविधान में कहा गया है कि न्यायाधीशों का नैतिक चरित्र उच्च संस्थाओं जैसे कि उच्च न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति कि लिए आवश्यक है। इतना होने पर भी यह ध्यान रखा जाता है कि एक से अधिक न्यायाधीश एक ही राष्ट्र के न हों। इन न्यायाधीशों को कोई राजनीतिक कार्य या अन्य कोई व्यवसाय करने की आज्ञा नहीं होती। इनका पुनर्निर्वाचन भी हो सकता है। न्यायाधीशों का चुनाव करते समय यह भी ध्यान रखा जाता है कि न्यायालय में संसार की सभी न्याय व्यवस्थाओं को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाए।

उन्मुक्तियां– न्यायाधीशों को अनेक विशेषाधिकार सौंपे जाते हैं। उनको राजनयिक उन्मुक्तियां प्रदान की जाती हैं। न्यायालय के सम्मुख वादियों के प्रतिनिधि, परामर्शदाता और वकीलों को भी स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने की छूट दी जाती है।

गणपूर्ति– न्यायालय के विधान के अनुसार इसमें 15 न्यायाधीशों के अतिरिक्त अस्थायी न्यायाधीश नियुक्त करने की भी व्यवस्था है। न्यायालय की गणपूर्ति 9 रखी गई है।

प्रक्रिया– न्यायालय के सभी निर्णय बहुमत से लिए जाते हैं। बहुमत न होने पर सभापति का निर्णायक मत मान्य होता है।

न्यायालय की भाषा फ्रेंच तथा अंग्रेजी है। अन्य भाषाओं को भी अधिकृत रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। न्यायालय अपनी कार्यविधि और नियमावली स्वयं तैयार करती है।

न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत मुकदमों में वादी और प्रतिवादी केवल राष्ट्र ही हो सकते हैं व्यक्ति नहीं। ऐसे राष्ट्र जो संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य नहीं है अपने विवाद का निर्णय इस न्यायालय द्वारा करा सकते है किंतु सुरक्षा परिषद द्वारा निर्धारित शर्तों को मानना पड़ेगा। सुरक्षा परिषद भी ऐसी शर्तें नहीं रख सकती जिनके कारण गैर–सदस्य राष्ट्रों में असमानता (छोटे–बड़े का भेद) दृष्टिगत हो।

न्यायालय के विधान के मंतव्य के अनुसार मुकदमे के खर्च का कौन–सा हिस्सा गैर–सदस्य राष्ट्र को देना पड़ेगा इसका निर्णय न्यायालय ही करेगा।

न्यायालय का निर्णय अंतिम समझा जाता है। निर्णय की अपील नहीं हो सकती किन्तु कोई–कोई पक्ष समझे कि कोई आवश्यक बात न्यायालय के सम्मुख किसी कारण से उपस्थित नहीं हो सकी अथवा प्रत्यक्ष रूप से कहीं भूल हुई है तब उस अवस्था में पुनः विचार के लिए प्रार्थना–पत्र दिया जा सकता है।

न्यायालय को अधिकार है कि अपना निर्णय देने के पूर्व किसी व्यक्ति विशेषज्ञ अथवा वादी–प्रतिवादी की प्रार्थना पर बंद कमरे में मुकदमे की सुनवाई कर सकता है।

सब प्रश्नों का निपटारा उपस्थित न्यायाधीशों के बहुमत से होता है। यदि किसी प्रश्न पर न्यायाधीशों का मत बराबर हो तो सभापति अथवा उसकी अनुपस्थिति में जो सभापति का आसन ग्रहण कर रहें हो अपना निर्णायक मत दे सकते हैं।

यदि निर्णय सर्वसम्मति से नहीं हो तो उस अवस्था में अल्पमत वाले न्यायाधीशों को भी अपना पृथक लिखित मत व्यक्त करने का अधिकार है।

मुकदमे का निर्णय खुली अदालत में पढ़ा जाता है और उस पर सभापति एवं रजिस्ट्रार के हस्ताक्षर रहते हैं।

साधारणतः यदि राष्ट्रीय न्यायालय की तरह फैसले में जीतने वाले राज्य को मुकदमे का व्यय पाने का उल्लेख न हो तो समझा जाता है कि न्यायालय का विचार है कि प्रत्येक पक्ष अपना खर्च स्वयं उठाये। मुकदमें की सुनवाई के लिए कम–से–कम नौ न्यायाधीशों की उपस्थिति अनिवार्य है।

न्यायालय का खर्च सदस्य देश देते हैं खर्च का कितना हिस्सा किसको देना पड़ेगा इसका निर्णय महासभा करती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के वार्षिक बजट में न्यायालय का बजट भी सम्मिलित रहता है और महासभा न्यायाधीशों तथा रजिस्ट्रार का वेतन निर्धारित करती है।

यद्यपि न्यायालय का स्थायी कार्यालय हेग में है तथापि मुकदमे की सुनवाई दूसरे देश में भी हो सकती है।

टिप्पणी

न्यायालय का क्षेत्राधिकार

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय का क्षेत्राधिकार तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) ऐच्छिक क्षेत्राधिकार

(2) अनिवार्य क्षेत्राधिकार

(3) परामर्शात्मक क्षेत्राधिकार।

(1) **ऐच्छिक क्षेत्राधिकार**– अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की संविधि की धारा 36 के अनुसार न्यायालय उन सभी मामलों पर विचार कर सकता है जिनको संबंधित राज्य न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत करे।

(2) **अनिवार्य क्षेत्राधिकार**– राज्य स्वयं घोषणा करके इन क्षेत्रों में न्यायालय के आवश्यक क्षेत्राधिकार को स्वीकार कर लेता है। ये हैं– संधि की व्याख्या, अंतर्राष्ट्रीय कानून के क्षेत्र से संबंधित सभी मामले किसी ऐसे तथ्य का अस्तित्व जिसके सिद्ध होने पर किसी अंतर्राष्ट्रीय कर्तव्य का उल्लंघन समझा जाए तथा किसी अंतर्राष्ट्रीय विधि के उल्लंघन पर क्षतिपूर्ति का रूप और परिणाम की व्याख्या की आवश्यकता हो। प्रो. ओपेनहीम ने न्यायालय के इस क्षेत्राधिकार को वैकल्पिक आवश्यक क्षेत्राधिकार कहा है। यह वैकल्पिक इसलिए है क्योंकि वह उन्हीं राज्यों पर लागू होता है जो उपर्युक्त घोषणा करें और लागू तभी होता है जब विवाद से संबंधित अन्य राज्य भी इस प्रकार की घोषणा कर चुका हो। यह आवश्यक इसीलिए है क्योंकि जो राज्य इस प्रकार की घोषणा कर देता है उससे संबंधित विवाद किसी विशेष समझौते बिना भी न्यायालय के समक्ष लाए जा सकते हैं।

राज्य इस प्रकार घोषणा करते समय कोई भी शर्त लगा सकता है प्रो. ओपेनहीम के अनुसार सशर्त होते हुए भी वैकल्पिक धारा अनिवार्य न्यायिक निर्णय की सर्वाधिक व्यापक और महत्वपूर्ण व्यवस्था है।

(3) **परामर्शात्मक क्षेत्राधिकार**– अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा परामर्श देने का कार्य भी संपन्न किया जाता है। महासभा अथवा सुरक्षा परिषद किसी भी कानूनी प्रश्न पर अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय का परामर्श मांग सकती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के दूसरे अंग तथा विशेष अभिकरण भी उनके अधिकार क्षेत्र में उठने वाले कानूनी प्रश्नों पर न्यायालय का परामर्श प्राप्त कर सकते हैं। परामर्श के लिए न्यायालय के सम्मुख लिखित रूप में प्रार्थना की जाती है। इस प्रार्थना–पत्र में संबंधित प्रश्न का विवरण तथा वे सभी दस्तावेज होते हैं जो प्रश्न पर प्रकाश डाल सकते हैं। न्यायालय का परामर्श केवल परामर्श होता है जिसे मानने के लिए किसी भी संस्था को बाध्य नहीं किया जा सकता।

न्यायिक निर्णय की क्रियान्विति– संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए संघ के चार्टर की धारा 94 में व्यवस्था की गई है। इसके अनुसार संघ का प्रत्येक सदस्य यह प्रतिज्ञा करता है कि वह किसी मामले में विवादी होने पर अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के फैसले को मानेगा। न्यायालय के निर्णय को क्रियान्वित कराने के लिए आवश्यक कार्रवाई तय करते समय सुरक्षा परिषद का आश्रय ले सकता है न्यायालय के निर्णय को क्रियान्वित कराने के लिए आवश्यक कार्रवाई तय करते समय सुरक्षा परिषद

के 9 सदस्यों की स्वीकृति आवश्यक है इसमें से 5 स्थायी सदस्य भी होने चाहिए। सुरक्षा परिषद जैसा आवश्यक समझे वैसी कार्रवाई करेगी। व्यवहार में यह देखा गया है कि न्यायालय के निर्णयों का राज्य आदर करते हैं। स्टोन ने भी लिखा है कि दोषी राज्य अपनी पोल खुलने से बचने के लिए विवाद के सहमतिपूर्ण निपटारे के लिए तैयार हो जाते हैं। न्यायालय के मत का नैतिक बल भी बहुत अधिक होता है और यदि कोई राज्य निर्णय की अवहेलना करता है तो उसे भी विश्व जनमत के सामने झुकना पड़ता है।

न्यायालय द्वारा कानून का प्रयोग– चार्टर के नियमों के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय वादों का निर्णय करने मे अंतर्राष्ट्रीय विधि का प्रयोग करेगा। जो वाद निर्णय के लिए अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में पेश किए जाएंगे उन वादों में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीश निम्नलिखित विधियों का प्रयोग करेंगे–

(1) सामान्य अथवा विशिष्ट पूर्व अंतर्राष्ट्रीय संधियां और समझौते जिनको वादग्रस्त पक्ष स्वीकार करते हों।

(2) वे अंतर्राष्ट्रीय परम्पराएं और रीति–रिवाज जिन्हें सामान्यतः प्रयोग में माना जाता है।

(3) सभ्य राष्ट्रों द्वारा मान्यता प्राप्त कानूनों के सामान्य सिद्धांत।

(4) भिन्न–भिन्न राष्ट्रों के विधिवेत्ताओं और न्यायाधीशों द्वारा दिए गए निर्णय।

अंतिम अथवा अस्थायी कार्रवाई– चार्टर के नियमों के अनुसार किसी वाद में अंतिम निर्णय देने से पूर्व न्यायालय को वाद के पक्ष के व्यक्तियों के विषय में अंतरिम कार्रवाई करने का अधिकार है। ये अंतरिम कार्रवाई निम्न प्रकार की हो सकती है–

(1) यदि न्यायालय उचित समझे तो परिस्थिति के अनुसार वह वाद के पक्ष के लोगों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए कोई प्राविधिक रीति अपना सकती है।

(2) अंतिम निर्णय देने तक के लिए वह वाद के पक्षों को और सुरक्षा परिषद को अपने विचार उस विषय में प्रकट कर सकता है।

अंतरिम कार्रवाई के विषय में सन 1951 का ऐंग्लो–ईरानियन आयल कंपनी वाद इस विषय में बड़ा अच्छा उदाहरण है।

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय का मूल्यांकन– यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के निर्णयों के पीछे कोई बाध्यकारी शक्ति नहीं फिर भी जब से इसने जन्म लिया है इसके द्वारा अनेक अंतर्राष्ट्रीय मामलों को सुलझाया गया है। एम.सी. छागला के अनुसार यह महान उद्देश्यों की एक साकार प्रतिमा है न्यायालय के कार्य संचालन में विभिन्न देशों तथा गुटों ने बाधा डाली है राज्यों की अवहेलना तथा असहयोगपूर्ण दृष्टिकोण के कारण यह अधिक उपयोगी तथा शक्तिशाली संस्था नहीं बन सकी है अतिवादी प्रभुसत्ता का विचार न्यायालय के मार्ग में बहुत बडी बाधा है। इसका परित्याग करना होगा। इसी प्रकार संविधि की धारा 34 जिसमें यह कहा गया है कि न्यायालय के सम्मुख राज्य ही वादी और प्रतिवादी हो सकते हैं को भी बदलना पड़ेगा तथा व्यक्तियों को न्यायालय में पहुंचने का अधिकार देना होगा।

गुडस्पीड ने लिखा है कि अपनी क्षमता के बावजूद न्यायालय एक ऐसे विश्व समाज में कार्य करता है जो अभी भी इसे महत्वपूर्ण मामले सुपुर्द करने को तैयार नहीं है अथवा वह भी कार्य करने देने के लिए तैयार नही जो चार्टर में इसके लिए निर्देशित हैं।

वर्ष 1946 से अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के उद्घाटन काल से अब तक राज्यों ने इसके समक्ष 178 मामले पेश किए हैं और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा 28 परामर्शात्मक मतों के लिए अनुरोध किया गया।

2020 तक अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के 70 निर्णयों को बंधनकारी मानने की घोषणा की गई है। अन्य राष्ट्रों ने जिनमें अमेरिका, फ्रांस, चीन एवं सोवियत संघ भी हैं किसी भी रूप में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के बंधनकारी रूप को स्वीकार नहीं किया है।

यह आश्चर्य की बात है कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी अबतक सिर्फ 17 बार कानूनी सलाह इस न्यायालय से ली है। सुरक्षा परिषद तथा अन्य संस्थाओं ने प्रायः कानूनी मामलों पर न्यायालय की राय न लेकर कानूनी बातों के संबंध में भी राजनीतिक भावना से काम लिया है। कश्मीर प्रश्न अथवा स्वेज नहर प्रश्न आदि मूलतः कानूनी प्रश्न थे किंतु उनके संबंध में निर्णय राजनीतिक दृष्टि से किया गया।

भारत के न्यायाधीश जो अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के सदस्य रहे हैं–

1. दलवीर भंडारी
2. रघुनन्दन स्वरूप पाठक
3. सर बेनेगल राउ
4. नागेंद्र सिंह

तदर्थ आधार पर नियुक्त भारत के न्यायाधीश–

1. बी.पी. जीवन रेड्डी
2. पम्माराजु श्रीनिवासा राव
3. नागेंद्र सिंह
4. मोहमद अली करीम छागला

नागेंद्र सिंह अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के अध्यक्ष भी रहे हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

19. अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय कैसी संस्था है?
    (क) कल्याणकारी (ख) सामाजिक
    (ग) कानूनी (घ) कोई नहीं
20. अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय कहां स्थित है?
    (क) हेग (ख) जिनेवा
    (ग) न्यूयार्क (घ) टोक्यो
21. अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में कितने न्यायाधीश होते हैं?
    (क) 12 (ख) 20
    (ग) 15 (घ) 10

3.7 सचिवालय

सचिवालय संयुक्त राष्ट्र संघ के छह प्रमुख अंगों में से एक है। अंतर्राष्ट्रीय लोक सेवा ही इसकी अंतर्राष्ट्रीय विशेषता है। संयुक्त राष्ट्र के अन्य प्रमुख अंग अपने–अपने कार्यकाल के अनुसार सदैव बदलते रहते हैं पर सचिवालय के साथ यह बात नहीं। इसमें स्थायी सेवाओं के व्यक्ति काम करते हैं। फलतः यह एक स्थायी संस्था है जिसका काम निरंतर चलता रहता है। इसकी महत्ता के विषय में मैक्सवेल कोहन ने ठीक ही लिखा है–

"संयुक्त राष्ट्र के अन्य अंगों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्व वाला अंग सचिवालय ही है जो महासभा एवं सुरक्षा परिषद के नियतकालिक अधिवेशनों को वास्तविक स्थायी एवं शाश्वत स्वरूप प्रदान करता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में वह केन्द्र बिन्दु है। इसके अभाव में संपूर्ण संयुक्त राष्ट्र सूचना व सहयोग के केंद्रों से वंचित हो जाएगा।"

सचिवालय का संगठन– सचिवालय संयुक्त राष्ट्र का एक प्रशासनिक अंग है। सचिवालय में महासचिव तथा अन्य कर्मचारी होते हैं। महासचिव की नियुक्ति 5 वर्षों के लिए सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर महासभा द्वारा होती है। उनका वार्षिक वेतन 20 हजार डॉलर है और यह राशि कर–मुक्त है। वह संघ का मुख्य प्रशासकीय अधिकारी होता है। महासभा द्वारा बनाए गए विनियमों के अनुसार महासचिव सचिवालय के कर्मचारियों की नियुक्ति करता है। आर्थिक एवं सामाजिक परिषद, न्यास परिषद तथा आवश्यकतानुसार संयुक्त राष्ट्र के अन्य अंगों के लिए आवश्यक कर्मचारी नियुक्त होते हैं, वे सभी सचिवालय के ही भाग होते हैं। इनकी नियुक्ति तथा सेवा की शर्तें सर्वोपरि विचार कार्यक्षमता योग्यता एवं ईमानदारी के उच्चतम स्तरों पर की जाती है और उनकी नियुक्ति में यथासंभव भौगोलिक आधार को पर्याप्त रूप से महत्व दिया जाता है इस बात का उपबंध चार्टर में विशेष रूप से किया गया है कि न तो महासचिव और न ही कर्मचारी वर्ग किसी राज्य से अथवा संघ से बाहर किसी दूसरे अधिकारी से अनुदेश मांगेंगे और न प्राप्त करेंगे। नियुक्ति के पश्चात अपने कार्यकाल में सचिवालय के सभी कर्मचारी विश्व संस्था के प्रति ही निष्ठावान होते हैं।

संयुक्त राष्ट्र के अंतर्गत सचिवालय का अत्यधिक विस्तार हुआ है। जहां राष्ट्र संघ में सचिवालय के कर्मचारियों की अधिकतम संख्या 1,000 से कम ही रही वहीं लगभग 166 देशों में स्थिति कार्यालयों और केंद्रों दोनों के 1,600 से अधिक स्त्री–पुरूष कर्मचारी दैनिक कार्य चलाते हैं।

सचिवालय संयुक्त राष्ट्र का एक वृहद प्रशासनिक तंत्र है जिसे आठ विभागों में संगठित किया गया है–

1. सुरक्षा परिषद संबंधी कार्यों का विभाग
2. आर्थिक विभाग
3. सामाजिक कार्यों का विभाग
4. न्यास एवं स्वशासितेतर क्षेत्रों में सूचना विभाग
5. सार्वजनिक सूचना विभाग
6. सम्मेलन तथा सामान्य सेवा विभाग

7. प्रशासनिक तथा वित्तीय सेवा विभाग और

8. विधि विभाग।

प्रत्येक का एक अध्यक्ष एवं एक उप–महासचिव होता है। उप महासचिव के नीचे एकाधिक उच्च पदस्थ निदेशक होता है। उप–महासचिव की नियुक्ति महासचिव द्वारा की जाती है। इनकी नियुक्तियों में यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि यथासंभव विश्व के विभिन्न क्षेत्रों का समुचित प्रतिनिधित्व हो सके।

महासचिव– सचिवालय संयुक्त राष्ट्र की प्रमुख संस्था है जिसके शीर्ष बिंदु पर महासचिव का पद एवं उसका कार्यालय है। वह केवल सचिवालय का अध्यक्ष ही नहीं संपूर्ण विश्व संस्था के कार्यों का सूत्रधार कहा जा सकता है। उसे सचिवालय का मुख्य संचालक भी कह सकते हैं।

यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि राष्ट्र संघ के निर्माताओं ने महासचिव को बहुत अधिक अधिकार प्रदान नहीं किए थे। वे अपने विवेक का बहुत कम प्रयोग करने के लिए अधिकृत थे। राष्ट्र संघ में महासचिव को अधिकतर प्रशासकीय अधिकार ही उपलब्ध थे। द्वितीय महायुद्ध के अवसर पर जब नए अंतर्राष्ट्रीय संगठन के निर्माण की चर्चा होने लगी तब महासचिव को व्यापक अधिकार दिए जाने पर सक्रिय रूप से विचार किया गया। वह न केवल सामान्य प्रशासकीय कार्य करता है वरन आवश्यकता पड़ने पर सुरक्षा परिषद के सामने किसी भी ऐसे मामले को ला सकता है जिसके कारण, उसकी राय में, अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के लिए भय उत्पन्न हो सकता है। अपने इस अधिकार पर सं. रा. का महासचिव अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा की रक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

महासचिव की नियुक्ति 5 वर्ष के लिए होती है। पहली फरवरी 1946 को नार्वे के त्रिग्वेली महासचिव नियुक्त किए गए थे। 1 नवम्बर 1950 को उनका कार्यकाल तीन वर्ष के लिए बढ़ा दिया गया। 10 नवम्बर 1952 को उन्होंने पद से त्याग पत्र दे दिया। 10 अप्रैल, 1953 को स्वीडन के डैग हैमरस्क्जोल्ड को उनके स्थान पर महासचिव नियुक्त किया गया। कांगो में विमान दुर्घटना में डैग हैमरस्क्जोल्ड की मृत्यु हो जाने के बाद सितम्बर 1961 को बर्मा के ऊ–थाण्ट अस्थायी काल के लिए महासचिव बनाए गए बाद में नियमित रूप से उनका चुनाव हुआ। उनको 1991 में अगले 5 वर्षों के लिए दोबारा चुन लिया गया। 22 सितम्बर 1971 को डॉ कुर्त वाल्दहाईम को इस पद पर नियुक्त किया गया। वे 10 वर्ष तक अपने पद पर बने रहे। जेवियर पेरिज डी कुईयार पेरू के राजनयिक थे, जिन्होंने संयुक्त राष्ट्र के पांचवें महासचिव के रूप में संयुक्त राष्ट्र की 1 जनवरी, 1982 से 31 दिसम्बर, 1991 तक सेवा की। सन 1 जनवरी, 1992 को डॉ. बुतरस घाली (मिस्र) को महासचिव बनाने की सिफारिश की गई। डॉ. घाली जाने माने अफ्रीकी राजनयिक थे। वे शांतिपूर्ण समझौतों के समर्थक और उदार नीतियों के लिए जाने जाते थे। इनके बाद, कोफी अन्नान घाना (1997–2006), बान की मून दक्षिण कोरिया (2006–2016) तथा एंटोनियो गुटेरस पुर्तगाल 2017 से अब तक, महासचिव नियुक्त हुए हैं।

महासचिवों की नियुक्ति से स्पष्ट है कि वे प्रायः छोटे एवं तटस्थ राष्ट्रों के विख्यात नागारिकों में से होते हैं। किसी महाशक्ति या महाशक्ति से संलग्न या संबद्ध

राज्य के नागरिक के लिए महासचिव पद पर नियुक्त होना कठिन है क्योंकि शीत–युद्ध के वातावरण में कोई अन्य महाशक्ति उसे स्वीकार नहीं करेगी।

महासचिव के कार्य–संयुक्त राष्ट्र महासचिव के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

(1) **सामान्य प्रशासन**– चार्टर के अनुसार महासचिव संस्था का मुख्य प्रशासनिक अधिकारी होता है। इस हैसियत से महासचिव महासभा सुरक्षा परिषद आर्थिक तथा सामाजिक परिषद तथा न्यास परिषद की सभी बैठकों में भाग लेता है तथा वह सभी कार्य संपादित करता है जो इन अंगों द्वारा उसे सौंपे जाते हैं। महासचिव द्वारा संस्था के कार्य की वार्षिक रिपोर्ट पर बहस से सत्र प्रारंभ होता है।

(2) **तकनीकी कार्य**– महासचिव कतिपय तकनीकी कार्य भी संपादित करता है। चार्टर के अनुच्छेद 98 के अनुसार महासचिव ऐसे अन्य कार्य भी करेगा जो उसे महासभा सुरक्षा परिषद आर्थिक एवं सामाजिक परिषद तथा न्यास परिषद द्वारा सौंपे जाएंगे। इन अंगों द्वारा किए गए तकनीकी कार्यों को भी महासचिव संपादित करता है। तकनीकी कार्यों में लगभग सभी प्रकार के प्रश्नों पर अध्ययन रिपोर्ट सर्वेक्षण आदि शामिल हैं।

(3) **सचिवालय का प्रशासन**– महासचिव सचिवालय का प्रमुख अधिकारी होता है। सचिवालय में प्रशासन का पूर्ण उत्तरदायित्व उस पर ही होता है। वह महासभा द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार सचिवालय के कर्मचारियों की नियुक्ति करता है।

(4) **वित्तीय कार्य**– महासचिव के कार्यों के अंतर्गत उसके उत्तरदायित्व भी हैं। संयुक्त राष्ट्र के बजट का संचालन सुचारू रूप से हो रहा है अथवा नहीं इसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व महासचिव पर होता है वह संयुक्त राष्ट्र का बजट तैयार कराता है जिसे जिसे बजट सलाहकार समिति के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। विशेषोद्देशीय अभिकरणों तथा अन्य संबद्ध संस्थाओं के बजट पर भी उसकी नजर रहती है। वह संयुक्त राष्ट्र की सभी निधियों का अभिरक्षक है और उनके व्यय के लिए उत्तरदायी है।

(5) **प्रतिनिध्यात्मक कार्य**– संपूर्ण राष्ट्र संघ के लिए केवल एक ही महासचिव होता है जो संघ के एक अभिकर्ता (एजेण्ट) या प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। विभिन्न अभिकरणों एवं सरकारों के साथ वार्ताओं में वह संघ का प्रतिनिधित्व करता है और संघ की ओर से करार करता है।

(6) **राजनीतिक कार्य**– संयुक्त राष्ट्र का महासचिव कुछ राजनीतिक कार्य भी करता है। चार्टर के 99वें अनुच्छेद में कहा गया है कि महासचिव किसी ऐसे मामले की ओर सुरक्षा परिषद का ध्यान दिला सकता है जिससे उसके विचार में अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के बने रहने मे संकट उत्पन्न हो सकता है। इस शक्ति तथा कुछ अन्य कारणों से महासचिव संयुक्त राष्ट्र का प्रधान राजनीतिक अभिकर्ता बन गया है।

संयुक्त राष्ट्र के महासचिव की राजनीतिक भूमिका का इतना अधिक विकास हुआ है। इतना अधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली सिद्ध हुआ है कि मॉगेन्थाऊ ने तो यहां तक कह दिया कि महासचिव संयुक्त राष्ट्र का एक प्रकार का प्रधानमंत्री बन गया।

टिप्पणी

महासचिव की यह राजनीतिक भूमिका तीन दिशाओं में विकसित हुई। प्रथम, उसे एक अंतर्राष्ट्रीय वार्ताकार कहा जाने लगा है। दूसरे, वह अनेक अवसरों पर ऐसे प्रतिष्ठारक्षक सूत्रों के रचयिता के रूप में सामने आया है जिन्हें विवाद के विभिन्न पक्षों ने सम्मानजनक रूप से स्वीकार करना संभव पाया है। तीसरे, उसे विश्व की आत्मा की आवाज का संरक्षक कहा गया है।

महासचिव की राजनीतिक भूमिका के विकास के कारण

महासचिव की उपर्युक्त राजनीतिक भूमिका के विकास के निम्नलिखित कारण हैं–

(1) **संवैधानिक व्यवस्थाएं**– चार्टर का अनुच्छेद 99 महासचिव की राजनीतिक भूमिका को वैधानिक आधार प्रदान करता है। इस अनुच्छेद ने महासचिव को एक प्रकार से संयुक्त राष्ट्र और उसके सदस्यों के आंख और कान के रूप में कार्य करने का उत्तरदायित्व सौंपा है। स्टीफन एम. शैबवल के अनुसार इस अनुच्छेद से महासचिव को सात शक्तियां प्राप्त होती हैं जो इस प्रकार हैं–

(i) महासचिव किसी भी विवाद झगड़े या स्थिति को सुरक्षा परिषद की अस्थायी कार्यावली में रख सकता है।

(ii) महासचिव इस अनुच्छेद के आधार पर राजनीतिक निर्णय ले सकता है कि कोई विवाद सुरक्षा परिषद के सामने प्रस्तुत किया जाना चाहिए अथवा नहीं।

(iii) महासचिव सुरक्षा परिषद के सम्मुख ऐसी आर्थिक और सामाजिक घटनाओं को प्रस्तुत कर सकता है जिनके राजनीतिक परिणाम निकलने की संभावना हो। इस प्रकार महासचिव सुरक्षा परिषद और संयुक्त राष्ट्र के अन्य अंगों के मध्य एक महत्वपूर्ण कड़ी का काम कर सकता है।

(iv) महासचिव किसी विवाद की ओर सुरक्षा परिषद का ध्यान दिलाने की अपनी शक्ति का प्रयोग करने से पहले आवश्यक पूछताछ कर सकता है।

(v) महासचिव स्वयं यह निश्चय कर सकता है कि वह किसी अंतर्राष्ट्रीय समस्या को किस प्रकार सुरक्षा परिषद के सामने प्रस्तुत करेगा। ऐसा करने से पहले वह विस्तारपूर्वक अनौपचारिक रूप से गुप्त वार्तालाप भी कर सकता है।

(vi) महासचिव को अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए आवश्यक घोषणा करने और सुझाव देने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

(vii) महासचिव सुरक्षा परिषद के मंच से विश्व लोकमत को संबोधित कर सकता है और शांति के लिए अपील कर सकता है।

अनुच्छेद 99 के अतिरिक्त अनुच्छेद 98 भी महासचिव की राजनीतिक भूमिका को सशक्त कराने में सहायक हुआ है। अनुच्छेद 98 यह व्यवस्था करता है कि महासचिव ऐसे अन्य कार्यों का संपादन करेगा जो इन (संयुक्त राष्ट्र के नीति निर्धारक) अंगों के द्वारा उसे सौंपे जाएंगे। सामान्यतः अनुच्छेद 98 महासचिव की प्रशासनिक शक्तियों से संबंधित है परन्तु इस अनुच्छेद के अंतर्गत संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद महासभा आदि अन्य अंग उसे जो कार्य सौंपे उनका संकुचित अर्थों में प्रशासनिक होना आवश्यक नहीं है। वे कूटनीतिक और प्रवर्तनकारी भी हो सकते हैं। मध्यपूर्व में संयुक्त राष्ट्र आपात् सेना के संबंध में महासचिव को जो सत्ता प्रदान की गई थी, उसका वैधानिक आधार यही अनुच्छेद था।

(2) **महासचिव की पृष्ठभूमि और व्यक्तित्व**– राष्ट्र संघ के प्रथम महासचिव एरिक ड्रमूंड ब्रिटिश नागरिक सेवा से आए थे। वे अपने ब्रिटिश नागरिक सेवा की प्रमुख परंपराओं–राजनीतिक तटस्थता और प्रच्छन्नता (गोपनीयता) को भी लाये। अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियां भी इसके लिए अनुकूल थीं। उन्होंने महासचिव के अधिकारों का समय–समय पर प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया और उसकी भूमिका को व्यापक बनाया। उनके उत्तराधिकारियों ने उनका अनुसरण किया।

(3) **संयुक्त राश्ट्र की शांति स्थापक गतिविधियों की जटिलता**– महासचिव की भूमिका की अभिवृद्धि का एक कारण स्वयं संयुक्त राष्ट्र की अंतर्राष्ट्रीय जगत में भूमिका का व्यापक हो जाना है। राष्ट्र संघ ने प्रत्यक्ष रूप से कोई शांतिस्थापक कार्रवाई नहीं की। परंतु संयुक्त राष्ट्र ने कोरियाई युद्ध, अरब–इजराइल समस्या, कांगो समस्या, साइप्रस समस्या, अफगान संकट, इरान–इराक युद्ध, खाड़ी संकट आदि अनेक अंतर्राष्ट्रीय विवादों के संबंध में शांति स्थापना के लिए एक सक्रिय भूमिका अदा की है। महासचिव संयुक्त राष्ट्र के उच्चाधिकारियों में एकमात्र प्रवक्ता है अतः संयुक्त राष्ट्र की भूमिका में वृद्धि से महासचिव की भूमिका भी अधिक सशक्त और व्यापक बन गई है।

(4) **शीत–युद्ध तथा सुरक्षा परिषद एवं महासभा में गतिरोध**– यदि संयुक्त राष्ट्र उसी तरह कार्य करता जैसा कि इनके निर्माताओं ने आशा की थी तो संभवतः सचिवालय और महासचिव की भूमिका राष्ट्र संघ की समकक्ष संस्थाओं की भूमिका की अपेक्षा बहुत अधिक व्यापक न हो पाती। संयुक्त राष्ट्र का चार्टर इस विश्वास पर आधारित था कि महाशक्तियों की युद्धकालीन मैत्री और सहयोग युद्धोत्तर काल में भी बना रहेगा पर ऐसा नहीं हुआ और शीघ्र ही पश्चिमी शक्तियों और सोवियत संघ का शीत–युद्ध प्रारम्भ हो गया। निषेधाधिकार के बारम्बार प्रयोग ने सुरक्षा परिषद में गतिरोध उत्पन्न कर दिया। 3 नवम्बर, 1950 को शांति के लिए एकता प्रस्ताव के द्वारा महासभा ने सुरक्षा परिषद के कुछ उत्तरदायित्वों को अपने ऊपर लेने का प्रयास किया परन्तु अपने विशाल आकार और प्रस्तावों के परामर्शदात्री रूप के कारण महासभा इन उत्तरदायित्वों का ठीक से निर्वाह करने में असमर्थ थी। ऐसी स्थिति में महासभा के अभिकर्ता के रूप में महासचिव को शांति संस्थापक की भूमिका सौंपी जाने लगी।

महासचिव की राजनीतिक भूमिका

महासचिव का पद अत्यंत महत्वपूर्ण है। उसे केवल प्रशासकीय कार्यों का निर्वहन ही नहीं करना पड़ता है अपितु राजनीतिक उत्तरदायित्वों को भी पूरा करना पड़ता है। उसका कार्य उतना ही विशाल है जितना वह उसे बना सकता है। उसकी भूमिका उतनी ही व्यापक है जितने कि उसे वैधानिक अधिकार प्राप्त हैं जितनी उसमें योग्यता और क्षमता है। यदि प्रशासनिक कार्यों में उसकी भूमिका एक आरंभक जैसी है तो राजनीतिक क्षेत्र में उसकी भूमिका मध्यस्थ वार्ताकर्ता और मतैक्य निर्माता के समान है।

महासभा के अंतिम सत्र में महासचिव द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्ट का बहुत महत्व होता है जिसमें उसका व्यक्तिव झलकता है। इसी रिपोर्ट के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं पर उसके दृष्टिकोण व्यक्त होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक

स्थिति और घटनाचक्रों पर प्रकाश डाला जाता है और अंतर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने के लिए सुझाव दिए जाते हैं। लियोनार्ड के शब्दों में– महासचिव की वार्षिक रिपोर्ट अमेरिकन राष्ट्रपति के संदेशों के समान प्रभावशाली है। महासभा में प्रस्तुत किए जाने वाले प्रस्तावों को तैयार करने में भी महासचिव की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

महासचिव की राजनीतिक भूमिका को देखते हुए मॉर्गेन्थाऊ ने लिखा है कि इस प्रकार महासचिव संयुक्त राष्ट्र का एक प्रकार का प्रधानमंत्री बन गया।

इस प्रकार अनेक कारणों से संयुक्त राष्ट्र के महासचिव की भूमिका व्यवहार में उससे कहीं अधिक व्यापक और प्रभावशाली हो गई जितनी कि चार्टर के निर्माताओं ने परिकल्पित की थी परन्तु फिर भी इस भूमिका की अपनी निश्चित सीमाएं हैं। अगर महाशक्तियों के मध्य तनाव कम हो जाता है तो स्वयं सुरक्षा परिषद की अपने शांति स्थापना के उत्तरदायित्व को पूरा करने की क्षमता बढ़ जाती है और उसी अनुपात में महासभा और महासचिव की भूमिका संकुचित हो जाती है। 1962 के बाद वस्तुतः ऐसा हुआ भी है। इसके विपरीत यदि महाशक्तियों के पारस्परिक मतभेदों के कारण सुरक्षा परिषद में गतिरोध उत्पन्न हो जाता है तब महासचिव के पास अपनी बात मनवाने के लिए कोई वास्तविक शक्ति नहीं रह जाती क्योंकि महासचिव और महासभा के पास अपने निर्णयों को कार्यान्वित कराने के लिए कोई बाध्यकारी शक्ति नहीं है।

जैसा मॉर्गेन्थाऊ का मत है। एक राजनीतिक प्रतिनिधि के रूप में महासचिव की स्थिति की दुर्बलता इससे प्रदर्शित होती है कि उसे विवादों का निपटारा करने के दो सबसे शक्तिशाली यंत्रों अर्थात् धमकी देने और प्रलोभन देने की शक्ति से प्रायः पूर्ण रूप से वंचित कर दिया गया है। उसका कार्य अनुनय का प्रयोग करने तथा सार रूप में पहले ही प्राप्त किए गए समझौतों को निरूपित करने तक सीमित कर दिया गया है।

अपनी प्रगति जांचिए

22. सचिवालय संयुक्त राष्ट्र संघ का कैसा तंत्र है?

(क) वैधानिक (ख) प्रशासनिक

(ग) न्यायिक (घ) कोई नहीं

23. सचिवालय का मुख्य अधिकारी कौन होता है?

(क) उप सचिव (ख) कुल सचिव

(ग) महासचिव (घ) अवर सचिव

24. प्रथम महासचिव किस देश से थे?

(क) नार्वे (ख) स्वीडन

(ग) इंग्लैंड (घ) अमेरिका

3.8 संयुक्त राष्ट्र संघ के विशिष्ट अभिकरण एवं गैर राजनीतिक कार्य

संयुक्त राष्ट्र के विशिष्ट अभिकरण वर्तमान विश्व संस्था के संघटक अंग नहीं हैं। इनमें से कुछ संयुक्त राष्ट्र से बहुत पहले ही स्थापित हो चुके थे और बहुतों का गठन संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अंतर्गत किया गया। इन विशिष्ट अभिकरणों के संविधानों, प्रयोजनों एवं सिद्धांतों का विस्तृत वर्णन नहीं है, किंतु चार्टर के कई अनुच्छेदों के अंतर्गत उनके संदर्भ में उपबंध पाए जाते हैं।

चार्टर में उपबंध किया गया है कि ये ''विशिष्ट अंतर्राष्ट्रीय अभिकरण'' आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के साथ विशेषकर करारों द्वारा संयुक्त राष्ट्र के साथ सम्बद्ध किए गए हैं। इन करारों के ऊपर महासभा का अनुमोदन आवश्यक है। अतः संयुक्त राष्ट्र के साथ उनका संबंध संघठनात्मक नहीं, बल्कि संविदाजन्य हैं। संयुक्त राष्ट्र के सदृश प्रत्येक अभिकरण की अपनी सदस्यता, बजट एवं यंत्र हैं किंतु संयुक्त राष्ट्र के विपरीत उनमें से प्रत्येक अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के एक विशिष्ट क्षेत्र में कार्य करता है। जैसे, श्रम, स्वास्थ्य, दूरसंचार आदि।

विशिष्ट अभिकरण सरकारी करार पर आधारित होते हैं तथा आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक आदि क्षेत्रों में विस्तृत अंतर्राष्ट्रीय कार्य संपादित करते हैं।

विशिष्ट अभिकरणों की सामान्य प्रकृति– सभी विशिष्ट अभिकरणों में निम्नलिखित सामान्य बातें मिलती हैं–

1. इनका विधिक अस्तित्व राज्यों के मध्य संधियों या करारों पर आधारित होता है तथा राज्य ही विशिष्ट अभिकरणों के सदस्य होते हैं।
2. सभी विशिष्ट अभिकरणों के संबंध संयुक्त राष्ट्र के साथ विशेष करारों के अनुसार होते हैं।
3. प्रत्येक विशिष्ट अभिकरण का अपना एक संविधान या चार्टर होता है जिनमें अभिकरण के कर्तव्य तथा जिम्मेदारियां वर्णित होती हैं तथा संस्था के गठन आदि के विषय में प्रावधान होते हैं।
4. प्रत्येक अभिकरण का लगभग सामान्य संगठन होता है।
5. प्रत्येक विशिष्ट अभिकरण का अपना एक सचिवालय होता है।

शांति निर्माण केवल एक राजनीतिक प्रश्न ही नहीं है। राज्यों के बीच मैत्री स्थापना तथा उनका सुदृढ़ीकरण,उनके बीच व्यापार पर चुंगी प्रतिबंधों को कम करने पर भी आश्रित है। मुद्रा विनिमय की समस्या अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में अक्सर बाधक होती है। शिक्षा अंतर्राष्ट्रीय भावना के विकास में योगदान प्रदान करती है और अपने आप ही सूझबूझ को भी बनाती है। राष्ट्र आपस में मिलकर काम करके कार्य शर्तों, खाद्य उत्पादन मानव मात्र के स्वास्थ्य, डाक में रेडियो संचार आदि के कार्य में काफी मदद पहुंचा सकते हैं। हर रोज एक देश से दूसरे देश को उड़ने वाले सैकड़ों हवाई जहाज के कारण हवाई क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग अपेक्षित है। इसी तरह सुरक्षित उड़ानों में, मछुआरों, किसानों के लिए मौसम संबंधी भविष्यवाणी आवश्यक है। आर्थिक एवं

सामाजिक परिषद की देखरेख में विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय सरकारी समझौतों के कुछ ऐसे अभिकरणों की स्थापना हुई जिन पर आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शिक्षा एवं स्वास्थ्य संबंधित क्षेत्रों की व्यापक जिम्मेदारी हैं।

पामर एवं पर्किन्स ने लिखा है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के विशिष्ट अभिकरणों का संबंध मानवता की सभी मूलभूत आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं से है जिस कारण अंतर्राष्ट्रीय सहयोग बढ़ाने तथा विश्व के लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

सामाजिक क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ के अनेक विशिष्ट अभिकरण एवं सहायक संस्थाएं सक्रिय हैं। मसलन स्वास्थ्य के क्षेत्र में 'विश्व स्वास्थ्य संगठन', शिक्षा के क्षेत्र में 'यूनेस्को' प्रमुख हैं। आर्थिक क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण बैंक, अंतर्राष्ट्रीय विकास परिषद, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष प्रमुख हैं। तकनीकी क्षेत्र में सक्रिय संगठनों में विश्व मौसम विज्ञान संबंधी संगठन, विश्व डाक संघ, अंतर्राष्ट्रीय दूरसंचार संघ उल्लेखनीय हैं।

संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख विशिष्ट अभिकरण– संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख अभिकरण निम्नलिखित हैं–

1. अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी– अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा अभिकरण की संविधि का प्रारूप संयुक्त राष्ट्र के मुख्यालय में बुलाए गए एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में 26 अक्टूबर, 1956 को स्वीकृत हुआ था। तत्पश्चात इसकी स्थापना 29 जुलाई, 1957 को हुई। जिस समय इसकी संविधि का प्रारूप तैयार हो गया उस समय संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राज्यों के समक्ष एक बहुत बड़ा विवादास्पद प्रश्न उत्पन्न हुआ –''इसे संयुक्त राष्ट्र से किस तरह संम्बद्व किया जाए?'' कुछ महाशक्तियां इसे संयुक्त राष्ट्र के पूर्ण नियंत्रण में रखना चाहती थी और कुछ इसे सभी दृष्टिकोण से एक पूर्ण स्वायत्त निकाय के रूप में देखना चाहती थी। अंततः सन 1957 में संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राज्यों ने एक समझौता सूत्र स्वीकार किया जिसके अनुसार इसे 'स्वायत्त अंतर्राष्ट्रीय संगठन' की स्थिति प्रदान की गई। अतः यथार्थ रूप से इसे संयुक्त राष्ट्र का न सहायक अंग कहा जा सकता है न उसका विशिष्ट अभिकरण।

अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा अभिकरण का प्रमुख उद्देश्य परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग को प्रोत्साहन देना है। इसका उद्देश्य विश्व भर में शांति, स्वास्थ्य और समृद्धि के लिए परमाणु ऊर्जा को द्रुत गति से व्यापक बनाना और इस बात का दृश्य करना है कि इसके द्वारा की गई सहायता सैनिक प्रयोजन हेतु प्रयुक्त न हो सके। यह परमाणु ऊर्जा के नए साधनों का विकास करता है ऊर्जा के संरक्षण का प्रयास करता है और अनुशासन एवं विकास कार्यों में प्रगति लाता है। इसकी प्रमुख गतिविधियों में अन्वेषण को मान्यता दी गई है जिसके द्वारा यह ऊर्जा विकिरण और आइसोटोपों के उपयोगों से कृषि तथा विज्ञान में प्रगति लाने के लिए सदस्य राज्यों को पर्याप्त जानकारी उपलब्ध कराता है और उन्हें तकनीकी सहायता प्रदान करता है। अभी तक की उपलब्धियां साधारण रही हैं पर इसमें आधुनिक विश्व को परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग के क्षेत्र में प्रभावी अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए एक अवसर प्रदान किया है।

2. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन– अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना प्रथम विश्व युद्ध के बाद 11 अप्रैल 1919 में हुई थी। राष्ट्र संघ के अंतर्गत यह प्रथम विशिष्ट अभिकरण

था। सन 1946 में इसे संयुक्त राष्ट्र संघ का अंग स्वीकार कर लिया गया। यह ऐसी अंतर्राष्ट्रीय संस्था थी जो द्वितीय विश्व युद्ध के काल में भी कार्य करती रही। अतः सरकारी एजेन्सी के रूप में यह संगठन श्रमिकों की स्थिति में सुधार करने, जीवन स्तर उन्नत करने और आर्थिक तथा सामाजिक शांति बनाए रखने की कोशिश करता है। यह विश्व में श्रमिक, मालिक और सरकार के त्रिविध सहयोग का आवेदन करने वाला सबसे बड़ा संगठन है। संगठन अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों द्वारा मजदूरी, काम के घंटे, काम के लिए कम उम्र, अलग–अलग दर्जे के मजदूरों के लिए काम की शर्तें, कर्मचारियों को मुआवजा, सामाजिक बीमा, वेतन सहित छुट्टी, औद्योगिक सुरक्षा, रोजगार की व्यवस्था, श्रम संबंधी निरीक्षण, सभा आदि की आजादी जैसे विषयों पर अंतर्राष्ट्रीय श्रम संधियों के मसौदे तैयार कराकर स्वीकृत करता है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के तीन अंग हैं– (1) श्रम सम्मेलन (2) प्रबंध शाखा एवं (3) श्रम कार्यालय। इसकी बैठक प्रतिवर्ष होती है। इसमें राष्ट्रीय प्रतिनिधिमंडल होते हैं जिनमें 2 प्रतिनिधि सरकार के और उनके अलावा एक प्रतिनिधि मालिक का और एक प्रतिनिधि मजदूर का होता है। इसका मुख्य काम समझौते के रूप में अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक स्तर निश्चित करना है। प्रबंध शाखा में 56 सदस्य होते हैं। इसमें 28 प्रतिनिधि सरकारों के होते हैं और 14–14 प्रतिनिधि मजदूरों और मालिकों के होते हैं।

3. संयुक्त राष्ट्र संघ का खाद्य एवं कृषि संगठन– इसका संगठन सन 1983 में खाद्य एवं कृषि संबंधी संयुक्त राष्ट्रीय सम्मेलन के फलस्वरूप हुआ था। इस संगठन का उद्देश्य पोषण स्तर तथा जीवन स्तर को बढ़ाना है। इसका प्रमुख कार्य पोषण खाद्य एवं कृषि संबंधी सूचना संग्रहित करना, उसका प्रसार करना एवं विश्लेषण करना है। इन उद्देश्यों को पूरा करने के कार्य में यह संस्था दुनिया के भूमि और पानी के मूल साधनों के विकास में योगदान देती है। यह विभिन्न देशों में उन्नत तरीकों का प्रचार करती है तथा मवेशियों की भयंकर महामारियों को रोकने की व्यवस्था करती है। वह इन क्षेत्रों में तकनीकी सहायता देती है जैसे पौष्टिक खुराक और खाने–पीने की चीजों की व्यवस्था, भूमि के कटाव को रोकना, सिंचाई, इंजीनियरी, और फिर से जंगल लगाना, जमा की हुई खाने पीने की चीजों को नष्ट होने से बचाना और जैविक खाद तैयार करना। इस समय इस संगठन में सैकड़ों विशेषज्ञ विभिन्न देशों में विद्यमान हैं। कीड़े मकोड़ों से होने वाली फसल की हानि कम करने की कोशिश में इसके सदस्य विभिन्न देशों की सरकारों की सहायता कर रहे हैं। यह कृषि यंत्रों के अच्छे से अच्छे उपयोग में और उत्पादन बढ़ाने में भी सहायता कर रहे हैं।

अंतर्राष्ट्रीय खाद्य तथा कृषि संगठन अपना कार्य सम्मेलन के द्वारा संपन्न कराता है। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र इस सम्मेलन में एक प्रतिनिधि भेजता है संगठन के अंतर्गत 49 सदस्यों की परिषद है,जिसे विश्व खाद्य परिषद कहा जाता है। इसका एक सचिवालय होता है जिसकी अध्यक्षता प्रमुख संचालक करता है जो सम्मेलन के द्वारा चुना जाता है।

आज विश्व के इने–गिने क्षेत्रों की जनता को छोड़कर सबके सम्मुख खाद्य संकट का विकराल प्रश्न दानव सा मुंह बाये खड़ा है। खाद्य और कृषि संगठन इस समस्या को हल करने में सतत प्रयत्नशील है।

इसके कुल 197 सदस्य हैं: 194 सदस्य राष्ट्र, 1 सदस्य संगठन और 2 सहयोगी सदस्य।

डायरेक्टर–जनरल

बिनय रंजन सेन (नवंबर 1956–दिसंबर 1967)

डिप्टी डायरेक्टर–जनरल

मनोज जुनेजा (ऑपरेशन्सः 2011–2012)

4. विश्व स्वास्थ्य संगठन– इस संस्था का संविधान 22 जुलाई, 1946 को स्वीकृत हुआ था और इसका उद्घाटन 7 अप्रैल, 1948 को हुआ। इसका उद्देश्य विश्व के देशों की जनता द्वारा स्वास्थ्य की उच्चतम संभव दशा को प्राप्त करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह संगठन निम्नलिखित कार्य करता है– अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य के कार्यों का संचालन और समन्वय स्वास्थ्य के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ तथा इसके विषय संगठनों तथा अन्य स्वास्थ्य संबंधी संस्थाओं में सहयोग स्थापित करना, महामारी तथा बीमारियों के उन्मूलन के कार्य को प्रोत्साहित करना लोगों के पर्यावरण स्वास्थ्य की परिस्थितियों को तथा आहार, पोषण, निवास गृह और सफाई तथा काम करने की दशा को उन्नत करना, मातृ –मंगल, बाल स्वास्थ्य और कल्याण कार्यों की वृद्धि, स्वास्थ्य के क्षेत्र में अनुसंधान, स्वास्थ्य, शिक्षा और प्रशिक्षण को ऊंचा करना, बीमारियों के अंतर्राष्ट्रीय नामों के तथा निदान संबंधी कार्यों का मानकीकरण तथा खाद्य पदार्थों, दवाइयों तथा अन्य ऐसी वस्तुओं के संबंध में अंतर्राष्ट्रीय मानक निश्चित करना।

इस संगठन के तीन अंग हैं– (1) सदस्य राज्यों के प्रतिनिधियों की असेंबली (2) असेंबली द्वारा चुने गए 30 व्यक्तियों का प्रबंध बोर्ड (3) सचिवालय। इसका मुख्य कार्यालय जेनेवा में है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने विकासशील देशों के हित में कुछ उल्लेखनीय कार्य किए हैं। छुआछूत से फैलने वाली बीमारियों एवं महामारियों की रोकथाम में इसका योगदान महत्वपूर्ण रहा है। मलेरिया उन्मूलन के अंतर्गत इसने भारत, श्रीलंका, इजराइल, जोर्डन, लेबनान, सीरिया, यूनान इत्यादि 40 देशों में कार्य किए हैं और अनेक जगहों में इसे उल्लेखनीय सफलता मिली है।

वर्तमान में विश्व स्वास्थ्य संगठन के 194 सदस्य देश हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन दक्षिण–पूर्व एशिया का क्षेत्रीय कार्यालय नई दिल्ली में है। इसकी क्षेत्रीय निदेशक एक भारतीय डॉ. पूनम खेत्रपाल सिंह (कार्यकाल : 2014 – वर्तमान) हैं।

प्रसिद्ध कलाकार अमिताभ बच्चन को हेपेटाइटिस के बारे में जागरूकता के लिए 2017 में सद्भावना राजदूत नियुक्त किया गया था।

कोरोना काल में डॉ. हर्षवर्धन विश्व स्वास्थ्य संगठन के अध्यक्ष नियुक्त किए गए हैं। (मई 2020 से मई 2021)

5. अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष– अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के बीच मौद्रिक सहयोग का ज्वलंत उदाहरण है। इसकी स्थापना दिसंबर 1945 में हुई तथा 1 मार्च, 1947 से अपना कार्य प्रारंभ किया। इसके प्रमुख उद्देश्य हैं–

1. अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग में उन्नति करना।
2. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ाना।
3. विनिमय दरों को स्थायी बनाना।
4. अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों के अंतरों की विषमता दूर करना।
5. अंतर्राष्ट्रीय भुगतान असंतुलन को कम करना।
6. लाभ के कामों में पूंजी लगाना।

संक्षेप में मुद्रा कोष का उद्देश्य एक ऐसी प्रणाली का विकास करना है जिससे सदस्य देशों को विदेशी निर्यात की सुविधा हो, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन मिले और सदस्य देशों की आर्थिक उन्नति हो सके।

कोष के प्रबंध के लिए प्रशासक मंडल है जो साधारण सभा का कार्य करता है। उसके प्रतिदिन के कार्य संचालन हेतु एक प्रबंधक मंडल होता है। इस मंडल में कम से कम 21 सदस्यों का होना आवश्यक है जिनमें से पांच स्थायी और शेष अस्थायी होते हैं। विधान के अनुसार कोष का प्रधान कार्यालय उस देश में रहेगा जिसका कोष सबसे अधिक है। इस समय अमेरिका का कोष सबसे अधिक होने के कारण कोष का प्रधान कार्यालय अमेरिका में ही रखा गया है।

1 मार्च, 1947 को अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सदस्यों की संख्या 40 थी और उनके अभ्यंश का योग 7.5 बिलियन डालर था, परंतु 15 सितंबर, 1982 को मुद्रा कोष के सदस्यों की संख्या बढ़कर 146 हो गई तथा उनकी कुल पूंजी की मात्रा का योग एस.डी.आर 61 बिलियन था। फरवरी 1983 में वाशिंगटन समिति की बैठक में इसकी पूंजी को 61 मिलियन एस.डी.आर से बढ़ाकर 90 बिलियन एस.डी.आर करने का निर्णय किया गया।

वर्तमान (2020) में IMF की कुल सदस्य संख्या 190 तथा कुल पूंजी $1000 बिलियन के लगभग है और SDR $1 ट्रिलियन के लगभग है।

मुख्य अर्थशास्त्री IMF के अनुसंधान प्रभाग का नेतृत्व करते हैं। भारत के अर्थशास्त्री एवं RBI के पूर्व गवर्नर श्री रघुराम राजन IMF के मुख्य अर्थशास्त्रियों की सूची में रहे हैं (सितम्बर 2003–जनवरी 2007)।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रमुख कार्य हैं–

1. **आर्थिक सहायता**– मुद्रा कोष सदस्य देशों के भुगतान शेषों में उत्पन्न होने वाले अल्पकालीन असंतुलन को दूर या कम करने में सहायता करता है। इसके लिए वह सदस्य देशों को विदेशी मुद्राएं बेचकर तथा उधार देकर उन्हें भुगतान शेष में होने वाले असंतुलन को दूर करने में मदद देता है।
2. **मुद्रा की क्षमता दरों का निर्धारण**– मुद्रा कोष सदस्य देशों की विनिमय दरों में होने वाले उच्चावचनों को रोकने में मदद करता है।
3. **तकनीकी सहायता**– मुद्रा कोष अपने विशेषज्ञों के द्वारा सदस्य देशों की आंतरिक अर्थव्यवस्थाओं का अध्ययन कराता है तथा विभिन्न विषयों पर सलाह देता है।

4. **प्रशिक्षण सुविधाएं**– इस कार्यक्रम के अंतर्गत केंद्रीय बैंक को और सरकार के बीच विभाग के उच्च पदाधिकारियों को अंतर्राष्ट्रीय भुगतान, आर्थिक विकास, वित्तीय व्यवस्था तथा आंकड़ों का संकलन और विश्लेषण से संबंधित प्रशिक्षण दिया जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की कई आधारों पर आलोचना की जाती है जैसे–

1. कोष भेदभाव पूर्ण नीति अपनाता रहता है।
2. यह अंतर्राष्ट्रीय तरलता में वृद्धि करने में असफल रहा।
3. मुद्रा कोष द्वारा राष्ट्रों के अभ्यंश वैज्ञानिक आधार पर निर्धारित नहीं किए जाते हैं।
4. मुद्रा कोष दुर्लभ मुद्राओं की समस्या का समाधान करने में असफल रहा है।

6. यूनेस्को– यूनेस्को का पूरा नाम संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन है। इस संगठन की स्थापना 4 नवम्बर, 1946 को लन्दन में हुए नवम्बर 1945 के सम्मेलन द्वारा प्रस्तुत किए विधान के अनुसार की गई। इसे 14 दिसम्बर, 1946 को संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ जोड़ दिया गया। प्रारंभ में इसके लगभग 20 सदस्य थे लेकिन आज यह सर्वाधिक लोकप्रिय सिद्ध हुई है और इसकी सदस्य संख्या 193 तक पहुंच गई है।

यूनेस्को के प्रस्ताव में उसका उद्देश्य निहित है– युद्ध मनुष्यों के मस्तिष्कों में प्रारंभ होते हैं अतः मनुष्यों के मस्तिष्कों में ही शांति की सुरक्षा के लिए व्यवस्था की जानी चाहिए। यूनेस्को का उद्देश्य शांति एवं सुरक्षा के लिए योगदान करना है जिसकी पूर्ति हेतु शिक्षा विज्ञान तथा संस्कृति के द्वारा राष्ट्रों के मध्य निकटता की भावना का निर्माण करना आवश्यक है। यह संस्था विभिन्न समुदायों में परस्पर ज्ञान एवं सद्भावना उत्पन्न करने में सहायक होती है।

संयुक्त राष्ट्र को कोई भी सदस्य यूनेस्को का सदस्य बना सकता है। जो राज्य संयुक्त राष्ट्र के सदस्य नहीं हैं वे भी यूनेस्को की सदस्यता प्राप्त कर सकते हैं परंतु ऐसे राष्ट्रों की सदस्यता हेतु कार्यकारी मण्डल की सिफारिश पर यूनेस्को महासम्मेलन में उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से स्वीकृति मिलनी चाहिए।

यूनेस्को के तीन प्रमुख अंग हैं–

(1) **महासम्मेलन**– यह संस्था का सर्वोच्च निकाय है। इसमें सभी सदस्य राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं। प्रत्येक दूसरे वर्ष इसका अधिवेशन होता है। इसे सम्पूर्ण विश्व के लिए मानसिक कार्यकर्ताओं की संसद कहा जाता है।

(2) **कार्यकारी–मंडल**– इसे यूनेस्को का हृदय कहा जाता है। यह यूनेस्को के महासम्मेलन तथा महानिर्देशक के मार्गदर्शन में कार्य करता है। इसमें महासम्मेलन द्वारा चुने गए 45 सदस्य हैं।

(3) **सचिवालय**– सचिवालय विशेषज्ञों का आगार माना जाता है। सचिवालय में एक महानिर्देशक तथा अन्य अधिकारी होते हैं। यह पेरिस में स्थित है।

यूनेस्को ने शिक्षा, प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, सांस्कृतिक कार्य, सामूहिक शिक्षा, जन–प्रसार के क्षेत्रों में प्रभावकारी कार्य किए हैं। शिक्षण नहीं तो

विकास नहीं के सिद्धांत पर यह संगठन कार्य करता आ रहा है। हायटी में इसकी प्रसिद्ध प्रारंभिक परियोजनाएं अत्यंत ही उल्लेखनीय रही हैं। इसी के प्रयत्नों से अफ्रीकी देशों में 25 शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय स्थापित हो चुके हैं जिनकी स्थापना में इसने महान योगदान किया है। 1951 में सामूहिक शिक्षा के लिए मैक्सिको में एक केन्द्र खोला गया। भारत ने जामिया–मिलिया में यूनेस्को की सहायता से प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के संबंध में अनुसंधान करने एवं साहित्य प्रकाशन का कार्य किया। 1953 में अरब राज्यों के लिए मिस्र में बुनियादी शिक्षा का केन्द्र खोला गया। यूनेस्को ने नस्लवाद के विरुद्ध विभिन्न भाषाओं में साहित्य प्रकाशित किया। सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में यूनेस्को अंतर्राष्ट्रीय समाज विज्ञान बुलेटिन का प्रकाशन करता है। इसका सांस्कृतिक कार्य विभिन्न कलाओं से और दर्शन से सम्बद्ध है। यूनेस्को ने फिलिपाइन्स, थाईलैंड और अफगानिस्तान में शैक्षिक मिशन भेजे हैं। भारत में ग्रामीण वयस्क शिक्षा पर विचार गोष्ठियां आयोजित की तथा दृष्टिहीनों के प्रशिक्षण के लिए इसने ब्रेल पद्धति का मानकीकरण किया। इसने जन–कल्याणकारी संस्थाओं द्वारा धन–संग्रह करके शरणार्थियों के पुनर्वास में बड़ी सहायता पहुंचाई है। पत्रकारिता की उच्च शिक्षा के लिए यूनेस्को द्वारा अनेक शरणार्थियों के पुनर्वास में बड़ी सहायता पहुंचाई है। पत्रकारिता की उच्च शिक्षा के लिए यूनेस्को द्वारा अनेक साधन जुटाए गए। शिक्षण के क्षेत्र में भेदभाव की विपदाओं के निराकरण के लिए संगठन ने सन 1960 में शिक्षण में भेदभाव के विरुद्ध अभिसमय अंगीकरण किया। संक्षेप में यूनेस्को ने युद्ध के भयानक कीटाणुओं को नष्ट करके अच्छे विश्व के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

यूनेस्को उस समय गहरे संकट में फंस गया जब अमेरिका ने 1 जनवरी, 1985 और ब्रिटेन ने 1 जनवरी, 1986 से इसकी सदस्यता छोड़ दी। यही नहीं जापान और सिंगापुर ने भी धमकी दी कि यदि यूनेस्को में आवश्यक सुधार नहीं किए गए तो वे भी इसकी सदस्यता त्याग देंगे। इससे जहां एक ओर यूनेस्को के प्रति उदासीनता बढ़ी वहीं दूसरी तरफ इस संगठन के समक्ष गहरा वित्तीय संकट उत्पन्न हो गया क्योंकि अमेरिका और ब्रिटेन यूनेस्को के बजट में जो क्रमशः 25 व 5 प्रतिशत योगदान देते थे वह मिलना बंद हो गया। इससे संगठन के कर्मचारियों और कार्यक्रमों में कटौती करने की नौबत आ गई थी।

रीगन प्रशासन ने ऐसा निर्णय इसलिए किया क्योंकि उसके अनुसार यूनेस्को व्यापक राजनीतिकरण, हद से ज्यादा खर्च, बजट के घटिया प्रबंधन और गलत कार्मिक नीति का दोषी है। अमरीकी राजदूत श्रीमती जीन जैरार्ड ने कहा था कि यूनेस्को के प्रेस से मानवाधिकारों और निशस्त्रीकरण संबंधी कार्यों में एक एकतरफा दृष्टिकोण और पक्षपात की गंध आती है। अमेरिका को यह बात परेशान करती रही कि यूनेस्को अधिकतर सोवियत दृष्टिकोण और तीसरी दुनिया के नजरिए को ही अपनाता रहा है। दक्षिण अफ्रीका में नस्लवाद, अरब देशों पर इजराइल के गैर–कानूनी कब्जे, नई विश्व समाचार व्यवस्था आदि के बारे में पारित प्रस्तावों में यह आलोचना मुखर हुई। विकासशील देशों के बहुमत के कारण ऐसे कार्यक्रम मंजूर हुए जिनसे पश्चिमी देश सहमत नहीं थे। यूनेस्को पश्चिम के विरोध का अखाड़ा बन गया। यूनेस्को के लिए बड़ी मात्रा में चन्दा तो पश्चिम देश देते हैं लेकिन उसके खर्चे के मामले में चलती विकासशील देशों की है। अमरीकी विदेश विभाग के अनुसार यूनेस्को स्वतंत्र समाज स्वतंत्र बाजार और स्वतंत्र प्रेस के लक्ष्य

से भटक गया है। इसने पश्चिम की व्यक्तिगत और आर्थिक स्वतंत्रता की नीतियों का विरोध किया जबकि सोवियत संघ तथा दूसरे समाजवादी देशों में राजनीतिक तथा वैयक्तिक अधिकारों के दमन की कभी आलोचना नहीं की।

यूनेस्को के भूतपूर्व महानिदेशक सोमालिया के एमबो ने इसके राजनीतिक रूझानों पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि पहले यह सिर्फ 20 देशों का एक पश्चिमी क्लब भर था। आज इसकी सदस्य संख्या 8 गुना हो गई है। इतने देशों की भागीदारी के बाद इसके चिंतन और कलेवर में फर्क आना स्वाभाविक है। इसकी विविधता और बहुआयामिता ही इसे एक सार्वभौमिक और विश्वव्यापी संगठन का रूप देती है यही इसकी ताकत है।

भारत इसके कार्यकारी बोर्ड का सदस्य रहा है।

भारत के निम्नलिखित व्यक्तियों ने UNESCO के सम्मेलनों की अध्यक्षता की है–

9वां सत्र – नई दिल्ली (इंडिया), 1956 – श्री मौलाना अबुल कलाम आजाद

दूसरा असाधारण सत्र – पेरिस (FR), 1953 – श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन

7वां सत्र – पेरिस (FR), 1952 – श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन

7. विनियोग संबंधी विवादों के समाधान का अंतर्राष्ट्रीय केंद्र– विनियोग संबंधी विवादों के समाधान का अंतर्राष्ट्रीय केंद्र (ICSID) एक स्वायत्तशासी अंतर्राष्ट्रीय संस्था है जिसका निर्माण राज्य एवं अन्य राज्यों के नागरिकों के मध्य उत्पन्न होने वाले विनियोग संबंधी विवादों के समाधान के अभिसमय के अंतर्गत हुआ। यह अभिसमय 14 अक्टूबर, 1966 से प्रवर्तन में है। आई.सी.एस.आई.डी. विभिन्न राज्यों तथा उनके नागरिकों के मध्य उत्पन्न होने वाले विनियोजन संबंधी विवादों के समाधान हेतु संसाधन तथा पंच निर्णय के साधनों का प्रयोग करता है जिससे विनियोजिकों तथा विनियोजित राष्ट्रों के मध्य आपसी विश्वास का वातावरण उत्पन्न होता है। ऐसे ही वातावरण में संसाधनों का रुख विकसित राष्ट्रों से विकासशील राष्ट्रों की ओर मोड़ने में सहजता आती है। इस अभिसमय पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। 19 दिसंबर, 1986 को टर्की ने 1 अक्टूबर, 1986 को बैलिज ने तथा 1987 में हंगरी ने अभिसमय पर हस्ताक्षर किए। इस प्रकार 1987 के अंत तक हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों की संख्या 97 हो गई है। आई.सी.एस.आई.डी. के पास समाधान हेतु पहुंचने वाले विवादों की संख्या बढ़ती जा रही है। वर्ष 1987 में पंच निर्णय के लिए इसके पास तीन नए विवाद पहुंचे। वर्तमान में इसके पास ऐसे 9 विवाद हैं जिनके हल इसको ढूंढ़ने हैं। आई.सी.एस.आई.डी के निर्माण से अब तक कुल 23 विवादों का समाधान खोजा गया है।

8. अंतर्राष्ट्रीय विकास संगठन– अंतर्राष्ट्रीय विकास संगठन विश्व बैंक की एक सहायक संस्था है। इसकी स्थापना 24 दिसंबर 1960 को की गई थी। मार्च 1961 में इसे संयुक्त राष्ट्र संघ का एक विशिष्ट अभिकरण बनाया गया। इसका मुख्य रूप से विकासशील राज्यों के आर्थिक विकास के लिए न्यूनतम ब्याज पर दीर्घकालीन ऋण देना है। अतः यह विश्व बैंक के विकास संबंधी उद्देश्य को आगे बढ़ाता है और उसकी कार्रवाई को अनुपूरित करता है। विश्व बैंक के पदाधिकारी एवं कर्मचारी वर्ग ही इसके कार्य करते हैं। सन 2020 तक विश्व के 173 देश आई.डी.ए के सदस्य बन चुके थे। वर्ष 2018–20 में ही आई.डी.ए ने 76 देशों में सैकड़ों परियोजनाओं के ऋण हेतु 75

बिलियन डॉलर उपलब्ध किया। इसके द्वारा प्रदान किए जाने वाले ऋणों पर ब्याज नहीं लिया जाता है केवल सेवा भार 3 प्रतिशत की दर से लिया जाता है। इसका मुख्यालय वाशिंगटन (अमेरिका) में है।

9. अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम– अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम की स्थापना जुलाई 1956 में हुई तथा 20 फरवरी, 1957 को संयुक्त राष्ट्र का विशिष्ट अभिकरण बना। इसकी वर्तमान सदस्य संख्या 185 है। यद्यपि यह विश्व बैंक से निकट रूप से संबद्ध है तथापि यह एक पृथक् विधिक इकाई है तथा इसका कोष विश्व बैंक के कोष से पृथक् है। विकासशील सदस्य राज्यों में निजी उद्योगों को वित्तीय सहायता देना इसका प्रमुख कार्य है। इसे ऋण देने वाली संस्थाओं को प्रधानतः नियोजन निकाय कहा जा सकता है। इसकी संरचना विश्व बैंक की सूचना के सदृश है। वित्तीय वर्ष 1987 में आई.एफ. एस.सी ने सदस्य राष्ट्रों के निजी क्षेत्र में सहायता की मात्रा में अपूर्व वृद्धि की है। कुल मिलाकर 92 व्यवसायिक प्रतिष्ठानों में 920 मिलियन डॉलर का विनियोग किया है।

10. पुनर्निर्माण एवं विकास का अंतर्राष्ट्रीय बैंक (विश्व बैंक)– सन 1944 के ब्रेटन वुड्स सम्मेलन से दो वित्तीय निकायों का उद्भव हुआ– (1) पुनर्निर्माण और विकास का अंतर्राष्ट्रीय बैंक (विश्व बैंक) और (2) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा निधि। इन दोनों वित्तीय निकायों की स्थापना सन 1946 में हुई। विश्व बैंक का प्रधान उद्देश्य उत्पादक प्रयोजनों के लिए पूंजी निवेश नियोजन की सुविधा देकर सदस्यों के प्रदेशों के पुनर्निर्माण और विकास में सहायता देना है। यह निजी विदेशी पूंजी नियोजक को प्रोत्साहन देता है और सदस्य राज्यों को निजी पूंजी उपलब्ध ना होने पर उन्हें ऋण देता है। जैसे राज्यों की आधारभूत सुविधाओं के विकास के लिए धन उधार देता है। सदस्य राज्यों के प्रदेशों में स्थित व्यापार उद्योगों की प्रगति के लिए भी ऋण दिए जा सकते हैं। इस प्रकार यह बैंक उत्पादक प्रयोजनों के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पूंजी के निवेश को प्रोत्साहन देता है। इसने अपने निर्माण कार्य के प्रारंभिक वर्षों में द्वितीय विश्व युद्ध से ध्वस्त यूरोप के पुनर्निर्माण की समस्या का समाधान किया। सन 1948 के पश्चात इसने अधिकतर अल्पविकसित सदस्य राज्यों को वित्तीय सहायता दी है।

वही देश विश्व बैंक का सदस्य हो सकता है जो अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का सदस्य होता है। इस प्रकार दोनों संस्थाओं की सदस्यता साथ साथ चलती है। सन 1987 में 151 देश विश्व बैंक के सदस्य हैं।

विश्व बैंक का प्रबंध तीन स्तरीय होता है– एक अध्यक्ष, एक बोर्ड ऑफ गवर्नर्स, एक बोर्ड ऑफ एग्जीक्यूटिव डायरेक्टर्स। बोर्ड ऑफ गवर्नर्स में प्रत्येक सदस्य देश से एक गवर्नर होता है। अध्यक्ष की नियुक्ति बोर्ड ऑफ एग्जीक्यूटिव डायरेक्टर्स द्वारा होती है। जिनकी संख्या 22 है, जिनमें पांच की नियुक्ति उन देशों द्वारा की जाती है जिनके बैंक में अधिकतम अंश हैं। बाकी 17 बोर्ड ऑफ गवर्नर्स द्वारा चुने जाते हैं। बोर्ड ऑफ एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर्स, डायरेक्टर की बैठक अध्यक्ष के निर्देशन में होती है। बोर्ड ऑफ एग्जीक्यूटिव डायरेक्टर्स बैंक की सबसे शक्तिशाली संस्था होती है जो बैंक की समस्त नीतियों का निर्धारण करती है।

विश्व बैंक की प्रारंभिक पूंजी 10 बिलियन डॉलर है। अकेले वर्ष 1987 में ही बैंक ने 39 देशों को कुल मिलाकर 127 ऋण दिए और बैंक से तीन प्रमुख ऋण लेने वाले देश हैं– भारत (2,128 मिलियन) मेक्सिको (1,678 मिलियन) तथा ब्राजील (1262 मिलियन)।

विश्व बैंक की कुल स्वीकृत पूंजी में प्रतिशत के क्रम अनुसार 10 देशों का नाम इस प्रकार है– संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, सऊदी अरब, चीन, कनाडा, भारत, इटली।

विश्व बैंक ने युद्ध में क्षतिग्रस्त तथा विकासशील राष्ट्रों के विकास के लिए सराहनीय कार्य किए हैं। विकासशील देशों को निम्न ब्याजदर पर ऋण देकर तथा तकनीकी सहायता दिला कर उनके विकास में मदद की है। इसके साथ–साथ भारत पाकिस्तान सिंधु घाटी जल विवाद और स्वेज नहर कंपनी के अंशों की क्षतिपूर्ति संबंधी विवाद का निपटारा करवा कर निश्चय ही अंतर्राष्ट्रीय शांति को बढ़ाने वाले प्रशासनिक कार्य किए हैं। इन सब के बावजूद विश्व बैंक की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है–

1. विश्व बैंक की ऋण नीति भेदभाव पूर्ण रही है। बैंक ने एशिया व सुदूरपूर्व तथा अफ्रीका के विकासशील देशों को पश्चिमी यूरोप के देशों की तुलना में बहुत कम ऋण सहायता दी है तथा इस ऋण सहायता में और भी कमी हो रही है।
2. विश्व बैंक की यह भी आलोचना की जाती है कि वह किसी देश की ऋण लौटाने की क्षमता पर अत्यधिक बल देता है। विकसित देशों को ऋण देने से पूर्व भुगतान क्षमता की खोज करना व्यर्थ है। विश्व बैंक की ऊंची ब्याज दर के संबंध में भी आलोचना की जाती है कि जिस ऋण की गारंटी सरकार देती है उस पर ऊंची ब्याज दर लेना कहां तक उचित है।

11. विश्व डाक संघ– विश्व डाक संघ के उद्‌भव का इतिहास लगभग 108 वर्ष पुराना है। संगठन में सामान्य अभिसमय पर हस्ताक्षर कर सामान्य डाक यूनियन का निर्माण हुआ था जो सन 1878 में सार्वदेशिक डाक यूनियन हो गई। यह संगठन इस सिद्धांत पर आधारित है कि डाक के पारस्परिक मिलने के लिए सभी सदस्य राज्य एक ही डाक प्रदेश हैं। वर्तमान विश्व डाक संघ एक नवीन सार्वदेशिक यूनियन ही है जिसे सन 1947 में महासभा ने एक प्रस्ताव द्वारा एक विशिष्ट अभिकरण के रूप में स्वीकार किया। इसका प्रमुख प्रयोजन पत्रों के परस्पर विनिमय के लिए देशों का एक डाक संदेश बनाना, डाक सेवा में सुधार लाना और इस क्षेत्र में सहयोग को प्रोत्साहन देना है। सभी राज्य संघ के सदस्य हैं और अंतर्राष्ट्रीय डाक के मामलों में इसके द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करते हैं। इसका केंद्रीय कार्यालय बर्न में है।

12. अंतर्राष्ट्रीय दूरसंचार संघ– 1 जनवरी 1961 के अभिसमय एवं उससे अनुबद्ध विनियमों के अंतर्गत इस संघ का निर्माण हुआ।

1. इस संघ के प्रयोजन है– सभी प्रकार के दूरसंचार के प्रयोग में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को कायम रखना एवं उसका विस्तार करना।
2. दूरसंचार संबंधी प्रदेशिक सुविधाओं के विकास एवं उसकी उपादेयता को प्रोत्साहन देना।

उपर्युक्त परियोजनाओं की पूर्ति के लिए यह संगठन रेडियो वेब का आवंटन करता है और रेडियो में अंकित करता है, ताकि विभिन्न देशों के रेडियो स्टेशनों के बीच किसी तरह का हानिकारक हस्तक्षेप न होने पाए।

13. अंतर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संघ– इस संगठन की उत्पत्ति सन 1944 के सिविल उड्डयन के शिकागों अभिसमय से हुई थी। 4 अप्रैल, 1947 को इसे संयुक्त राष्ट्र का एक विशिष्ट अभिकरण बनाया गया। अभिसमय के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय सिविल उड्डयन की समस्याओं का अध्ययन, सिविल उड्डयन के अंतर्राष्ट्रीय मापदंड एवं नियम निश्चित करना इसका प्रधान उद्देश्य है। इसके अतिरिक्त यह अंतर्राष्ट्रीय वायु परिवहन के विकास को प्रोत्साहन देता है। इसमें विमान चालन संबंधी सेवाओं, यातायात के नियंत्रण, संचार व्यवस्था, सुरक्षित अंतर्राष्ट्रीय उड़ान के लिए नवीन प्रणाली आदि का विकास शामिल है। आधारभूत रूप से यह तकनीकी संगठन है। तकनीकी सहायता के माध्यम से यह संगठन विकासशील राष्ट्रों को वायु परिवहन व्यवस्थाओं का निर्माण करने और आवश्यक कार्य कर्मचारियों के परीक्षण देने में सहायता देता है। इसने अंतर्राष्ट्रीय वायु यातायात को सुरक्षात्मक एवं उपयोगी बनाने के लिए पर्याप्त रूप से योगदान किया है।

इसके दो अंग हैं– सभा तथा परिषद। सभा में सभी सदस्य राज्यों का प्रतिनिधित्व होता है। परिषद में 27 सदस्य होते हैं जिनका निर्वाचन सभा द्वारा 3 वर्षों के लिए किया जाता है। पूर्व विधान परिषद हवाई यातायात के विकास के लिए सूचना एकत्रित करती है, उसकी जांच करती है तथा परंपराओं के विषय में अपनी संस्तुति देती है। यदि किसी प्रस्तुति वर्ष में अंतर्राष्ट्रीय हवाई यातायात में बाधा पहुंचती है तो परिषद उसकी जांच करती है तथा राज्यों के मध्य झगड़ों को सुलझाकर इस तरह कार्य संपादित करती है। इस समय इस संस्था के डेट 100 सदस्य हैं तथा इसका प्रधान कार्यालय मोण्ट्रियल (कनाडा) में है।

14. विश्व मौसम विज्ञान संगठन– 1947 में एक अभिसमय द्वारा इसकी स्थापना की गई। महासभा के प्रस्ताव अनुसार सन 1951 में इसे संयुक्त राष्ट्र का एक विशिष्ट अभिकरण बना लिया गया। इस संगठन का मुख्य प्रयोजन मौसम विज्ञान संबंधी विषयों में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की वृद्धि करना है। इसके लिए यह मौसम के बारे में जानकारी प्राप्त करने एवं मौसम की सूचना लेने के लिए विश्व भर में जगह जगह पर मौसम विज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना करता है।

इसके प्रमुख अंग हैं– (1) विश्व मौसम (2) विज्ञान कांग्रेस कार्यकारी समिति (3) प्रादेशिक संघ (4) कांग्रेस द्वारा निर्मित तकनीकी कमीशन तथा (5) सचिवालय।

15. अंतर्राष्ट्रीय सामुद्रिक परामर्शदात्री संगठन– इसकी विधिवत स्थापना 1958 में हुई है। संगठन नौपरिवहन के लिए उन कार्यों को करता है जिनको अंतर्राष्ट्रीय सिविल उड्डयन संघ उड्डयन के लिए करता है। यह प्रधानतः सलाहकार अभिकरण है। यह समुद्र में नौपरिवहन के लिए सुरक्षा नियम निर्धारित करता है।

नौपरिवहन के क्षेत्र में विभिन्न सरकारों के अनावश्यक प्रतिबंधों तथा भेदभाव को दूर करने में सहायता देता है और नौपरिवहन के सभी मामलों में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहन देता है।

इसके प्रमुख अंग हैं– सभा, परिषद तथा सचिवालय। सभा में सभी सदस्यों का प्रतिनिधि होता है तथा यह सामान्य नीति निर्धारित करती है। परिषद में 16 सदस्य होते हैं तथा यह संस्था के कार्य संपादित करती है। सचिवालय लंदन में स्थित है तथा इसका प्रधान एक महासचिव होता है।

16. संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संस्था– इस संस्था का प्रमुख कार्य संयुक्त राष्ट्र संघ की औद्योगिक एजेंसियों के कार्यों में समन्वय स्थापित करना है। इसकी स्थापना 1 जनवरी, 1967 को महासभा ने की थी। 80 राज्यों के अनु समर्थन के बाद यह संयुक्त राष्ट्र की विशिष्ट एजेंसी बन गई।

17. अंतर्राष्ट्रीय शरणार्थी संगठन– इसकी स्थापना 1948 में की गई थी। इसका मुख्य कार्यालय जिनेवा में है। इसका मुख्य उद्देश्य ऐसे व्यक्ति की सहायता करना है जिन्हें किसी कारणवश अपनी मातृभूमि छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़े। यह संस्था ऐसे व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान करती है और शरणार्थी समस्या को निपटाने के लिए प्रयास करती है यह संगठन शरणार्थियों को पुनः बसाने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

18. अंतर्राष्ट्रीय बाल आपातकालीन कोष– महासभा द्वारा संस्था की स्थापना सितंबर 1946 में की गई। तीस राष्ट्रों का एक कार्यकारी मंडल इसका संचालन करता है। यह एक अर्धस्वशासित संस्था है जिसका प्रमुख उद्देश्य स्वास्थ्य एवं पोषण आदि कार्यक्रमों के माध्यम से बाल कल्याण कार्यों में सहयोग देना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह संस्था बच्चों के स्वास्थ्य सुधार पोष्टिक भोजन शिक्षा व्यवस्था एवं अन्य कार्यक्रमों का संचालन करती है भूकंप, बाढ़ आदि में भी यह बच्चों और उनकी माताओं के लिए सहायता ऑपरेशन करती है।

अपनी प्रगति जांचिए

25. निम्न में से किस अभिकरण की स्थापना राष्ट्र संघ के समय में हो चुकी थी?

(क) ILO (ख) FAO

(ग) IMF (घ) WHO

26. यूनेस्को के प्रमुख अंग कितने हैं?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पांच

3.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग) 2. (ख)
3. (क) 4. (क)
5. (ख) 6. (ग)
7. (क) 8. (घ)
9. (ग) 10. (ग)
11. (ख) 12. (ग)
13. (ख) 14. (घ)
15. (ख) 16. (घ)

17. (ख) 18. (क)
19. (ग) 20. (क)
21. (ग) 22. (ख)
23. (ग) 24. (क)
25. (क) 26. (ख)

3.10 सारांश

संयुक्त राष्ट्र संघ के 6 अंग प्रमुख हैं– (1) महासभा (2) सुरक्षा परिषद (3) आर्थिक और सामाजिक परिषद (4) न्यास परिषद (5) अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय तथा (6) सचिवालय। इन छह अंगों के अतिरिक्त इसके विशिष्ट अभिकरण भी हैं जो विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करते हैं। प्रमुख छह अंगों में महासभा अपने नाम के अनुरूप ही विशालकाय आकार की है। सबसे अधिक संख्या में सदस्य महासभा में ही हैं। वर्तमान में 193 देश इसके सदस्य हैं। वर्ष में एक बार इसका अधिवेशन होता है। सदस्य देश इसमें अपने प्रतिनिधि भेज सकता है। इसे संसार की नगर सभा भी कहा जाता है। दूसरा प्रमुख अंग है– सुरक्षा परिषद। यह आकार की तुलना में छोटा है परन्तु महासभा से कहीं अधिक शक्तिशाली है। इसमें पांच स्थायी सदस्य होते हैं–संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन तथा 10 सदस्य अस्थायी होते हैं। इनका कार्यकाल दो वर्ष होता है। सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों को निषेधाधिकार का विशेष अधिकार है जिसे वह विशेष परिस्थितियों में प्रयोग में लाते हैं। आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के आठ क्षेत्रों में कार्य करने के लिए विभाग निश्चित हैं तथा यह परिषद बहुत बड़े पैमाने पर कार्य करती है। न्यास परिषद में कुल 11 क्षेत्र सम्मिलित थे। 1994 में पलाउ के स्वतंत्र होने के पश्चात न्यास परिषद की सक्रियता प्रभावित हुई है तथा वह अपनी 1994 वाली स्थिति में ही है। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय निरंतर न्यायिक समस्याओं का समाधान करने की दिशा में अग्रसर है तथा उसके निर्णयों से विश्व में उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हो रही है। सचिवालय का मुख्य पदाधिकारी महासचिव जो मुख्य प्रशासकीय अधिकारी होता है वही सभी प्रलेख, रिपोर्ट, प्रारूप, मसविदा तैयार करता है। इस प्रकार यह माना जा सकता है सचिवालय सभी महत्वपूर्ण मुद्दों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित अवश्य करता है। इन छह अंगों के अतिरिक्त विशिष्ट अभिकरण अपने–अपने क्षेत्र विशेष में कार्यरत रहते हैं। अतः कहा जा सकता है कि विश्व में लगभग सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों में संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्य अंग और उसके अभिकरण सक्रिय हैं।

3.11 मुख्य शब्दावली

- **लघु सभा** : विराट आकार के कारण महासभा हमेशा अधिवेशन नहीं कर सकती थी अतः एक छोटी सभा का निर्माण किया गया। यह आकार में महासभा से बहुत छोटी थी तथा हमेशा कार्यरत रहती है।
- **निषेधाधिकार** : प्रक्रिया संबधी मामलों के अतिरिक्त यदि सुरक्षा परिषद का कोई स्थायी सदस्य नकारात्मक मत प्रदान करता है जिससे सुरक्षा परिषद कोई निर्णय नहीं ले पाती है उसे निषेधाधिकार कहते हैं।

- **न्यास परिषद** : पराधीन क्षेत्रों मे जहां स्वशासन स्थापित नहीं हो पाया हो वहां के नागरिकों के हितों का ध्यान रखते हुए उन्हें अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण में रखा जाने का निर्णय लिया गया। चार देशों को संरक्षण की जिम्मेदारी सौंपी गई। यही न्यास परिषद है।
- **विशिष्ट अभिकरण** : ये वह संस्थाएं हैं जो संयुक्त राष्ट्र संघ की सहायक संस्थाओं के रूप में पूरे विश्व में कार्यरत हैं।

3.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1 महासभा में मतदान पद्धति पर प्रकाश डालिए।

2 महासभा और सुरक्षा परिषद के कार्यों की तुलना कीजिए।

3 यूनेस्को पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।

4 अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर प्रकाश डालिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1 महासभा के कार्यों का विस्तार से वर्णन करते हुए उनका मूल्यांकन कीजिए।

2 सुरक्षा परिषद की शक्तियों का विस्तृत वर्णन करते हुए निषेधाधिकार के पक्ष और विपक्ष में तर्क दीजिए।

3 संयुक्त राष्ट्र संघ के तीन अभिकरणों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

4. सचिवालय संयुक्त राष्ट्र की रीढ़ है, कैसे? सिद्ध कीजिए।

5. न्यास परिषद के संगठन एवं भूमिका पर प्रकाश डालिए।

3.13 सहायक पाठ्य सामग्री

1 अंतर्राष्ट्रीय संगठन, डॉ. एम.पी. राय, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, राजस्थान।

2 अंतर्राष्ट्रीय संगठन, डॉ रमेशचन्द्र तिवारी, वि. वि. प्रकाशन, वाराणसी।

इकाई 4 संयुक्त राष्ट्र संघ की शांति संबधी कार्यवाही

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाए रखना : नए आयाम तथा मूल्यांकन
4.2.1 संयुक्त राष्ट्र में शांति कायम रखने वाली कार्यवाहियां
4.2.2 शांतिपूर्ण समाधान की प्रक्रियाएं
4.2.3 संयुक्त राष्ट्र संघीय आपातकालीन सेना
4.2.4 अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखना
4.3 प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय विवादों का अध्ययन
4.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.5 सारांश
4.6 मुख्य शब्दावली
4.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.8 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

4.0 परिचय

यह सर्वविदित है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की विफलता, प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात विश्व के क्रम में आने वाले परिवर्तन, तानाशाही शक्तियों का उदय, सैन्य तकनीकी के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास, नए राष्ट्रों का तेजी से स्वतंत्रता प्राप्त करना तथा द्वितीय विश्व युद्ध का आरंभ इत्यादि है। उपर्युक्त सभी घटनाओं ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति और सुरक्षा से संबंधित सभी समीकरणों को विचलित कर दिया था अतः एक ऐसी अंतर्राष्ट्रीय संस्था की आवश्यकता थी जिसमें राष्ट्र संघ की कमियां न हो तथा एक ऐसी बहुआयामी और शक्तिशाली संस्था हो जो हर संभावित तरीके से अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बनाए रख सके।

अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा, संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर का प्रथम उद्देश्य है। अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के क्षेत्र में महासभा को महत्वपूर्ण अधिकार और शक्तियां प्राप्त हैं। इसी के कारण महासभा के मुख्य प्रशासनिक पदाधिकारी की शक्तियों में आशातीत वृद्धि हुई क्योंकि व्यवहार में वही इन शक्तियों का प्रयोग करता है। संयुक्त राष्ट्र आपातकालीन सेना के गठन से शांति स्थापित करने की प्रक्रिया अधिक प्रभावशाली हो गई। वहीं सुरक्षा परिषद के बार–बार निषेधाधिकार के प्रयोग से अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बार–बार प्रभावित होती रही। संयुक्त राष्ट्र संघ की शांतिपूर्ण समाधान की प्रक्रियाओं में वार्ता, वाद–विवाद, सत्सेवा या मध्यस्थता, संराधन, जांच, पंच निर्णय, न्यायिक समाधान इत्यादि आते हैं। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ दमनकारी या प्रतिरोधात्मक प्रक्रियाएं भी अपनाता है। यह प्रकियाएं संयुक्त राष्ट्र

टिप्पणी

संघ की शांति सेना के माध्यम से संचालित कर पाता है। सैनिक और असैनिक अनुशास्तियों का प्रयोग भी शांति स्थापित करने के लिए करता है। सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के लिए एक प्रभावशाली साधन हो सकता है। राष्ट्र संघ की सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा की विफलता के उपरांत वर्तमान में सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था तुलनात्मक रूप से अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र अपनी सुरक्षा के प्रश्न पर अधिक सजग और संवेदनशील रहता है। जब किसी राष्ट्र पर आक्रमण किया जाता है या उसकी संप्रभुता को नष्ट करने का प्रयास किया जाता है तो सभी राष्ट्र संगठित होकर सामूहिक रूप से उसकी सुरक्षा के लिए तत्पर हो जाते हैं। यह व्यवस्था शक्ति संतुलन का भी विकल्प हो सकती है।

इस इकाई में आप संयुक्त राष्ट्र संघ की अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाए रखने की भूमिका को विस्तार से समझ पाएंगे।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- संयुक्त राष्ट्र संघ की राजनीतिक गतिविधियों के अलावा उसके शांति और सुरक्षा संबंधी प्रयासों के बारे में जान पाएंगे।
- शांति स्थापित करने के लिए अपनाए जाने वाले साधनों का ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे।
- संयुक्त राष्ट्र की आपातकालीन सेना और शांति सेना के बारे में जान पाएंगे।
- प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय संघर्षों का अध्ययन कर पाएंगे।

4.2 अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाए रखनाः नए आयाम तथा मूल्यांकन

नाजी अत्याचारों की यादें, मानवीय अधिकारों के खुले उल्लंघन, लाखों निर्दोष व्यक्तियों की मृत्यु तथा द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अप्रत्याशित विनाश संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर के निर्माताओं के मस्तिष्कों में ताजे थे। यद्यपि राष्ट्र संघ एक संस्था के रूप में तथा अपने मुख्य उद्देश्य विश्व शांति बनाए रखने में विफल रहा तथा द्वितीय विश्व युद्ध को रोक नहीं सका, विश्व के राजनीतिक नेताओं को अंतर्राष्ट्रीय संगठन में फिर भी विश्वास था। व्यापक अर्थों में अंतर्राष्ट्रीय संगठन का अर्थ अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को नियंत्रित करने की प्रक्रिया है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ही विश्व के नेताओं ने एक नई अंतर्राष्ट्रीय संस्था स्थापित करने के प्रयास आरम्भ कर दिए थे। वह अपने प्रयासों में सफल हुए तथा उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की। संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर 25 जून, 1945 को सैनफ्रान्सिस्को में स्वीकार किया गया। स्थायी सदस्यों तथा राज्यों के बहुमत द्वारा इसका समर्थन होने पर संयुक्त राष्ट्र चार्टर 24 अक्टूबर, 1945 को लागू हो गया।

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना द्वितीय विश्व युद्ध के विनाश के अनुभवों के संदर्भ में हुई थी। द्वितीय विश्व युद्ध में मानवीय अधिकारों का खुला उल्लंघन हुआ था तथा

लाखों निर्दोष लोगों की जानें गई थीं। अतः चार्टर निर्माताओं के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वह इसकी प्रस्तावना में भावी पीढ़ियों को युद्ध की विभीषिका से बचाने, मौलिक मानवीय अधिकारों में विश्वास की पुनः पुष्टि करने, मानवों की गरिमा एवं उसकी योग्यता, पुरुष एवं महिलाओं तथा बड़े एवं छोटे देशों के समान अधिकारों का उल्लेख करने तथा इस उद्देश्य के लिए एवं अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाए रखने के लिए शक्ति संगठित करने की बात कहते हैं। उन्होंने प्रस्तावना में यह भी स्पष्ट किया कि सशस्त्र बल का प्रयोग केवल सामान्य हित के लिए किया जाएगा। वास्तव में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना का मुख्य उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को स्थापित करना एवं उसे बनाए रखना था।

टिप्पणी

अतः प्रस्तावना में उपर्युक्त बातों का उल्लेख करने के पश्चात यह स्वाभाविक ही था कि संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर का प्रथम उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाए रखना था तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रभावकारी सामूहिक उपाय, शांति के प्रति धमकियों को दूर करना, अतिक्रमण के कृत्यों का दमन करना, शांति–भंग या उसकी धमकियों को दूर करना तथा शांतिपूर्ण ढंगों एवं न्याय तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के सिद्धान्तों के अनुरूप अंतर्राष्ट्रीय विवादों का निस्तारण किया जाना था। संक्षेप मे संयुक्त राष्ट्र संघ का मुख्य उद्देश्य विश्व शांति बनाए रखना था।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान मानवीय अधिकारों का खुले आम उल्लंघन हिरोशिमा एवं नागासाकी पर परमाणु बम गिराया जाना तथा अप्रत्याशित मृत्यु एवं विनाश से लोगों के दिलों में युद्ध के प्रति दहशत हो गई थी। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के निर्माताओं के दिलों में भी युद्ध के विचार से इतनी दहशत थी कि उन्होंने चार्टर के किसी भी सारवान प्रावधान में युद्ध शब्द का प्रयोग नहीं किया है। युद्ध शब्द का प्रयोग केवल चार्टर की प्रस्तावना एवं अनुच्छेद 107 में प्राप्त होता है। चूंकि सभी शत्रु देश संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य हो गए थे, अतः अनुच्छेद 107 का महत्व समाप्त हो गया है। चार्टर के निर्माताओं ने युद्ध शब्द के स्थान पर बल का प्रयोग या उसकी धमकी का प्रयोग किया है।

अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा से संबंधित प्रावधान चार्टर में सर्वत्र विद्यमान हैं। उनका उल्लेख प्रस्तावना, उद्देश्यों, सिद्धांतों तथा चार्टर के अनेक सारवान प्रावधानों में किया गया है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा तुरंत एवं प्रभावशाली कार्यवाही को सुनिश्चित करने के लिए सदस्यों ने अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा की प्राथमिक जिम्मेदारी सुरक्षा परिषद को सौंपी है तथा स्वीकार किया है कि इस जिम्मेदारी को पूरा करते समय सुरक्षा परिषद कार्यवाही करती है। सुरक्षा परिषद के पांच स्थायी सदस्यों– अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, चीन एवं रूस को निषेधाधिकार प्रदान किया गया और यह इस परिकल्पना के आधार पर प्रदान किया गया कि वह उसी प्रकार सहयोग करते रहेंगे जैसा उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान किया था। परंतु यह परिकल्पना गलत तथा अवास्तविक सिद्ध हुई।

संयुक्त राष्ट्र चार्टर के लागू होने के तुरंत बाद पूर्व तथा पश्चिम में संघर्ष आरंभ हो गया। यह संघर्ष मुख्यतः सोवियत संघ तथा अमेरिका एवं ब्रिटेन के मध्य था। यह संघर्ष संयुक्त राष्ट्र के मुख्य उद्देश्य अर्थात् अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को बनाए रखने

टिप्पणी

में बाधक सिद्ध हुआ। निषेधाधिकार के बार–बार प्रयोग ने सुरक्षा परिषद को पंगु बना दिया तथा यह वह भूमिका अदा करने में विफल हो गई जो चार्टर ने इसे प्रदान की थी। सुरक्षा परिषद अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाए रखने की प्राथमिक जिम्मेदारी निभाने में असफल रही। वास्तव में सुरक्षा परिषद संयुक्त राष्ट्र का केवल एक प्रमुख अंग है। इसके असफल होने से पूर्ण संस्था असफल नहीं कही जा सकती तथा न ही पूर्ण संस्था की जिम्मेदारी इससे समाप्त हुई। अतः अमेरिका की पहल पर महासभा ने 3 नवम्बर, 1950 को शांति के लिए संगठित होने का प्रस्ताव पारित किया। इस प्रस्ताव ने अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के क्षेत्र में महासभा को महत्वपूर्ण शक्तियां एवं अधिकार प्रदान किए।

अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के क्षेत्र में महासभा को महत्वपूर्ण अधिकार एवं शक्तियां प्राप्त होने का परिणाम यह हुआ कि अंततः यह शक्तियां संयुक्त राष्ट्र महासचिव को प्राप्त हो गईं क्योंकि वह संस्था का प्रधान प्रशासनिक अधिकारी है तथा महासभा को प्रदत्त अधिकारों एवं शक्तियों का प्रयोग व्यवहार में वही करता है। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के संबंध में अधिकार जो पहले परिषद में था वह अंतरित होकर महासभा में आ गया तथा महासभा से अंतरित होकर महासचिव के पास पहुंच गया। अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के क्षेत्र में 1950 के दशक में विचार एवं व्यवहार दोनों में ही महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। यह परिवर्तन मुख्यतः संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता में अप्रत्याशित वृद्धि शीत युद्ध में एशिया एवं अफ्रीका के नए सदस्यों द्वारा गैर–सरेखण तथा 1953 में डाग हैमरजोल्ड की महासचिव पद पर नियुक्ति आदि कारणों से हुए। इस नई विचारधारा का एक महत्वपूर्ण तत्व निवारक कार्यवाही या निवारक कूटनीति थी जिसने महासचिव की भूमिका में वृद्धि कर दी थी। निवारक कार्यवाही में मुख्यतः दो तरह की कार्यवाही होती है– 1. दिन–प्रतिदिन के आधार पर क्षेत्र की स्थिति में स्थायित्व लाना तथा ऐसी घटनाओं को होने से रोकना जिनका अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो तथा 2. संघर्ष करने वाले दोनों पक्षकारों के मध्य दूरी पाटने हेतु तीसरे पक्षकार के रूप में चुपचाप सहायक होना।

स्वेज नहर संकट में संयुक्त राष्ट्र आपातकालीन सेना की स्थापना से संयुक्त राष्ट्र द्वारा शांति कायम रखने के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। यू.एन.ई.एफ. की स्थापना का उद्देश्य संघर्ष समाप्ति का पर्यवेक्षण करना था। तत्पश्चात् कांगो संकट (1960–61) में सुरक्षा परिषद ने कांगो में संयुक्त राष्ट्र ऑपरेशन की स्थापना की थी। बाद में महासभा ने इसकी परिधि में वृद्धि की परंतु कांगो में संयुक्त राष्ट्र कार्यवाही बड़ी महंगी सिद्ध हुई तथा इससे संयुक्त राष्ट्र आर्थिक संकट में डूब गया क्योंकि फ्रांस एवं सोवियत संघ ने स्वेज एवं कांगो कार्यवाहियों में संयुक्त राष्ट्र द्वारा व्यय किए खर्चों में अपने हिस्से का अनुदान देने से इंकार इस आधार पर कर दिया। महासभा ऐसी कार्यवाहियां करने में सक्षम नहीं है तथा शांति के लिए संगठित करने का प्रस्ताव (1950) संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अंतर्गत अधिकारातीत है। कांगो अनुभव ने यह स्पष्ट कर दिया कि महासचिव पांच स्थायी सदस्यों के सहयोग एवं एकता या पांच महाशक्तियों की एकता की परिकल्पना का स्थान नहीं ले सकता है।

चार्टर के अनुच्छेद 52 में क्षेत्रीय समझौतों की अनुमति अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के उन मामलों को निपटाने के लिए दी गई है जो क्षेत्रीय कार्यवाही के लिए

उपयुक्त है। बशर्ते कि ऐसे समझौते तथा उनके कार्यकलाप संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्य एवं सिद्धांतों के अनुरूप हों। अनुच्छेद 53 के अनुसार सुरक्षा परिषद जहां कहीं उपयुक्त समझे क्षेत्रीय समझौतों को अपने प्राधिकार के अंतर्गत प्रवर्तन कार्यवाही के लिए शक्ति का प्रयोग कर सकती है। इसके अतिरिक्त सुरक्षा परिषद महासभा द्वारा प्राधिकृत किए बिना क्षेत्रीय समझौते के प्रवर्तन की कार्यवाही करने की अधिकारी नहीं है। अनुच्छेद 54 के अंतर्गत यह आवश्यक है कि क्षेत्रीय समझौते द्वारा की गई कार्यवाही की सूचना सुरक्षा परिषद को दी जानी चाहिए। अतः चार्टर के प्रावधानों के अनुसार, क्षेत्रीय समझौते सुरक्षा परिषद के नियंत्रण तथा पर्यवेक्षण में रहने थे। परंतु महाशक्तियों में पारस्परिक विश्वास एवं सहयोग के अभाव के कारण यह समझौते परिषद के नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण में न रह सके। इनका प्रयोग न केवल वैकल्पिक एजेंसियों के रूप में किया गया वरन् विवादों को संयुक्त राष्ट्र के हाथों में न जाने देने के लिए भी किया गया। अतः समझौतों का प्रयोग संयुक्त राष्ट्र विवादों का निस्तारण करने हेतु नहीं कर सका।

टिप्पणी

सुरक्षा परिषद एवं महासभा की उपयुक्त परिसीमाओं के कारण तथा बार–बार निषेधाधिकार के प्रयोग से परिषद पंगु होने के कारण संयुक्त राष्ट्र का अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को बनाए रखने की प्रणाली काफी समय तक दुर्बल रही। परंतु 1990 के वर्तमान दशक में नई आशाएं प्रकट हुई हैं। सोवियत संघ के विघटन, शीत युद्ध की समाप्ति तथा अमेरिका का एक महाशक्ति के रूप में उभरने आदि कारणों से यह आशाएं उत्पन्न हुईं। कदाचित इन्हीं कारणों के फलस्वरूप खाड़ी युद्ध (1991) में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की भूमिका सफल रही। इस अनुभव से उत्साहित होकर परिषद ने अधिक क्रियाशील भूमिका अदा करना प्रारंभ कर दिया। पूर्व यूगोस्लाविया, सोमालिया, लाकरबी, आदि मामलों में सुरक्षा परिषद की भूमिका से यह बात स्पष्ट हो जाती है। इस नई भूमिका के लिए निस्संदेह नई तकनीक, ढंग एवं क्षमताओं की आवश्यकता है। 31 जनवरी, 1992 को हुए सुरक्षा परिषद के सर्वप्रथम शिखर सम्मेलन में महासचिव से कहा गया कि वह अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को सुदृढ़ करने के लिए सुझाव दे। अतः महासचिव बुतरस बुतरस घाली ने शांति के लिए एक एजेंडा नामक एक विशेष रिपोर्ट प्रस्तुत की।

53 पेज के एक संयुक्त राष्ट्र दस्तावेज के रूप में इस रिपोर्ट को 23 जून, 1992 को प्रकाशित किया गया।

महासचिव द्वारा प्रस्तुत विशेष रिपोर्ट : शांति के लिए एक एजेंडा

सुरक्षा परिषद के सर्वप्रथम शिखर सम्मेलन में की प्रार्थना के उत्तर में महासचिव ने एक विशेष रिपोर्ट, शांति के लिए एक एजेंडा प्रस्तुत किया जिसे 23 जून, 1992 को प्रकाशित किया गया। रिपोर्ट के प्रारंभ में महासचिव बुतरस बुतरस घाली ने कहा कि शीत युद्ध के प्रतिकूल दशकों ने संस्था के मूल वचन को पूरा करना असंभव कर दिया था। अतः जनवरी 1992 का शिखर सम्मेलन सबसे ऊंचे स्तर पर एक अप्रत्याशित पुनः प्रतिबद्धता चार्टर के उद्देश्य एवं सिद्धांतों के प्रति प्रकट करता है। पिछले महीनों में बड़े एवं छोटे राष्ट्रों में एक विश्वास विकसित हुआ है कि संयुक्त राष्ट्र के महान उद्देश्यों (अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के लिए सक्षम संयुक्त राष्ट्र द्वारा न्याय एवं मानवीय अधिकारों की प्रोन्नति तथा चार्टर के शब्दों में सामाजिक उन्नति तथा विस्तृत स्वतंत्रता के लिए बेहतर

स्तर) को प्राप्त करने का पुनः अवसर प्राप्त हुआ है। संस्था को बीते काल की तरह कभी पंगु नहीं होना चाहिए। अपनी विशेष रिपोर्ट में महासचिव ने निवारक कूटनीति, शांति–बनाना, शांति कायम रखना तथा उत्तर–संघर्ष शांति निर्माण के लिए संस्तुतियां की।

टिप्पणी

(क) निवारक–कूटनीति : निवारक कूटनीति का संक्षिप्त उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि महासचिव द्वारा दी गई संस्तुतियों पर विचार करने के लिए सुरक्षा परिषद की बैठकें 29 अक्टूबर, 1992 तथा 30 नवम्बर, 1992 को हुईं। 30 नवम्बर, 1992 को सुरक्षा परिषद ने निवारक कूटनीति के रूप में तथ्य–मालूम करने का समर्थन किया। सुरक्षा परिषद ने महासचिव के इस मत का भी समर्थन किया कि कुछ मामलों में तथ्य–मालूम करने के कार्य से विवाद निपटाने में सहायता मिल सकती है। परिषद ने इस बात पर जोर दिया कि ऐसी कार्यवाही विवाद के प्रारम्भिक चरण में विशेषकर प्रभावी हो सकती है। परिषद ने इस बात का स्वागत किया कि महासचिव, अनुच्छेद के अंतर्गत अपनी पूर्ण शक्तियों के प्रयोग के लिए तैयार है। अनुच्छेद 99 के अंतर्गत महासचिव सुरक्षा परिषद का ध्यान ऐसे किसी मामले की ओर आकर्षित कर सकते हैं जो उनके मत में अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के लिए खतरा हो सकता है।

महासभा ने भी शांति के लिए एक एजेंडे पर विचार किया तथा बिना मतदान के एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमें विनिर्दिष्ट संस्तुतियां हैं। महासभा ने तथ्य मालूम करने के मिशनों के लगातार प्रयोग तथा उनमें विशेषज्ञों के प्रयोग का समर्थन किया तथा कहा कि ऐसे मिशनों के लिए सदस्य राज्यों की प्रार्थनाओं पर भी विचार किया जाए।

(ख) शांति बनाना : शांति के लिए एक एजेंडा नामक अपनी रिपोर्ट में महासचिव बुतरस बुतरस घाली ने कहा कि संघर्ष रोकने तथा शांति कायम रखने के कार्यों के मध्य में विरोधी या शत्रुतापूर्ण पक्षकारों का शांतिपूर्ण साधनों या ढंगों को मानने या स्वीकार करने की चेष्टा करने की जिम्मेदारी रहती है। शांति बनाने के संबंध में उन्होंने निम्नलिखित संस्तुतियां दीं–

1. एक नई कोटि की संयुक्त राष्ट्र सेनाएं, शांति प्रवर्तन इकाइयां बनाई जाएं जिन्हें ऐसे मामलों में भेजा जाए जहां शांति कायम रखने का कार्य, संधि–विराम बनाए रखने के कार्य से इकाइयों में शिक्षित वालण्टियर सेनाएं होंगी जो शांति कायम रखने की सेनाओं से अधिक भारी शस्त्रों से सुसज्जित होगी।
2. किसी विवाद की मध्यस्थता, वार्ता या मध्यस्थ प्रयासों में महासभा पूर्ण रूप से भाग ले।
3. मतभेदों के शांतिपूर्ण न्यायनिर्णयन में न्यायालय के अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय पर अधिक भरोसा किया जाए।
4. अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा की गारंटी देने वाले के रूप में सयुंक्त राष्ट्र की विश्वसनीयता बनाए रखने के लिए सदस्य राज्य सुरक्षा परिषद को स्थायी आधार पर सशस्त्र सेनाएं उपलब्ध कराएं।

(ग) शांति कायम रखना : महासचिव बुतरस बुतरस घाली के अनुसार, हाल के वर्षों में शांति कायम रखने की जो प्रकृति विकसित हुई है वह संयुक्त राष्ट्र की खोज है। अपनी रिपोर्ट में उन्होंने कहा कि जैसे–जैसे अंतर्राष्ट्रीय स्थिति में परिवर्तन आए हैं तथा शांति कायम रखने की कार्यवाही उन समझौतों को लागू करने या अनुपालन करने में सहायता के लिए लगाई गई है जिनको शांति कायम रखने वालों ने बातचीत से तय किया है। सैनिक सामग्री तथा सेवाएं प्रदान करने के प्रबंध उपस्कर कार्मिक तथा वित के संबंध में मांगों एवं समस्या का एक नया युग आया है। इन मांगों को पूरा करने हेतु महासचिव ने निम्नलिखित संस्तुतियां दीं–

टिप्पणी

1. पचास मिलियन डालर का एक घूमता हुआ शांति कायम रखने वाला आरक्षित फंड तुरंत स्थापित किया जाए।
2. शांति कायम रखने वाले कार्मिकों की बेहतर ट्रेनिंग तथा विशेषकर उन राष्ट्रीय पुलिस व्यक्तियों की, जो संस्था में सेवा करते हैं।
3. सरकारों द्वारा दी जाने वाली कम उपस्करों से सुसज्जित कमी को दूर करने के लिए पूर्व–स्थित शांति रखने वाले मूल उपस्करों का स्टाफ स्थापित किया जाए या वैकल्पिक रूप से सरकारें कुछ उपस्कर तैयार रखें जिसे आवश्यकता पड़ने पर संयुक्त राष्ट्र तुरंत प्रयोग कर सके।

सुरक्षा परिषद ने महासचिव द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट शांति के लिए एक एजेंडा का पुनर्विचार 9 महीने तक करके इसकी समाप्ति 28 मई, 1993 को की। परिषद ने राज्यों से कहा कि वह अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा में अपनी विदेशी तथा राष्ट्रीय सुरक्षा नीति के रूप में भाग लें तथा उसका समर्थन करें। परिषद ने जोर दिया कि उसके निर्णयों का अनुपालन निष्पक्ष रूप से किया जाए। परिषद ने स्पष्ट किया कि जो उसके निर्णयों का पालन नही करेंगे उनके विरुद्ध कार्यवाही की जाएगी। परिषद ने कहा कि उसे अधिकार है कि सभी आवश्यक साधनों के प्रयोग की अनुमति देने का उसे अधिकार तथा सयुंक्त राष्ट्र सेनाओं को आत्म–रक्षा में कार्यवाही करने का नैसर्गिक अधिकार है।

शांति कायम रखने वाली कार्यवाहियों के तेजी से विकास तथा नई दिशाओं के संदर्भ में परिषद ने महासभा द्वारा उठाए गए आरंभिक कदमों की सराहना की। साहसिक नए कदमों की आवश्यकता पर जोर दिया। महासचिव से परिषद ने कहा कि वह संयुक्त राष्ट्र की इस क्षेत्र में क्षमताओं में वृद्धि के लिए नए प्रस्ताव सितम्बर, 1993 तक प्रस्तुत करे। बढ़ते हुए खर्चे तथा कार्यवाहियों की विषमता को ध्यान में रखते हुए, सुरक्षा परिषद ने महासचिव से कहा कि वह फोर्ड फाउन्डेशन रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए आवश्यक वित्तीय तथा प्रबंध संबंधी सुधार करें। परिषद ने सदस्य राज्यों से कहा कि वह अपने निर्धारित पूर्ण अनुदान समय पर अदा करें। जो राज्य स्वैच्छिक अनुदान कर सकते हैं उन्हें ऐसा करने को भी परिषद ने उत्साहित किया। सुरक्षा परिषद ने संयुक्त राष्ट्र शांति कायम रखने वाली सेनाओं पर आक्रमणों की भर्त्सना की तथा निश्चय प्रकट किया कि सयुंक्त राष्ट्र कार्मिकों की सेवाकाल के दौरान अधिक निर्णयात्मक सुरक्षा के प्रयास किए जाएंगे।

(घ) उत्तर संघर्ष शांति निर्माण : महासचिव बुतरस बुतरस घाली के अनुसार जहां यह एक ओर निवारक कूटनीति संकट बचाने हेतु होती है वहां उत्तर–संघर्ष शांति निर्माण संकट के दुबारा घटने से रोकने हेतु होता है अतः उन्होंने संस्तुति दी कि

पक्षकारों में विश्वास उत्पन्न करने के लिए अनेक उपाय किए जाने चाहिए तथा इन उपायों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं–

1. उनका निशस्त्रीकरण करना, शरणार्थियों को उनके देश लौटाना, मानवीय अधिकारों के सरंक्षण को बढ़ावा देने के प्रयास करना तथा सरकारी संस्थाओं का सुधार या उन्हें सुदृढ़ करना।

टिप्पणी

2. ऐसी योजनाएं प्रारंभ करना जिससे राज्य एक दूसरे के समीप आएं। इन योजनाओं में कृषि, विकास, यातायात में सुधार, द्रव्यों के विभाजन तथा शैक्षिक आदान–प्रदान भी सम्मिलित हैं।
3. लड़ाई के क्षेत्र में बिछी हुई सुरंगों को हटाना जिससे कृषि हो सके, सड़कें बनाई जा सकें तथा अन्य शांति–निर्माण संबंधी कार्यकलाप किए जा सकें तथा
4. संयुक्त राष्ट्र तकनीकी सहायता का विकास करना जिससे कमी या त्रुटि वाले राष्ट्रीय ढांचे को सुधारा जा सके तथा प्रजातांत्रिक संस्थाओं को सुदृढ़ बनाया जा सके।

30 अप्रैल, 1993 को सुरक्षा परिषद ने एक बयान जारी किया जिसमें उत्तर–संघर्ष शांति पर जोर देते हुए कहा कि इसकी मजबूत नींव विश्व के सभी देशों और क्षेत्रों में रखी जानी चाहिए। महासचिव की संस्तुतियों से सहमति प्रकट करते हुए परिषद ने कहा कि अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष के पश्चात शांति निर्माण कार्यों में दो या अधिक देशों को संबद्ध करते हुए सहकारी योजनाएं शामिल हैं। इन योजनाओं में न केवल पारस्परिक लाभकारी योजनाएं सम्मिलित हैं, वरन् इनमें आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास भी सम्मिलित हैं। इससे पारस्परिक समझ एवं विश्वास में वृद्धि होती है। यह शांति के लिए आधारभूत है। परिषद ने यह भी कहा कि संयुक्त राष्ट्र संस्थाएं तथा एजेन्सियों को अपने प्रोग्राम को विकसित या लागू करते समय चार्टर के अनुच्छेद में उल्लिखित अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को सुदृढ़ करने के लक्ष्य के प्रति जागरूक करना चाहिए। यह स्वीकार करते हुए कि उत्तर–संघर्ष शांति निर्माण के लिए उपर्युक्त वित्तीय द्रव्यों की आवश्यकता होती है। परिषद ने जोर दिया कि सदस्य राज्य संयुक्त राष्ट्र निकायों तथा अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की विनिर्दिष्ट योजनाओं के लिए धन उपलब्ध कराने के लिए पूरे प्रयास करने चाहिए। सुरक्षा परिषद ने यह भी स्वीकार किया कि सामाजिक शांति उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी सामरिक या राजनीतिक शांति।

47वें सत्र में 20 सितम्बर, 1993 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने महासचिव द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट शांति के लिए एक एजेंडा पर एक प्रस्ताव पारित किया। महासभा ने प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया कि उत्तर संघर्ष शांति निर्माण चार्टर के अनुरूप किया जाना चाहिए। यह संघर्ष समाप्त करने वाले करारों या सरकारों के मध्य समाप्त होने के बाद किए गए करारों के आधार पर होना चाहिए। महासभा ने क्षेत्रीय संस्थाओं से संयुक्त राष्ट्र के साथ निकट सहयोग तथा समन्वय बढ़ाने को भी कहा।

4.2.1 संयुक्त राष्ट्र में शांति कायम रखने वाली कार्यवाहियां

कुछ प्रमुख संयुक्त राष्ट्र शांति कायम रखने वाली कार्यवाहियां निम्नलिखित हैं–

1. **यू.एन. ट्रांस सुपरविजन आर्गेनाइजेशन (UNTSO)**– इसकी स्थापना पैलेस्टीन में मध्यस्थ तथा ट्रांस कमीशन को पैलेस्टीन में सधि के अनुपालन के

पर्यवेक्षण हेतु 1948 में हुई थी। इसमें 224 सैनिक पर्यवेक्षक हैं जो बेरूत तथा सिनाई में स्थित हैं।

2. **यू.एन. मिलिटेरी आबजरवर ग्रुप इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान (UNMOGIP)–** भारत तथा पाकिस्तान के मध्य जम्मू एवं कश्मीर राज्य में संधि–विराम के पर्यवेक्षण हेतु जनवरी 1949 में स्थापित किया गया था। इसमें 38 सैनिक पर्यवेक्षक हैं।

टिप्पणी

3. **यू.एन. पीस कीपिंग फोर्स इन साइप्रस (UNFICYP)–** इसकी स्थापना मार्च, 1964 में हुई थी। UNFICYP में 1480 सैनिक कार्मिक तथा 38 नागरिक पुलिस हैं। इसे लड़ाई रोकने तथा कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने हेतु स्थापित किया गया था। 1974 के संघर्ष के बाद से यह साइप्रस नेशनल तथा टर्किश साइप्रस सेनाओं के मध्य संधि विराम के पर्यवेक्षण का कार्य कर रही है।

4. **यू.एन. डिसइगेंजमेन्ट आबजरवर फोर्स (UNDOF)**– इसकी स्थापना जून 1974 में इजरायल एवं सीरिया के मध्य संधि विराम का पर्यवेक्षण करने के लिए की गई थी। इसमें 1120 सैनिक तथा UNDOF पर्यवेक्षक भी इसकी सहायता करते हैं।

5. **यू.एन. इन्टरिम फोर्स इन लेबनान (UNIFIL)**– इसकी स्थापना मार्च 1978 में की गई थी। इसमें 5,280 सैनिक तथा 57 सैनिक पर्यवेक्षक तथा 520 असैनिक कर्मचारी हैं। इसकी स्थापना दक्षिणी लेबनान से इजरायली सेनाओं की वापसी की पुष्टि करने तथा अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा पुनः स्थापित करने वाले क्षेत्र में प्रभावी प्राधिकार की वापसी को सुनिश्चित करने के लिए की गई थी।

6. **यू.एन. इराक–कुवैत आबजरवर मिशन (UNIKOM)**– इसकी स्थापना अप्रैल 1991 में 320 सैनिक तथा 188 असैनिक कर्मचारियों द्वारा इराक तथा कुवैत के मध्य 40 किलोमीटर लम्बा खोर अब्दुल्ला जलमार्ग तथा गैर–सैनिक क्षेत्र के पर्यवेक्षक हेतु की गई थी। फरवरी 1993 में सुरक्षा परिषद ने UNIKOM को एक सशस्त्र सेना के रूप में परिणत कर दिया जो छोटे स्तर के उल्लंघन भी रोक सकती है। इस हेतु इसके सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 3,600 कर दी गई।

7. **यू.एन. अंगोला वेरीफिकेशन मिशन (UNAVEM)**– इसकी स्थापना जून 1991 में संधि विराम का पर्यवेक्षण करने हेतु की गई थी। इसमें 75 सैनिक पर्यवेक्षक, 28 पुलिस पर्यवेक्षक तथा 115 असैनिक कर्मचारी हैं। यद्यपि संयुक्त राष्ट्र ने घोषणा की थी कि सितम्बर 1992 के चुनाव स्वतंत्र तथा सही थे, उसके परिणाम को चुनौती दी गई तथा लड़ाई फिर से भड़क उठी। तब से UNAVEM II दोनों पक्षकारों में शांति पुनः स्थापित करने के लिए मदद कर रही है।

8. **यू.एन. आबजरवर मिशन इन एल साल्वाडोर (ONUSAL)**– की स्थापना जुलाई 1991 में एल साल्वाडोर तथा FMLN के मध्य करारों के अनुपालन के सत्यापन हेतु की गई थी। इसमें 380 सैनिक तथा पुलिस कार्मिक तथा 250 असैनिक कर्मचारी हैं। इसमें अतिरिक्त 1994 मार्च के चुनावों में 900 चुनाव पर्यवेक्षक सहायता के लिए नियुक्त किए गए।

टिप्पणी

9. **यू.एन. मिशन फार द रेफ्रेन्डम इन वेस्टर्न सहारा (MINURSO)**– इसकी स्थापना सितम्बर 1991 में संधि विराम का पर्यवेक्षण करने, क्षेत्र में मोरक्को सेनाओं की कमी होने का सत्यापन करने, पश्चिमी सहारा के राजनीतिक कैदी यानी युद्ध कैदियों के आदान–प्रदान की देख–रेख करने, वैध मतदाताओं का पता लगाकर पंजीकरण करने, स्वतंत्र जनमत गणना की व्यवस्था सुनिश्चित करने तथा उसके परिणाम निकालने आदि के लिए की गई थी। MINURSO में 255 सैनिक पर्यवेक्षक 100 सैनिक सहायक कर्मचारी तथा 103 असैनिक कर्मचारी हैं।

10. **यू.एन. प्रोटेक्शन फोर्स (UNPROFOR)**– इसकी स्थापना फरवरी 1992 में की गई थी। इसमें 24,000 सैनिक तथा असैनिक कर्मचारी हैं। इनमें 14,000 क्रोएशिया में 9200 बोसनिया एवं हर्जेगोबिना तथा 750 पूर्व यूगोस्लाव गणतंत्र मेसीडोनिया में है।

11. **यू.एन. ट्रान्जिसनल अथॉर्टी इन कम्बोडिया (UNTAC)–** इसकी स्थापना 28,000 सैनिकों के साथ अप्रैल 1993 में की गई थी। इसे 23–28 मई 1993 के चुनाव प्रबंध एवं संचालन हेतु स्थापित किया गया था। इसकी अवधि की समाप्ति एवं संवैधानिक सभा तथा कम्बोडिया के नए संविधान के अनुमोदन होने पर होगी।

12. **यू.एन. आपरेशन इन मोजाम्बिक (ONUMOZ)**– 4 अक्टूबर, 1992 के रोम करार के अनुपालन हेतु इसकी स्थापना दिसम्बर 1992 में की गई थी। इसमें 7000 से 8000 सैनिक एवं असैनिक कर्मचारी हैं।

13. **यू.एन. आपरेशन इन सोमालिया (UNOSOM)**– इसकी स्थापना अप्रैल 1993 को संयुक्त राष्ट्र कार्मिकों तथा मानवीय प्रदाय की सुरक्षा हेतु किया गया था। इसमें 28,000 सैनिक तथा 2800 असैनिक कर्मचारी है।

14. **यू.एन. आबजरवर मिशन इन युगांडा–रुवांडा (UNOMUR)**– इसकी स्थापना जून 1993 में युगांडा–रुवांडा सीमा का पर्यवेक्षण करने तथा यह सुनिश्चित करने हेतु की गई थी कि रुवांडा में कोई सैनिक सामग्री पहुंचने न पाए। इसमें 81 सैनिक पर्यवेक्षक तथा 24 असैनिक कर्मचारी हैं।

15. **यू.एन. एसिस्टेन्स मिशन टु रुवांडा (UNAMIR)**– 5 अक्टूबर 1993 को सुरक्षा परिषद ने UNAMIR की स्थापना सरकार तथा रुवांडीज पैट्रीआटिक फ्रंट के (RPF) के मध्य शांति करार के अनुपालन की देख–रेख करने के लिए स्थापित की। उक्त करार से 3 वर्षों में गृह युद्ध समाप्त हुआ। इस मिशन की स्थापना के बाद UNAMIR भी इसके अंतर्गत आ गया। इसमें द्वितीय चरण में कुल 2548 सैनिक कर्मचारी होंगे।

16. **यू.एन. आबजरवर मिशन इन जार्जिया (UNOMIG)**– इसकी स्थापना सुरक्षा परिषद ने 24 अगस्त, 1993 को जार्जिया तथा अबकाजिया के काले सागर के क्षेत्र में पृथकतावादी सेनाओं के मध्य संधि विराम करार के अनुपालन के सत्यापन हेतु की गई थी। पूर्व सोवियत संघ क्षेत्र में यह सर्वप्रथम संयुक्त राष्ट्र

शांति कायम रखने वाला मिशन है। इसके अंतर्गत 88 सैनिक पर्यवेक्षक संधि विराम के अनुपालन का सत्यापन करेंगे।

17. **यू.एन. आबजरवर मिशन इन लाइबेरिया (UNOMIL)**– इसकी स्थापना जुलाई 1993 में स्थापित संधि विराम के पर्यवेक्षण फरवरी–मार्च 1994 चुनाव की देख–रेख तथा मानवीय सहायता के समन्वय करने हेतु 22 सितम्बर, 1993 को की गई थी। इसमें 300 सैनिक पर्यवेक्षक मानवीय तथा चुनाव पर्यवेक्षक हैं।

टिप्पणी

18. **लेबनान में संयुक्त राष्ट्र अंतरिम फोर्स (UNIFIL)**– लेबनान में संयुक्त राष्ट्र अंतरिम फोर्स मार्च 1978 में गठित की गई थी। इसकी स्थापना लेबेनान से इजरायली सेनाओं की वापसी कराके अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा की स्थापना करने के उद्देश्य से की गई थी। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने अपने प्रस्ताव संख्या 1701/2006 द्वारा उक्त फोर्स के उद्देश्य को और भी विस्तृत कर दिया। इस प्रस्ताव ने UNIFIL में सेनाओं की संख्या में वृद्धि करके 15000 कर दिया। प्रस्ताव में संघर्ष की समाप्ति के संबंध में इसके कार्य की परिधि को बढ़ा दिया। प्रस्ताव में फोर्स के MANDATE को बढ़ाकर 11 अगस्त, 2007 तक कर दिया।

उपर्युक्त शांति कायम रखने वाले मिशनों के अवलोकन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हाल के वर्षों में इनमें काफी बड़ी तादाद में व्यक्तियों की नियुक्ति की गई। केवल पूर्व यूगोस्लाविया तथा सोमालिया मिशनों में भेजे गए व्यक्तियों की संख्या 54800 है। इनमें बड़े मिशनों के लिए सैनिक सामग्री के प्रदाय आदि की सूचनाओं, उपस्कर तथा वित्त की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए 28 मई, 1993 की मीटिंग में सुरक्षा परिषद ने इस संबंध में महासचिव द्वारा की गई पहल का स्वागत किया है। निःसन्देह इसके लिए साहसिक नए कदमों एवं पहल की आवश्यकता है। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि वाशिंगटन की एक संस्था वर्ल्डवाच ने फोर्ड फाउन्डेशन की सहायता से इस संबंध में अध्ययन किया है तथा सुझाव दिया कि एक घूमता हुआ शांति कायम रखने वाला आरक्षित 400 मिलियन अमेरिकन डालर का फंड स्थापित किया जाए तथा विलम्ब से अपना अनुदान देने वाले राज्यों से ब्याज वसूला जाए। इस संस्था ने यह भी सुझाव दिया है कि केवल एक बार वार्षिक अनुदान के स्थान पर भुगतान चार किश्तों में लिया जाए। इसी प्रकार आरक्षित फंड के लिए अनुदान सदस्य राज्यों से तीन किश्तों में लिया जाए। यह सुझाव काफी अच्छे हैं तथा इन पर गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

संयुक्त राष्ट्र शांति निर्माण करने वाले कमीशन की स्थापना

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की सहमति से एवं उसके साथ कार्य करते हुए संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 20 दिसम्बर, 2005 को एक प्रस्ताव द्वारा संयुक्त राष्ट्र शांति निर्माण करने वाले कमीशन की स्थापना की। यह कमीशन संघर्ष के पश्चात देशों को युद्ध से शांति के मध्य समय का प्रबंध करने में सहायता करेगा। यह कमीशन शांति स्थापित करने तथा संघर्ष पश्चात के मध्य खाली स्थान को भरने में सहायता हेतु संस्थात्मक प्रणाली से संबंध बनाने में सहायक होगी। यह संस्था शांति निर्माण करने की दीर्घकालीन योजना बनाएगी।

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्र शांति निर्माण करने वाले कमीशन के साथ एक संगठनात्मक समिति तथा देश विनिर्दिष्ट समितियां होंगी। संगठनात्मक समिति में 31 सदस्य होंगे। इस समिति के सदस्य निम्नलिखित होंगे–

1. सात सदस्य सुरक्षा परिषद से होंगे जिसमें स्थायी सदस्य सम्मिलित होंगे।
2. सात सदस्य आर्थिक तथा सामाजिक परिषद से होंगे तथा इनके चयन में यह ध्यान रखा जाएगा कि ऐसे सदस्य विशेषकर वे हों जिन्हें संघर्ष पश्चात् प्रत्युद्धार का अनुभव हो।
3. पांच सदस्य उन 10 शीर्ष देशों से होंगे जो सयुंक्त राष्ट्र बजट को वित्तीय अनुदान देते हैं।
4. सात सदस्यों का चयन महासभा से किया जाएगा तथा शेष भौगोलिक असंतुलन के आधार पर किया जाएगा तथा जिन्हें संघर्ष के पश्चात् का अनुभव होगा।

संयुक्त राष्ट्र शांति निर्माण करने वाली कमीशन महासभा सुरक्षा परिषद का अंग है। यह अपने तरह का एक गौण अंग है। इसके कार्य के पुनरीक्षण करने की पूरी जिम्मेदारी महासभा की है। इसकी एक महत्वपूर्ण भूमिका सुरक्षा परिषद को शांति निर्माण कार्यों की योजना में सलाह देने की है तथा यह आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के साथ मिलकर अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को अनुदान देने वाले देशों में रुचि उत्पन्न करती है जिससे संघर्ष के पश्चात् देशों के विकास में कमी न होने पाए।

4.2.2 शांतिपूर्ण समाधान की प्रक्रियाएं

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में अनुच्छेद 33 से 38 तक अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान की प्रक्रियाओं का उल्लेख है। अनुच्छेद 33 में कहा गया है कि यदि किसी विवाद से विश्व–शांति और सुरक्षा को खतरा हो और संबंधित पक्ष अपना विवाद स्वयं निपटाने में असमर्थ रहें तथा सुरक्षा को खतरा हो तो सुरक्षा परिषद विवादी पक्ष से वार्ता मध्यस्थता या संराधन पंच निर्णय न्यायिक समझौतों, प्रादेशिक संस्थाओं या व्यवस्थाओं अथवा अन्य स्वैच्छिक शांतिपूर्ण उपायों द्वारा विवादों को निबटाने के लिए कह सकती है।

विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के लिए अनुच्छेद 3 में जो विभिन्न उपाय सुझाए गए हैं वे इस बात की ओर संकेत करते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय जगत में सभी विवादों की प्रकृति समान नहीं हो सकती और न ही किसी एक उपाय द्वारा सभी विवादों का समाधान संभव है।

विगत वर्षों में संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष प्रस्तुत विवादों के तीन मुख्य रूप रहे हैं–

(क) **तथ्यमूलक विवाद** – इनमें विवादी पक्ष प्रायः एक–दूसरे पर अनुचित कार्यवाही करने का दोषारोपण करते हैं। 1960 में रूस और अमेरिका के आर.बी.–47 विमान को मार गिराना तथ्यमूलक विवाद था।

(ख) **न्याय अथवा कानूनी संबंधी विवाद** – इन विवादों में वैधानिक अधिकारों तथा कर्तव्यों के प्रश्न निहित होते हैं। आइसलैण्ड और ब्रिटेन का विवाद न्याय–संबंधी विवाद का उदाहरण है।

(ग) **नीति संबंधी विवाद** – इस प्रकार के विवाद वे होते हैं जिनमें विवादी पक्षों की नीतियों में टकराहट होती है। बर्लिन की स्थिति संबंधी समस्या एक नीति संबंधी विवाद था जिसमें सोवियत संघ और मित्र–राष्ट्रों की नीतियों में टकराहट थी।

उपर्युक्त तीनों प्रकार के विवादों में नीति संबंधी विवाद प्रायः सबसे जटिल होते हैं और लंबे चलते हैं तथा शीत–युद्ध को सबसे अधिक जीवित रखते हैं। इन विवादों में सैद्धांतिक संघर्ष भी अन्तर्निहित हो सकते हैं। कभी–कभी ऐसे जटिल विवाद भी उपस्थित हो जाते हैं। जिनमें तथ्यमूलक न्याय–विषयक और नीति–संबंधी तीनों प्रकार के प्रश्न उलझे होते हैं। प्लानो एवं रिग्ज ने संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मुख प्रस्तुत होने वाले विवादों को इन पांच भागों में विभक्त किया है–(1) क्षेत्रीय एवं सीमा विवाद (2) शीत युद्ध विवाद (3) स्वाधीनता विवाद (4) घरेलू विवाद (5) हस्तक्षेप संबंधी विवाद

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों और संयुक्त विवादों के शांतिपूर्ण समाधान की दिशा में जो विभिन्न उपाय काम में लाए जाते रहे हैं, उन पर कुछ विस्तार से विचार आवश्यक है।

1. वार्ता

यह कूटनीतिक साधन है। विवादी पक्षों के बीच विवाद के समाधानार्थ वार्ता या तो शीर्षस्थ स्तर पर सीधे राज्याध्यक्षों के बीच होती है अथवा उनके द्वारा नियुक्त या प्रमाणित अभिकर्ताओं द्वारा विवाद के समाधान की दृष्टि से दो पक्षों के बीच होने वाले पत्र–व्यवहार को भी वार्ता का ही अंग माना जाता हे। इस प्रक्रिया का आधार कोई विशेष कानूनी उत्तरदायित्व न होकर व्यावहारिक सुविधा होती है। इससे राज्य सद्भावना से कार्य करते हैं।

भारत और पाकिस्तान के बीच अल्पसंख्यकों की समस्या और नहरी–पानी विवाद को वार्ता द्वारा ही सुलझाया गया था।

वास्तव में वार्ता के उपाय की सफलता दोनों पक्षों द्वारा समस्याओं के समाधान की लागत और ईमानदारी पर निर्भर है। अनेक बार ऐसा होता है कि विवादी पक्ष वार्ता का ढोंग रचकर विश्व–जनमत को अनुचित रूप से अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा करते हैं।

2. वाद–विवाद

सुरक्षा परिषद अथवा महासभा कोई भी सिफारिश करने से पूर्व विवादी पक्षों के प्रतिनिधियों को लिखित अथवा मौखिक रूप से दावे प्रस्तुत करने को आमंत्रित करती है और इस प्रकार उन्हें एक ऐसा मंच प्रदान करती है जहां वे स्वतंत्रतापूर्वक अपनी शिकायतें प्रस्तुत करते हैं तथा द्विपक्षीय कूटनीति के माध्यम से ऐसी स्थिति में पहुंच सकते हैं जहां विवाद के समाधानार्थ कोई समझौता हो सके।

3. सत्सेवा एवं मध्यस्थता

जब विवादयुक्त पक्ष समझौता वार्ता द्वारा अपने मतभेदों को सुलझाना नहीं चाहते या इस कार्य में असफल हो जाते हैं तो तीसरा मित्र–राज्य अपनी सत्सेवा या मध्यस्थता द्वारा मतभेदों को मित्रतापूर्ण तरीके से दूर करने में सहायता कर सकता है। यह स्थिति प्रायः तब आती है जब विवाद में उलझे पक्ष अपने स्वार्थों के कारण उचित और अनुचित का अंतर नहीं देखते। तीसरा राज्य अपने प्रभाव द्वारा सत्सेवा के इस कार्य को

सम्भालता है और दोनों पक्षों के बीच शांतिपूर्ण समझौता करा देता है। सत्सेवा का प्रयोग करने वाले राज्य के विवाद के दोनों पक्षों के साथ मित्रतापूर्ण संबंध होते हैं। वह उनको एकसाथ बैठकर मन्त्रणा अथवा सुझाव देता है। इस मन्त्रणा या सुझाव को कोई पक्ष ठुकरा भी सकता है। ऐसा करना कानून विरोधी अथवा अमैत्रीपूर्ण नहीं माना जाएगा।

टिप्पणी

सत्सेवा और मध्यस्थता के बीच केवल मात्रा का अंतर है। सत्सेवा में तीसरा राज्य दोनों पक्षों को एक–साथ बैठाता है और विवाद को सुलझाने के लिए सुझाव देता है। वह विवाद से संबंधित विषयों में पूछताछ कर सकता है। किंतु इसमें तीसरा राज्य वास्तविक समझौता–वार्ता में भाग नहीं लेता। मध्यस्थता के समय हस्तक्षेपकर्ता राष्ट्र स्वयं वार्ता में भाग नहीं लेता। यह अपनी ओर से सुझाव देता है और सभी विचार–विमर्शों में सक्रिय रूप से भाग लेता है। कभी–कभी विवादपूर्ण पक्ष यह मान लेते हैं कि मध्यस्थ द्वारा जो सुझाव दिया जाएगा वे उसे स्वीकार कर लेंगे किंतु प्रायः ऐसा नहीं होता और मध्यस्थ के प्रस्ताव को मानना या न मानना दोनों पक्षों की इच्छा पर निर्भर होता है।

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं जब तीसरे राज्यों की ओर से दो राज्यों के विवादों को सुलझाने के लिए हस्तक्षेप किया गया। कभी–कभी यह हस्तक्षेप सशस्त्र सेनाओं द्वारा होता है। ऐसी स्थिति से हस्तक्षेप करने वाला राज्य विवाद में एक नया तत्व और जोड़ देता है। दूसरी ओर हस्तक्षेप मित्रतापूर्ण एवं गैर–दबावकारी प्रकृति का होता है। इसके दोनों पक्षों को विवाद–निपटाने के लिए कुछ सुझाव दिए जाते हैं और उनकी स्वीकार करने या न करने की स्वतंत्रता दी जाती है।

अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के अभिसमय में यह कहा गया था कि शस्त्रों से काम लेने से पूर्व एक या दो मित्रतापूर्ण शक्तियों की मध्यस्थता अथवा सत्सेवा का प्रयोग किया जाए। अभिसमय की आगे की धारा में यह कहा गया था कि तीसरी शक्तियां स्वयं पहल करके अपनी सत्सेवा एवं मध्यस्थता का प्रयोग कर सकती हैं।

हेग अभिसमय की धारा 6 के अनुसार ये उपाय केवल परामर्शात्मक होते हैं, बाध्यकारी नहीं होते। यदि एक राज्य ने मध्यस्थता स्वीकार की है तो इसका अर्थ यह कदाापि नहीं होता कि वह आवश्यक समझने पर युद्ध न छेड़ सके।

वह विरोधी दावों में समन्वय स्थापित करता है। कई बार इससे युद्ध की सम्भावनाएं टल जाती हैं तथा तीसरे राज्यों की मध्यस्थता से विवादों का समाधान हो जाता है।

सत्सेवा या मध्यस्थता करने वाला पक्ष एक व्यक्ति या अंतर्राष्ट्रीय निकाय हो सकता है। 1947 से सुरक्षा परिषद ने इण्डोनेशिया के लिए जो संयुक्त राष्ट्र संघ की सत्सेवा समिति नियुक्त की थी उसके कार्य सत्सेवा से अधिक थे। इसी प्रकार 1951 में संघ की महासभा द्वारा कोरिया–संघर्ष के समय नियुक्त समिति भी व्यापक दायित्वों से युक्त थी।

प्लानो एवं रिग्ज के अनुसार, विवाद की समाधान–प्रकियाओं हेतु सुरक्षा–परिषद या महासभा द्वारा जो सिफारिशें की जाती हैं उनमें अधिकारियों के उच्चतर स्तर पर

द्विपक्षीय पुनर्वार्ताएं, सलाह–मशविरा किसी संयुक्त राष्ट्रीय आयोग द्वारा जांच एवं मध्यस्थता किसी संयुक्त राष्ट्र संघीय प्रतिनिधि या मध्यस्थ की नियुक्ति किसी क्षेत्रीय अभिकरण को निर्दिष्ट या सन्दर्भित करना, पंच–निर्णय, न्यायिक निर्णय आदि सम्मिलित हैं। समाधान की शर्तें जनमत–संग्रह करना, पंच–निर्णय, न्यायिक निर्णय आदि सम्मिलित हैं। समाधान सीमा–रेखाओं के पुनर्निर्धारण, विवाद–ग्रस्त क्षेत्र के विभाजन किसी विवादग्रस्त क्षेत्र का संयुक्त राष्ट्रीय प्रशासन के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीयकरण आदि का रूप भी ले सकती है।

टिप्पणी

यद्यपि सत्सेवा और मध्यस्थता के संयुक्त राष्ट्र संघीय प्रयत्नों की सफलता की सम्भावना रहती है तथापि सम्पादन की शर्तें या सुझाव प्रस्तावित करने में यह खतरा भी बना रहता है कि जहां परिषद या महासभा ने एक बार न्यायपूर्ण समाधान का निर्णय किया वहीं संयुक्त राष्ट्र संघ के दृष्टिकोण और व्यवहार की लोचशीलता समाप्त हो जाती है। उदाहरण के लिए कश्मीर–विवाद में सुरक्षा–परिषद ने दृढ़तापूर्वक अपने इस पूर्व–निर्णय को बदलने से बार–बार इनकार कर दिया है कि भारत एवं पाकिस्तान के बीच इस विवाद का समाधान राज्य में जनमत–संग्रह द्वारा किया जाए– 1949 में भारत और पाकिस्तान दोनों ही कश्मीर जनमत–संग्रह के लिए सहमत हो गए थे, लेकिन आगे चलकर भारत ने इस समझौते के क्रियान्वयन से इनकार कर दिया। आलोचक इस तथ्य को भुला देते हैं कि जनमत–संग्रह कराने का प्रश्न स्पष्ट रूप से इस शर्त के साथ जुड़ा हुआ था कि पाकिस्तान कश्मीर से अपनी फौजें हटा लेगा पर पाकिस्तान ने कई वर्षों तक इस शर्त को पूरा नहीं किया और उस बीच कश्मीर का स्वरूप बिल्कुल बदल गया था। 1954 में कश्मीर संविधान सभा ने वैधानिक तौर पर कश्मीर के भारत में विलय का अनुमोदन कर दिया। पश्चिमी महाशक्तियों की कुटिल राजनीति का शिकार बनते हुए सुरक्षा–परिषद ने न केवल आक्रमणकारी पाकिस्तान को भारत के समान दर्जा दिया वरन् सेनाओं को कश्मीर से हटाने संबंधी व्यवस्था के पाकिस्तान द्वारा पालन न किए जाने के तथ्य की भी उपेक्षा कर दी। यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि कश्मीर पर आक्रमण का प्रश्न ही सुरक्षा–परिषद के अधिकार क्षेत्र में आता है। भारत में कश्मीर के विलय का प्रश्न नहीं।

4. संराधन

विवादों के निबटारे का यह एक अन्य साधन है। इसे तीसरे पक्ष द्वारा दो या अधिक राज्यों के विवादों को शांतिपूर्वक हल करने के लिए अपनाया जाता है। यह विवाद के समाधान की ऐसी प्रकिया है जिसमें कार्य कुछ व्यक्तियों के आयोग को सौंप दिया जाता है। यह आयोग दोनों पक्षों का विवरण सुनता है तथा विवाद को तय करने की दृष्टि से तथ्यों के आधार पर अपना प्रतिवेदन देता है। इसमें विवाद के समाधान के लिए कुछ प्रस्ताव होते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि संराधन की प्रक्रिया में तीन बातें शामिल हैं। तथ्यों की जांच, मध्यस्थता एवं विवाद के लिए प्रस्तावों का प्रेषण। इस प्रक्रिया का विकास हेग प्रभिसमय के बाद हुआ।

संराधन पंच–निर्णय से भिन्न है। संराधन के अंतर्गत विभिन्न पक्ष इसके प्रस्तावों को स्वीकार करने या न करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र होते हैं। दूसरी ओर पंच

निर्णय के अंतर्गत संबंधित पक्षों को पंचायत द्वारा निर्धारित निर्णय मानना पड़ता है। संराधन–आयोग के महत्व के संबंध में संदेह नहीं किया जा सकता। राष्ट्र संघ की परिषद ने अनेक अवसरों पर इस प्रणाली का उपयोग किया था। यह जांच के अंतर्राष्ट्रीय आयोग तथा पंच–निर्णय के बीच की प्रक्रिया है।

टिप्पणी

संराधन और मध्यस्थता के बीच भी अंतर है। प्रथम के अंतर्गत दोनों पक्ष अपना विवाद दूसरे व्यक्तियों को इसलिए सौंपते हैं कि वे तथ्यों की निष्पक्ष जांच के बाद उसके समाधान के प्रस्ताव प्रस्तुत करें। यहां पहल विवाद के पक्षों द्वारा की जाती है। मध्यस्थता में पहलकर्ता तीसरा राज्य होता है। वह स्वयं विवाद के पक्षों के बीच वार्ता आरम्भ कर विवाद को हल करना चाहता है।

5. जांच

अनुच्छेद 34 और 36 के अंतर्गत यह व्यवस्था है कि सुरक्षा–परिषद किसी ऐसे विवाद अथवा स्थिति की जांच पड़ताल कर सकती है जो अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष का रूप ले सकता हो अथवा जिससे कोई दूसरा विवाद खड़ा होने की आशंका हो तो सुरक्षा–परिषद इस बात का भी निश्चय करती है कि विवाद अथवा स्थिति जारी रहने पर क्या विश्व की शांति व सुरक्षा को कोई खतरा पैदा हो सकता है। ऐसे विवाद या इस प्रकार की कोई स्थिति पैदा हो जाने पर सुरक्षा–परिषद किसी भी समय उसके लिए उचित कार्यवाही करने या समाधान के उपायों की सिफारिश कर सकती है।

जांच–पड़ताल का उद्देश्य वस्तुतः उन तथ्यों को ज्ञात करना होता है जिनसे विवादी पक्षों के बीच शांति, अज्ञान या मतभेद दूर होकर शांति स्थापित हो सकती है। हेग अभिसमय की धारा 9 के अंतर्गत भी इस प्रकार की व्यवस्था की गई थी कि तथ्य मूलक विवाद की जांच के लिए दोनों पक्षों द्वारा चुने गए व्यक्तियों का एक अंतर्राष्ट्रीय आयोग बनाया जाए।

अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं संराधन एवं जांच–प्रयोग के माध्यम से अनेक समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा करती रही हैं। प्लानो एवं रिग्ज ने लिखा है कि सामान्यतः दोनों कार्य–तथ्यान्वेषण और मध्यस्थता जांच एवं मध्यस्थता आयोग को सौंपे जाते हैं और राष्ट्र संघ की तरह ही संयुक्त राष्ट्र संघ भी अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले महत्वपूर्ण विवादों के लिए जांच एवं मध्यस्थता आयोग नियुक्त करता रहा है। यदि आयोग कोई समझौता कराने में असफल भी रहे तो भी विवादी पक्षों में निरन्तर सम्पर्क रखकर स्थिति अथवा विवादी पक्षों के दृष्टिकोण में आने वाले परिवर्तन पर पैनी नजर रखकर तथा संयुक्त राष्ट्र संघ उपस्थिति के माध्यम से संयमित प्रभाव डालकर उन्होंने बड़ा उपयोगी कार्य किया है।

6. पंच–निर्णय

वार्ता, मध्यस्थता, संराधन, जांच आदि जो उपाय हैं, उन्हें प्रायः निर्णयेतर उपाय कहा जाता है क्योंकि विवादी पक्ष इस बात के लिए बाध्य नहीं होते कि वे इन उपायों द्वारा दिए गए सुझावों अथवा निर्णयों को स्वीकार करें। इन्हें प्रभावशाली बनाने के लिए कुछ अन्य उपाय विकसित किए गए हैं। जिनमें निर्णयों को दोनों पक्षों द्वारा मानना आवश्यक होता है। ये निर्णयात्मक उपाय मुख्यतः दो हैं– पंच–निर्णय तथा न्यायिक निर्णय।

पंच–निर्णय की प्रक्रिया अंतर्राष्ट्रीय कानून के प्रारम्भिक दिनों में ही शुरू हो चुकी थी। 19वीं शताब्दी में पंच–निर्णय की प्रकिया विवादों के न्यायपूर्ण तथा समानतापूर्ण समाधान की सम्मान–जनक साधन सिद्ध हुई। 1872 में ग्रेट–ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच अलाबामा संबंधी विवाद में जेनेवा में पंच–निर्णय किया गया। 1875 में पंच–निर्णय की प्रकिया के लिए कुछ नियम बनाए।

टिप्पणी

प्रो. ओपेनहेम के अनुसार, पंच निर्णय का अर्थ है कि राज्यों के मतभेद का समाधान कानूनी निर्णय द्वारा किया जाए। यह निर्णय दोनों पक्षों द्वारा निर्वाचित एक या अनेक पंचों के न्यायाधिकरण द्वारा होता है। जो अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय से भिन्न होता है। ब्रायली के कथनानुसार–पंच तथा न्यायाधीश कानूनी नियमों के अनुसार निर्णय लेने के लिए बाध्य हैं, वे कानून की अवहेलना करने की स्वेच्छाचारी शक्ति नहीं रखते।

पंच–निर्णय द्वारा न केवल तथ्यों की खोज की जाती है वरन् कानूनी मसलों को भी सुलझाया जाता है।

सामान्य रूप में पंच–निर्णय में दिया गया पंचाट दोनों पक्षों को अनिवार्य रूप से स्वीकार करना पड़ता है। कोई राज्य अपना विवाद पंचों को सौंपने के लिए बाध्य नहीं है। किन्तु यदि एक बार ऐसा कर लिया गया तो उसके निर्णय को मानने के लिए वह बाध्य होगा। यदि निर्णय देते समय पंचों ने धोखे, दबाव, भ्रम या गलतफहमी से कार्य किया है तो संबंधित पक्षों को इसे स्वीकार करना अनिवार्य नहीं होगा। यदि निर्णय अधिकारों का अतिक्रमण करके दिया गया है तो भी यह बाध्यकारी नहीं माना जाएगा।

यदि पंच–निर्णय के फैसले को एक पक्ष स्वीकार करे और दूसरा पक्ष न करे तो उसे स्वीकार कराने के लिए सभी उपाय अपनाए जा सकते हैं। विश्व–जनमत और अंतर्राष्ट्रीय कानून ऐसे पक्ष के विपरीत हो जाते हैं।

7. न्यायिक समाधान

विवादों का न्यायिक समाधान अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के माध्यम से होता है। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के निर्णयों की मान्यता के संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में अनुच्छेद 94 में यह स्पष्ट व्यवस्था दी गई है कि संघ का प्रत्येक सदस्य प्रतिज्ञा करता है कि वह किसी मामले में विवादी होने पर अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के फैसले को मानेगा। यह भी उल्लेख है कि न्यायालय के फैसले के अनुसार प्रदत्त दायित्वों को यदि कोई विवादी पूर्ण न करे तो दूसरा पक्ष सुरक्षा–परिषद में मामला उठा सकता है। सुरक्षा–परिषद उस फैसले पर अमल कराने के लिए उचित सिफारिशें अथवा कोई अन्य कार्यवाही कर सकती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्य तो स्वतः ही अंतर्राष्ट्रीय न्यायलय की संविधि के सदस्य बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे राज्य भी इसके सदस्य बने बिना ही कोई एक पक्ष बन सकते हैं। इसके लिए प्रत्येक मामले में महासभा सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर आवश्यक शर्तें निर्धारित करती है। यद्यपि न्यायालय का आवश्यक और सार्वभौमिक क्षेत्राधिकार नहीं है तथापि इसके निर्णय उन पक्षों पर बाध्यकारी होते हैं, जो इसके न्यायाधिकरण को स्वेच्छा से स्वीकार करते हैं।

8. राष्ट्र संघ तथा संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा विवादों का समाधान

टिप्पणी

राष्ट्र संघ के घोषणा–पत्र में शांतिपूर्ण समाधान की विभिन्न प्रकियाओं का उल्लेख किया गया था ताकि सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था का कानूनी आधार बनाया जा सके। सत्सेवा एवं मध्यस्थता की प्रक्रियाओं को व्यापक बनाया गया ताकि संघ के प्रत्येक सदस्य को यह मित्रतापूर्ण अधिकार दिया जा सके कि वह संघ की सभा या परिषद का ध्यान प्रत्येक उस घटना की ओर आकर्षित कर सके जो शांति के लिए चुनौती है। संघ के घोषणा पत्र की धारा 12 में विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के तीन उपाय बताए गए– पंचों को सौंपना, हेग के स्थायी पंचायती अदालत को सौंपना तथा संघ की परिषद द्वारा इसकी जांच करना।

राष्ट्र संघ में सामूहिक सुरक्षा की भावना के अनुरूप यह प्रावधान रखा गया कि कोई युद्ध अथवा युद्ध के लिए चुनौती, चाहे तुरंत ही संघ के किसी सदस्य को प्रभावित करे या न करे, सम्पूर्ण संघ की रुचि का विषय है और संघ द्वारा राष्ट्रों की शांति की रक्षा के लिए आवश्यक कदम उठाया जाएगा। संघ के सदस्यों पर यह दायित्व डाला गया कि उनके बीच विवाद उत्पन्न होने पर वे उसे पंच निर्णय या परिषद को जांच के लिए सौंपें। परिषद को समझौता कराने की सामान्य शक्ति दी गई। परिषद द्वारा की गई जांच को स्वीकार करने के लिए कोई पक्ष बाध्य नहीं है। धारा 16 में शांतिपूर्ण समाधान का प्रस्ताव स्वीकार न करने वाले के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबंध लगाने की व्यवस्था की गई।

राष्ट्र संघ के अधीन विवादों के शान्तिपूर्ण समाधान के तरीकों के अतिरिक्त परिषद को यह निर्देश भी दिया गया कि वह अंतर्राष्ट्रीय न्याय के स्थायी न्यायालय की स्थापना के लिए योजनाएं बनाएं और संघ के सदस्यों की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करे। अनेक संशोधनों और परिवर्तनों के बाद संबंधित प्रारूप को संघ की महासभा ने 13 दिसम्बर, 1920 को स्वीकार कर लिया।

संयुक्त राष्ट्र संघ का एक मौलिक उद्देश्य राष्ट्र संघ की भांति अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान तथा युद्ध को रोकना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कुछ दायित्व महासभा तथा सुरक्षा परिषद पर डाले गए हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की धारा–14 महासभा को यह सत्ता देती है कि उस स्थिति के शान्तिपूर्ण समायोजन के लिए सुझाव दे जो राष्ट्रों के सामान्य कल्याण अथवा मित्रतापूर्ण संबंधों को आघात पहुंचा सके। सुरक्षा परिषद को दी गई शक्तियां और भी व्यापक हैं। यह महासभा की अपेक्षा अधिक जल्दी कार्यवाही कर सकती है। जब कभी अंतर्राष्ट्रीय शान्ति या सुरक्षा के लिए खतरा हो तो सुरक्षा परिषद पंच–निर्णय को न्यायिक समझौता वार्ता जांच मध्यस्थता संराधन आदि उपायों द्वारा विवाद को सुलझाने का सुझाव दे सकती है। वह अपने निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए संघ के सदस्यों का सहयोग भी मांग सकती है। सुरक्षा–परिषद कोई भी निर्णय ले सकती है, उस पर प्रतिबंध नहीं है। वह संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धांतों के अनुसार कार्य करती है। यदि कोई विवाद शान्तिपूर्ण उपायों से हल न किया जा सके तो यह सैनिक कार्यवाही करने का भी अधिकार रखती है। कोरिया और स्वेज नहर के मामले में यह सफलतापूर्वक इस अधिकार का प्रयोग कर चुकी है। इसके निर्णयों को न मानने वाले राज्यों के विरुद्ध यह आर्थिक प्रतिबंध लगा सकती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के न्याय के एक अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना की गई है। इस न्यायालय में अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

9. मध्यस्थ या प्रतिनिधि

टिप्पणी

कुछ ऐसे विवाद होते हैं जिनके समाधान में सुरक्षा परिषद महासभा अथवा आयोग की अपेक्षा एक अकेला व्यक्ति मध्यस्थ या प्रतिनिधि के रूप में अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। परिषद और महासभा के सभापतियों तथा महासचिव ने अनेक अवसरों पर प्रभावशाली भूमिका निभाई है। किसी तटस्थ स्थान पर अथवा विपक्षी दलों की राजधानियों में या विवाद–स्थल पर संयुक्त राष्ट्रीय मध्यस्थ अथवा प्रतिनिधि ने विवाद के समाधान अथवा मतभेदों को कम करने तथा मिटाने की दिशा में अपनी महती उपयोगिता सिद्ध की है।

1953 में महासचिव–पद पर डैग हैमरस्वजोल्ड की नियुक्ति के बाद नए महासचिव ने अपने पद की शक्तियों की व्यापक व्याख्याएं कीं और सुरक्षा–परिषद तथा महासभा ने भी महसचिव के अधिक गुरुतर दायित्वों को स्वीकार करने की प्रवृत्ति प्रदर्शित की। जब संयुक्त राष्ट्रीय प्रतिनिधि या मध्यस्थ के रूप में महासचिव की भूमिका क्रमशः महत्वपूर्ण बन गई और आज भी यही स्थिति जारी है।

10. अवरोध कूटनीति

विशेष रूप से डैग हैमरस्वजोल्ड द्वारा विकसित अवरोधक कूटनीति की धारणा का महत्व शीत–युद्ध की स्थितियों को मर्यादित और शांत रखने में है। अवरोधक कूटनीति का उपाय शान्तिपूर्ण समाधान का पूरक है जिसका उद्देश्य विवाद में तनाव को कम करना तथा स्थिति को बिगड़ने से बचाना होता है। आज महासभा में निर्गुट राष्ट्र शांति स्थापित करने की दिशा में जो नवीन भूमिका निभा रहे हैं और शीत–युद्ध के क्षेत्र को सीमित करने का जो प्रयत्न कर रहे हैं, वे अवरोध कूटनीति की ही विशेषताएं हैं।

प्लानो एवं रिग्ज ने संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अपनाई जाने वाली अवरोधक कूटनीति के उपायों को मोटे रूप में चार श्रेणियों में विभक्त किया है– (1) निरीक्षक दल जो युद्ध विराम विसैन्यीकृत क्षेत्र तथा अस्थायी युद्ध–विराम रेखाओं या संधि सीमाओं का निरीक्षण करते हैं। (2) युद्धरत पक्षों के मध्य रखी गई संयुक्त राष्ट्रीय सेनाएं (3) आंतरिक संघर्ष का दमन करने और घरेलू–व्यवस्था कायम रखने में प्रयुक्त की जाने वाली संयुक्त राष्ट्रीय सेनाएं तथा (4) साम्प्रदायिक समूहों में सशस्त्र संघर्ष को रोकने या सीमित करने में प्रयुक्त संयुक्त राष्ट्रीय फौजें।

संयुक्त राष्ट्र संघ का मौलिक उद्देश्य विवादों का शांतिपूर्ण समाधान तथा युद्धों को रोकना है। विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ का आधारभूत सिद्धांत यह है कि राष्ट्रों को चाहिए कि वे अपने सभी विवाद, समझौता वार्ता, पंच निर्णय, न्यायिक समझौता जांच, मध्यस्थ संराधन आदि उपायों द्वारा सुलझा लें। यदि फिर भी मतभेद दूर न हों तो विवाद को सुरक्षा परिषद अथवा महासभा के सम्मुख प्रस्तुत किया जा सकता है। सुरक्षा परिषद अथवा महासभा में प्रस्तुत होने के बाद विवाद को परिषद या सभा की कार्यसूची में शामिल कर लिया जाता है और तत्पश्चात विवाद के सभी पहलुओं पर विचार–विमर्श होता है। विवादी पक्ष स्वतंत्रतापूर्वक विचार व्यक्त

टिप्पणी

कर सकते हैं। चार्टर के अनुच्छेद 32 के अनुसार, जब कोई विवाद सुरक्षा परिषद में प्रस्तुत हो तो संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य जो सुरक्षा परिषद का सदस्य नहीं है अथवा वह राज्य जो संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं है, यदि विवादी पक्ष है, तो उसे बहस में भाग लेने के लिए बुलाया जा सकता है परंतु ऐसे सदस्य को मतदान का अधिकार नहीं होता। सुरक्षा परिषद अपनी बहसों में ऐसे राष्ट्र द्वारा भाग लेने के लिए जो संघ का सदस्य न हो, न्यायसम्मत नियम निर्धारित करने का अधिकार रखती है। यदि परिषद निषेधात्मक अथवा आदेश–मूलक कार्यवाही करने जा रही हो तो उस स्थिति में दोनों पक्षों के लिए मतदान का निषेध नहीं है।

विवाद के संबंध में सुरक्षा परिषद अथवा महासभा को अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की भांति निर्णय देने का अधिकार नहीं है। केवल प्रस्ताव पारित कर संबंधित राष्ट्रों से यह सिफारिश की जा सकती है कि वे इन प्रस्तावों के आधार पर बातचीत द्वारा समस्याओं को सुलझा सकते हैं। चार्टर की धारा 14 महासभा को यह अधिकार देती है कि वह स्थिति के शांतिपूर्ण समायोजन के लिए ऐसे सुझाव दे जिनसे राष्ट्रों के सामान्य कल्याणकारी अथवा मित्रतापूर्ण संबंधों को आघात न पहुंचता हो। परिषद और महासभा को मौके की जांच के लिए आयोग नियुक्त करने अथवा महासचिव को भेजने का अधिकार है ताकि विवाद के संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ को वास्तविक जानकारी हासिल हो सके और यदि सशस्त्र संघर्ष छिड़ गया हो तो प्रभावशाली ढंग से अविलंब युद्ध–विराम की स्थिति पैदा की जा सके।

अपने सीमित साधनों और परिस्थितियों के अंतर्गत तथा राष्ट्रों के प्रभुसत्ता–सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के लिए अनेक उल्लेखनीय प्रयास किए हैं। जिनमें से बहुतों में उसको सफलता प्राप्त हुई। कुल मिलाकर अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने में सयुक्त राष्ट्र संघ को उत्साहवर्द्धक सफलता मिली है। संघ के सत्प्रयास अभी तक तृतीय महायुद्ध के विस्फोट को रोकने में बहुत–बहुत सहायक हुए हैं।

प्रतिरोधात्मक अथवा दमनकारी प्रक्रियाएं

चार्टर के अध्याय 7 की व्यवस्था के अनुसार, विश्व–शांति व सुरक्षा के लिए संकट उत्पन होने, शांति भंग होने अथवा विश्व के किसी भी क्षेत्र में सशस्त्र आक्रमण होने की दशा में संयुक्त राष्ट्र संघ शांति एवं व्यवस्था की पुनर्स्थापना के उद्देश्य से यदि आवश्यक समझे तो बल–प्रयोग कर सकता है अथवा प्रतिरोधात्मक उपायों का आश्रय ले सकता है। संघ बल–प्रयोग द्वारा अंतर्राष्ट्रीय विवादों का समाधान दो प्रकार से करने की चेष्टा करता है–प्रथम, जिसमें सशस्त्र सेना के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती एवं द्वितीय जिसमें सशस्त्र सैन्य बल का प्रयोग आवश्यक हो जाता है।

अनुच्छेद 39 के अनुसार, सुरक्षा परिषद ही इस बात का निर्णय करती है कि कौन–सी चेष्टाएं शांति के लिए आवश्यक शांति भंग करने वाली अथवा आक्रमण की चेष्टाएं समझी जा सकती हैं। अनुच्छेद 40 में यह व्यवस्था है कि किसी स्थिति को बिगड़ने से बचाने के लिए सुरक्षा परिषद अपनी सिफारिश करने अथवा किसी कार्यवाही का निश्चय करने से पूर्व विवादी पक्षों से ऐसे अस्थायी कदम उठाने की मांग करेगी जिन्हें वह उचित या आवश्यक समझती हो।

बल–प्रयोग के उपर्युक्त दोनों उपाय (जिसमें सशस्त्र सेना के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती तथा दूसरे, जिसमें इस प्रकार की आवश्यकता होती है) सुरक्षा परिषद के आदेशानुसार संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों को मान्य होते हैं। इसका संचालन भी सुरक्षा परिषद ही करती है। चार्टर के अनुच्छेद 7 के अनुसार विवादी पक्षों पर अनुशास्तियां लगाने की व्यवस्था है तथापि संयुक्त राष्ट्र संघ सामान्यतः दमनकारी या प्रतिरोध के उपायों से बचने की चेष्टा करता है और कूटनीतिक, राजनीतिक तथा वैधानिक उपायों से समस्या को सुलझाने का प्रयास करता है। अनुच्छेद 40 की व्यापक व्याख्या करते हुए सुरक्षा परिषद संघर्षरत पक्षों को युद्ध–विराम के आदेश दे सकती है। जो वास्तव में सिफारिशों के रूप में होते हैं।

टिप्पणी

अनुच्छेद 41 के अंतर्गत यह व्यवस्था है कि सुरक्षा परिषद अपनें निर्णयों पर अमल कराने के लिए कोई भी कार्यवाही निश्चित कर सकती है, जिसमें सशस्त्र सेना का प्रयोग न हो। वह संघ सदस्यों से इस प्रकार की कार्यवाही करने की मांग कर सकती है। इन कार्यवाहियों के अनुसार, आर्थिक संबंध पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से समाप्त किए जा सकते हैं।

अनुच्छेद 42 में उल्लेख है कि यदि अनुच्छेद 41 के अधीन दी गई उपर्युक्त कार्यवाहियां सुरक्षा परिषद की दृष्टि में अपर्याप्त हों या अपर्याप्त सिद्ध हो गई हों तो अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा की रक्षा के लिए या फिर से शांति स्थापित करने के लिए वह जल, थल और वायु सेनाओं द्वारा आवश्यक कार्यवाही कर सकती है। इस कार्यवाही में विरोध प्रदर्शन, नाकेबन्दी तथा संघ के सदस्य राष्ट्रों की जल, थल और वायु सेनाओं द्वारा की जाने वाली कोई भी कार्यवाही सम्मिलित है।

अनुच्छेद 43 के अनुसार, परिषद ही इस बात का निश्चय करती है कि उपर्युक्त कार्यवाही संघ के कुछ सदस्यों द्वारा की जाए अथवा सभी सदस्यों द्वारा की जाएं तथा जो कार्यवाही की जाए वह स्वतंत्र रूप से हो अथवा प्रत्यक्ष हो अथवा अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के माध्यम से हो।

अनुच्छेद 45 में प्रावधान है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य सामूहिक अंतर्राष्ट्रीय कार्यवाही के लिए अपनी–अपनी अंतर्राष्ट्रीय वायु सेना के दल शीघ्रातिशीघ्र उपलब्ध कराएंगे ताकि संघ तुरंत सैनिक कार्यवाही कर सकें। अनुच्छेद 46 के अनुसार, सैनिक स्टाफ समिति की मदद से सशस्त्र सेना को काम में लेने की योजनाएं बनाई जाएंगी अनुच्छेद के अनुसार, परिषद को अधिकार है कि वह अग्रलिखित विषयों पर सैनिक स्टाफ समिति का परामर्श और सहयोग प्राप्त करे–(1) अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा परिषद की आवश्यकताएं (2) परिषद के अधीन सेनाओं का प्रयोग और उनकी कमान (3) शस्त्रों का नियंत्रण तथा (4) संभावित निशस्त्रीकरण सैनिक स्टाफ समिति सुरक्षा परिषद के अधीन रखी गई और वह सशस्त्र फौजों के सामरिक दृष्टिकोण से संचालन के लिए उत्तरदायी है।

चार्टर की इन व्यवस्थाओं से स्पष्ट है कि विश्व–शांति और सुरक्षा बनाए रखने अथवा पुनः स्थापित करने के लिए परिषद को संवैधानिक दृष्टि से शक्तिशाली बनाया गया है तथापि कुछ ऐसी संवैधानिक दुर्बलताएं और जटिलताएं विद्यमान हैं, जिनके कारण परिषद व्यवहार में आशानुकूल सफल निकाय सिद्ध नहीं हुई है। पुनश्चः, चार्टर

में आत्मरक्षा एवं आक्रमण का भेद स्पष्ट शब्दों में उल्लिखित नहीं है। इसी अस्पष्टता का लाभ उठाकर उत्तरी कोरिया पर आक्रमण करने के मामले में केवल 16 राष्ट्रों ने ही संयुक्त राष्ट्र संघ को सैनिक सहायता दी थी।

अनुशस्तियां

टिप्पणी

चार्टर में सैनिक और असैनिक दोनों प्रकार की अनुशस्तियों की व्यवस्था है। यहां कुछ विस्तार से उल्लेख आवश्यक है।

चार्टर में विशेषकर अत्यधिक स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 41 में असैनिक अनुशस्तियों की व्यवस्था है। इस अनुच्छेद के अधीन सुरक्षा परिषद अपने फैसलों पर अमल कराने के लिए ऐसी कार्यवाहियां निश्चित कर सकती है, जिनमें सशस्त्र सेना का प्रयोग न हो। वह संघ के सदस्य–राष्ट्रों से इस प्रकार कार्यवाहियां करने की मांग कर सकती है। जिसके अनुसार– (1) आर्थिक संबंध पूर्णतः या अंशतः समाप्त किए जा सकते हैं, (2) समुद्र वायु, डाक, तार, रेडियो और यातायात के अन्य साधनों पर पूर्णतः या अंशतः प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं तथा (3) कूटनीतिक संबंध–विच्छेद किया जा सकता है। नैतिक निन्दा को यद्यपि पृथक से अनुशस्ति का कोई प्रकार या रूप नहीं बतलाया गया है तथापि यह भी एक दण्ड है जो संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा उन राज्यों को दिया जा सकता है जो उसके निर्णयों या सिफारिशों पर कोई ध्यान न दें।

जहां राष्ट्रीय हितों को गहरी ठोस पहुंचने की संभावना हो वहां संघ की नैतिक निंदा प्रभावी रहती है। इसके विपरीत इससे तनाव का क्षेत्र बढ़ जाता है। अगणित निंदा–प्रस्तावों से भी दक्षिण अफ्रीका के कानों में जूं नहीं रेंगी और वह रंग–भेद तथा जाति–भेद की अमानवीय नीति पर दृढ़तापूर्वक चलते हुए विश्व–जनमत को ठुकरा दिया था।

कूटनीतिक और आर्थिक अनुशस्तियां भी अधिक प्रभावकारी नहीं रही हैं। 1966 तक सुरक्षा–परिषद ने आदेशात्मक अनुशस्तियों की शक्ति का प्रयोग नहीं किया था केवल रोडेशियाई मामले में एक अपवाद को छोड़कर संयुक्त राष्ट्र संघ की सभी असैनिक अनुशस्तियां प्रायः सिफारिशों के रूप में रही हैं। 1949 में महासभा ने अल्बानिया और बुल्गेरिया को शस्त्रास्त्र न भेजने के लिए पोतावरोध लगाया था। इस पोतावरोध का उद्देश्य यूनानी विद्रोहियों की पहुंचने वाली सहायता को रोकना था। पर वह अवरोध पूर्णतः अप्रभावकारी रहा। साम्यवादी देशों ने जो मुख्यतः शस्त्र सहायता देते थे पोतावरोध या अवरोध को मानने से इनकार कर दिया।

4.2.3 संयुक्त राष्ट्र संघीय आपातकालीन सेना

संयुक्त राष्ट्र संघ के इतिहास में संयुक्त राष्ट्रीय आपातकालीन सेना एक नवीन प्रवर्तन थी। 1956 में स्वेज नहर–विवाद के समय इस आपातकालीन सेना के विचार को साकार रूप प्राप्त हुआ। 29 अक्टूबर, 1956 को मिस्र पर इजराइल के भीषण आकस्मिक आक्रमण और तत्पश्चात् तुरंत ही ब्रिटेन और फ्रांस द्वारा इजराइल के पक्ष में सैनिक हस्तक्षेप ने अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के लिए भयानक संकट उपस्थित कर दिया। विवाद में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से महाशक्तियों के उलझे हुए होने से महायुद्ध का खतरा उत्पन्न हो गया।

टिप्पणी

30 अक्टूबर को सुरक्षा–परिषद में सब राष्ट्रों से मिस्र में सेना प्रयोग न करने की प्रार्थना करने वाला प्रस्ताव फ्रांस और ब्रिटेन के वीटो के कारण पारित नहीं हो सका। अमेरिका द्वारा प्रस्तुत इस प्रस्ताव के रद्द हो जाने पर शांति के लिए एकता प्रस्ताव के अंतर्गत महासभा का संकटकालीन अधिवेशन आयोजित किया गया। ब्रिटेन के विरोध के बावजूद 2 नवम्बर, 1956 को महासभा ने अमेरिका का एक प्रस्ताव प्रबल बहुमत से पारित कर दिया। जिसमें स्वेज नहर प्रदेश में ब्रिटिश फ्रेंच और इजराइल सैनिक कार्यवाही पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त की गई तथा अविलंब युद्ध बंद करने और फौजें हटा लेने पर बल दिया गया। तत्पश्चात् 4 नवम्बर को महासभा ने कनाडा का यह प्रस्ताव स्वीकार किया कि महासभा डैग हैमरस्वजोल्ड मिस्र में युद्ध बंद कराने तथा युद्ध विराम की देख–भाल के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की एक आपातकालीन सेना की योजना प्रस्तुत करें।

श्री डैग हैमरस्क्जोल्ड ने जो योजना प्रस्तुत की उस पर 7 नवम्बर, 1956 की महासभा ने अपनी स्वीकृति की मोहर लगा दी। अंतर्राष्ट्रीय आपातकालीन सेना के प्रस्ताव को ब्रिटेन और फ्रांस ने मानने से आनाकानी की थी। 5 नवम्बर को सोवियत संघ ने आक्रमणकारियों को स्पष्ट शब्दों में यह चेतावनी दे दी थी कि यदि एक निश्चित समय तक मिस्र पर युद्ध बन्द नहीं किया गया तो सोवियत संघ नवीनतम शस्त्रों के साथ इस संकट में हस्तक्षेप करेगा। अमेरिका ने भी मिस्र में फ्रांस व ब्रिटेन की सैनिक कार्यवाही का समर्थन नहीं किया और खुले तौर पर उनके कार्य को गलत बताया। इन परिस्थितियों से ब्रिटेन और फ्रांस अपनी सैनिक कार्यवाही को रोकने के लिए बाध्य हो गए तथा 5 नवम्बर को महासचिव ने संघ को यह सूचित किया कि 6–7 नवम्बर को मध्य–रात्रि में एंग्लो–फ्रेंच युद्ध बंद कर देंगे। इसके तुरंत बाद 7 नवम्बर को महासभा में एशिया–अफ्रीका के देशों का एक प्रस्ताव पारित हो गया कि आक्रमणकारी फौजें मिस्र की भूमि से हट जाएं तथा स्वेज नहर के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय पुलिस की व्यवस्था की जाए। मिस्र ने इस आश्वासन पर कि संयुक्त राष्ट्र संघीय सेना के रहने पर उसकी प्रभुसत्ता को कोई आंच नहीं आएगी। फलतः इस प्रस्ताव के अनुरूप अंतर्राष्ट्रीय आपातकालीन सेना के निर्माण के लिए ब्राजील, कनाडा, श्रीलंका, कोलम्बिया, भारत, नार्वे और पाकिस्तान–इन देशों की एक समिति बनाई गई। इस सम्पूर्ण कार्यवाही के बाद 15 नवम्बर को आपातकालीन सेना का पहला दस्ता मिस्र पहुंचा।

1956 में सिंचाई मरुस्थल में इजराइल और संयुक्त अरब गणराज्य के बीच एक सैनिक क्षेत्र की स्थापना की गई थी और इस क्षेत्र में शांति बनाए रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघीय आपातकालीन सेना नियुक्त की गई थी, जिसने भारत के जनरल इन्द्रजीत रिखी के नेतृत्व में शांति–स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। 5 जून, 1967 को अरब–राष्ट्रों तथा इजराइल के बीच फिर से घमासान युद्ध छिड़ गया जिसमें इजराइल ने अरबों को बुरी तरह पराजित किया। अन्त में 8–9 जून को युद्ध–विराम हो गया। 10 जुलाई को स्वेज के किनारे संयुक्त राष्ट्र संघीय प्रेक्षक रखने पर संयुक्त अरब गणराज्य सहमत हो गया और 16 जुलाई से स्वेज नहर क्षेत्र में संघ पर्यवेक्षकों की देख–रेख में युद्ध–विराम लागू हो गया।

नवम्बर 1956 में संयुक्त राष्ट्र संघीय आपातकालीन सेना की स्थापना के लिए तत्कालीन महासचिव हैमरस्वजोल्ड ने जो योजना प्रस्तुत की उसमें इस सेना के संगठन

और कार्यों को अनुशासित करने की दृष्टि से आधारभूत सिद्धांत निरूपित किए गए थे। इन सिद्धांतों में प्रमुख इस प्रकार थे–

1. आपातकालीन सेना में हिस्सा बंटाने से महाशक्तियों को दूर रखा जाए।
2. सेना का राजनीतिक नियंत्रण महासचिव के हाथों में रहे जिसे एक सैनिक परामर्शदात्री समिति द्वारा आवश्यक सहायता मिलती रहे। इस समिति में मुख्यतः उन्हीं राज्यों के प्रतिनिधि हों जो आपातकालीन सेना में हिस्सा लें।
3. आपातकालीन सेना स्वयं को असैनिक अथवा अबौद्धिक कार्यों तक ही सीमित रखे।
4. सेना की राजनीतिक तटस्थता कायम रखी जाए और उसके कार्यों को भली प्रकार परिभाषित किया जाए ताकि युद्ध छिड़ने से पहले के राजनीतिक संतुलन की पुनःस्थापना करना सुगम हो।
5. सेना के संगठन और कार्य के निर्धारण करने का अधिकार संघ को हो तथापि अपने क्षेत्र में आपातकालीन सेना रखने के बारे में ग्रहणकर्ता देश की सहमति अनिवार्य हो।
6. वेतन और साज–सज्जा के व्यय का भार सेना में भाग लेने वाले देश वहन करें तथा सेना के अन्य सब खर्चे संयुक्त राष्ट्र संघ के सामान्य बजट से बाहर सभी सदस्य–राज्यों पर विशेष चंदे द्वारा जुटाए जाएं।

टिप्पणी

1958 में श्री हैमरस्क्जोल्ड ने आपातकालीन सेना पर जो रिपोर्ट प्रस्तुत की उसमें संयुक्त राष्ट्र संघीय शांति–रक्षक सेनाओं के सम्भावित कार्यों के बारे में कुछ और भी निष्कर्ष निकाले गए यथा–

1. शांति सेना को अपने पैतृक निकाय के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी रहना चाहिए किन्तु प्रशासकीय दृष्टि से उसे महासचिव के निर्देशों के अधीन संयुक्त राष्ट्र संघीय सचिवालय के साथ एकीकृत होना चाहिए।
2. परामर्शदात्री समिति को चाहिए कि वह महासचिव को उसके उत्तरदायित्वों के प्रयोग में केवल परामर्श दे। वह महासचिव को नियंत्रित करने का प्रयत्न न करे।
3. शांति सेना के लिए आवश्यक है कि वह आंतरिक संघर्षों में कोई पक्ष न बने। किसी विशिष्ट राजनीतिक समाधान को लागू करने के लिए अथवा ऐसे समाधान में निर्णायक राजनीतिक संतुलन को प्रभावित करने के लिए शान्ति सेनाओं का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।
4. यद्यपि शांति सेना को सशस्त्र संघर्ष में नहीं उलझना चाहिए तथापि उसे आत्म–रक्षा का अधिकार होना चाहिए। गोली–वर्षा में शान्ति सेना को पहल नहीं करनी चाहिए वरन् आत्म–रक्षा के लिए ही जवाब में गोली–वर्षा करनी चाहिए।
5. यदि सैनिक टुकड़ियां राष्ट्रीय सेवा में रहें तो सेना प्रदान करने वाले राज्यों को व्यय वहन करना चाहिए। अन्य समस्त व्यय संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्य–राज्यों द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघीय चंदे से सामान्य अनुपात में वहन करना चाहिए।

महासभा यह नहीं चाहती थी कि वह कोई भी ऐसा कार्य कर बैठे जिसमें भविष्य में शान्ति–रक्षक सेनाओं की भर्ती के बारे में संयुक्त राष्ट्र संघ वचनबद्ध हो जाए। व्यय

संबंधी समस्या को छोड़कर अधिकांश मामलों में यह सिद्धांत निश्चित रूप से वह आधार प्रदान करते हैं। जिन पर भावी संयुक्त राष्ट्र संघीय सेना की नियुक्ति की जा सकेगी।

संयुक्त राष्ट्रीय शांति सेना

शांतिरक्षक सेनाओं की अब तक की नियुक्ति चार्टर की इस धारणा को बल प्रदान करती है। यह भी अनेक बार स्पष्ट हो गया है कि संयुक्त राष्ट्र संघ किसी भी बड़े या छोटे देश के विरुद्ध सैनिक अनुशस्तियों को लागू करने की दृष्टि से अभी तक अक्षम है। अब तक का इतिहास इसी तथ्य की पुष्टि करता है कि जब कभी किसी विवाद के समाधान अथवा किसी क्षेत्र में शान्ति एवं सुरक्षा की स्थापना या पुनर्स्थापना में रूस और अमेरिका की सामान्य रूचि रही है, तभी अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा के मामलों में संयुक्त–राष्ट्र संघ रचनात्मक भूमिका निभा पाया है अन्यथा नहीं। वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय जगत की प्रवृत्ति बहुकेन्द्रीयवाद की और है। पश्चिमी यूरोप भारत और साम्यवादी चीन शक्ति के नए शक्तिशाली केंद्रों के रूप में अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर छाते जा रहे हैं। यदि नए शक्ति–केंद्र संयुक्त–राष्ट्र संघ को फ्रांस, रूस, इंग्लैण्ड और अमेरिका के वर्तमान प्रभाव से मुक्त करके अधिक शक्तिशाली बनाने में सहयोगी हों तो यह आशा जा सकती है कि संयुक्त राष्ट्र संघ महाशक्तियों की इच्छा के विरुद्ध भी एक प्रभावशाली प्रतिक्रिया का काम कर सकेगा।

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्रीय शान्ति सेनाओं के मार्ग में अभी तक विभिन्न कठिनाइयां रही हैं और भविष्य में भी इन्हें विविध समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। ये कठिनाइयां अथवा समस्याएं निम्नलिखित हैं–

1. शांति सेनाओं के लिए वित्तीय प्रबंध की कठिन समस्या है। 1964 में कांगो में संयुक्त राष्ट्रीय राष्ट्रीय सेना को इसीलिए हटाकर विघटित करना पड़ा था कि उसके वित्तीय स्रोत समाप्त हो गए थे। महाशक्तियां और समर्थ राष्ट्र भी अंतर्राष्ट्रीय सेवाओं के व्यय भार को उठाने में खुले दिल से आगे नहीं आते। शस्त्र और सैन्य–बल पर अरबों डॉलर प्रतिवर्ष व्यय किया जाता है।
2. यह वित्तीय संकट वस्तुतः इस राजनीतिक समस्या की उपज है कि संयुक्त राष्ट्रीय शांतिरक्षक कार्यवाहियों का नियंत्रण कौन करें। फ्रांस और सोवियत संघ का यह विचार रहा है कि अंतर्राष्ट्रीय सेनाओं का पूर्ण नियंत्रण सुरक्षा–परिषद के हाथ में रहना चाहिए, जिसमें पांचों स्थायी सदस्यों को निषेधाधिकार प्राप्त है। साथ ही इस सुझाव में यह इच्छा भी निहित है कि स्थायी सदस्यों की सहमति के बिना संयुक्त राष्ट्रीय सेनाओं का प्रयोग न हो।
3. अंतर्राष्ट्रीय सेना का प्रयोग राष्ट्रीय सम्प्रभुता के सिद्धांत से भी टकराता है मिस्र ने इसी आधार पर अपने क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्रीय शान्ति सेना के प्रवेश पर प्रारंभ में आपत्ति की थी। इस प्रकार कांगो सरकार की अनुमति से ही कांगो में शांति सेना गई थी।
4. यदि किसी विवाद के समाधान में महाशक्तियों का हस्तक्षेप होता रहता तो संयुक्त राष्ट्रीय शांति सेना की सफलता बड़ी हद तक संदिग्ध हो जाती है। विश्व संस्था की राजनीतिक सैनिक क्षेत्र में सफलता पूर्णतः इस बात पर निर्भर है कि महाशक्तियां उसे कहां तक सहयोग देती हैं।

5. संयुक्त राष्ट्रीय शांति सेना को विघटन का खतरा हर समय बना रहता है क्योंकि सदस्य–राज्य अपना यह अधिकार सुरक्षित रखते हैं कि यदि वे संयुक्त राष्ट्रीय कार्यवाही से असहमत होंगे तो शांति सेना में भेजे गए सैनिकों को वापस बुला लेंगे।

टिप्पणी

पर इन कठिनाइयों के बावजूद संयुक्त राष्ट्रीय शांति सेनाओं का भविष्य अधंकारमय नहीं है। 1963 में नार्वे, डेनमार्क और स्वीडन के स्केण्डिनेवियन देशों ने अपने इस निर्णय की घोषणा की थी कि वे संयुक्त राष्ट्र संघ के अयौद्धिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्थायी आधार पर तीन हजार व्यक्तियों की सेना उपलब्ध करा सकते है।

विषम परिस्थितियों, वित्त के अभाव, सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों की निषेधाधिकार की शक्ति व असहयोग की प्रवृत्ति के बावजूद शांति सेनाओं ने मिसाल कायम की है। राजनीतिक अस्थिरता और गृहयुद्धों की स्थिति को सफलतापूर्वक शांतिपूर्ण वातावरण में परिवर्तित किया है। अतः कहा जा सकता है कि शांति सेनाएं शांति रखने के लिए आवश्यक हैं।

कांगो में संयुक्त राष्ट्रीय सेना

संयुक्त राष्ट्रीय आपातकालीन सेना की बहुत कुछ स्पष्ट छाप कांगो संयुक्त राष्ट्रीय कार्यवाही में देखी जा सकती है। जिसे सामान्यतया फ्रांसीसी प्रयोग ONUC के नाम से जाना जाता है। प्लानो एवं रिग्ज के अनुसार, ONUC और UNICEF निम्नांकित बातों में बहुत समानताएं थीं।

1. सेना में महाशक्तियों की सैनिक टुकड़ियां सम्मिलित नहीं की गई थीं।
2. सेना का राजनीतिक नियंत्रण महासचिव के हाथों में था जिसकी सहायता के लिए एक परामशदात्री समिति थी और महासचिव का दायित्व सुरक्षा–परिषद तथा महासभा की अनुमति अथवा आदेश तक सीमित था।
3. सेना में योगदान देने वाले राज्यों का चुनाव कांगो की सरकार के परामर्श से किया गया था।
4. सेना ने कांगो सरकार की सहमति से कांगो में प्रवेश किया, यद्यपि अनेक अवसरों पर यह निश्चित करना कठिन हो गया कि संयुक्त राष्ट्रीय कार्यवाहियों पर सहमति लेने के लिए कौन–सी सरकार आधिकारिक थी।
5. सेना का व्यय–भार वहन करने के संबंध में बहुत कुछ UNICEF का ही तरीका अपनाया गया।
6. ONUC ने भी UNICEF की भांति ही एक अयौद्धिक सेना की भूमिका निभाने की ही कोशिश की, इस लक्ष्य पर टिके रहना असंभव हो गया।

यद्यपि बाहरी शक्तियों के संदर्भ में ONUC में आश्चर्यजनक रूप से राजनीतिक तटस्थता कायम रखी गई। ऐसा कठिन अवसर भी उपस्थित हुआ जब उसे राष्ट्रपति कासाबुबु, कर्नल मोबुतु तथा प्रधानमंत्री लुमुम्बा के आन्तरिक संघर्ष में कासाबुबु और मोबुतु का पक्ष लेना पड़ा। वास्तव में कांगो में घरेलू स्थिति इतनी विषम हो गई थी कि ONUC के लिए ऐसा कोई भी कार्य करना कठिन हो गया जो निष्पक्ष प्रतीत हो। कांगो में संयुक्त राष्ट्रीय अधिकारियों को यह आदेश था कि वे घरेलू संघर्षों से पूर्णतः तटस्थ रहें लेकिन स्थिति की जटिलता के संदर्भ में यह असंभव था।

टिप्पणी

6 जुलाई, 1960 को लियोपोल्डविले में अचानक ही सैनिक विद्रोह हो गया और 9 जुलाई को बेल्जियम ने कांगो में अपने देशवासियों की सुरक्षा के बहाने सेना भेज दी। प्रधानमंत्री लुमुम्बा ने बेल्जियम पर आक्रमण करने तथा कटंगा को पृथक राज्य बनाने के लिए भड़काने का आरोप लगाते हुए 12 जुलाई को संयुक्त राष्ट्र संघ से सैनिक सहायता की प्रार्थना की। कांगो में सैनिक शक्ति के प्रयोग के साथ ही संयुक्त राष्ट्र संघ ने कांगो सरकार को अविलम्ब प्राविधिक सहायता और सरकारी कांगो सेना को फौजी प्रशिक्षण देना भी शुरू किया ताकि सरकार विद्रोही तत्वों का सफलतापूर्वक दमन कर सके।

1. जिस प्रकार जनरल बर्नस और उनके (ONUC) स्टाफ की शांति सेना की कमान सम्भालने के लिए फिलिस्तीन से बुलवाया गया था।
2. UNICEF के समान ही कांगो में भी संयुक्त राष्ट्रीय सेना को भेजने में तेजी से कार्यवाही हुई। 14 जुलाई को सुरक्षा परिषद द्वारा कांगो में सैनिक भेजे जाने का प्रस्ताव स्वीकृत होने के बाद 48 घंटों से कम समय में संयुक्त राष्ट्रीय सेनाएं कांगो पहुंचने लगीं।
3. सैनिक और सामग्री ले जाने के संबंध में वायु–यातायात संबंधी सुविधाओं की दृष्टि से पुनः कठिनाई उपस्थित हुई।

यद्यपि UNICEF और ONUC में महत्वपूर्ण समानताएं थीं तथापि प्रत्येक अपने आप में कुछ विशेषताएं लिए हुए थीं। यह स्वीकार करना होगा कि कांगो में संयुक्त राष्ट्रीय कार्यवाही अनेक दृष्टियों से विशेष दुष्कर सिद्ध हुई।

1. UNICEF की तुलना में ONUC बड़ी थी। इसमें संयुक्त राष्ट्रीय लोगों की अधिकतम संख्या 20 हजार के लगभग थी और लगभग सम्पूर्ण कार्यवाही के दौरान 29 देशों का सैनिक योगदान रहा।
2. कांगो में संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने जो परिस्थितियां आईं वे UNICEF के सामने उपस्थित परिस्थितियों से कहीं अधिक जटिल थीं।
3. UNICEF की तुलना में ONUC पर यह कठिन दायित्व भी था कि वह कांगो में गृह–युद्ध रोकने के लिए सभी सम्भव उपाय अपनाए।
4. बेल्जियम के सैनिक हस्तक्षेप ने, सोवियत हस्तक्षेप की धमकी ने तथा कुछ अफ्रीकी राज्यों द्वारा राजनीतिक हस्तक्षेप के अनवरत प्रयत्न ने कांगो संकट को पूर्णतः अंतर्राष्ट्रीय बना दिया था।
5. कांगो में संयुक्त राष्ट्रीय कार्यवाही से किसी भी रूप में असहमत होने पर सरकारें अल्पकालीन सूचना देकर ONUC से अपने सैनिक वापस बुला सकती थीं।
6. कांगो में ONUC ने अपने उत्तरदादित्वों का भली प्रकार निर्वाह किया। कांगो में शांति स्थापित कर दी गई और संयुक्त राष्ट्र संघ का शांति स्थापना का प्रधान कार्य कांगो के एकीकरण के साथ समाप्त हो गया।1964 के मध्य में यह कांगो से हट गई।

यद्यपि कांगो में संयुक्त राष्ट्रीय कार्य का सैनिक पक्ष समाप्त हो चुका है तथापि वहां के शासन को पूर्ण स्थिरता प्रदान कर वहां शैक्षणिक, आर्थिक, प्रशासनिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक क्षेत्रों की उन्नति का नागरिक सहायता कार्य आज भी चल रहा है। अब ONUC कार्यक्रम समाप्त प्रायः है।

टिप्पणी

4.2.4 अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखना

अंतर्राष्ट्रीय शक्ति को मर्यादित करने का सम्भवतः सर्वाधिक प्रभावशाली साधन सामूहिक सुरक्षा है जिसमें विभिन्न राष्ट्र सामूहिक रूप से संगठित होकर संभावित आक्रमणकारी का विरोध करने के लिए तत्पर होते हैं। शक्ति संतुलन की व्यवस्था में जो संधियां की जाती हैं, उनका लक्ष्य एक देश या कुछ देशों के गुट का विरोध करना, उन पर आक्रमण करना या उनके आक्रमण से अपनी रक्षा करना होता है किंतु सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था में विरोध अस्पष्ट एवं संभावित होता है। इस प्रकार की संधि के अनुसार किसी भी एक इकाई पर आने वाला संकट या आक्रमण संधिबद्ध सभी इकाइयों के विरुद्ध आक्रमण समझा जाता है और सामूहिक रूप से ही उसका विरोध किया जाता है। इस व्यवस्था को शांतिपूर्ण एवं शांतिवर्द्धक माना जाता है।

सामूहिक सुरक्षा का अर्थ : सामूहिक सुरक्षा, जैसा कि शब्दों से ही प्रकट होता है, देश द्वारा सुरक्षा के लिए किए गए सामूहिक प्रयत्नों से संबंधित होता है। प्रत्येक राष्ट्र अपने सुरक्षा–प्रयत्नों के प्रति सजग रहता है किन्तु यदि उस पर संकट आता है अथवा आक्रमण किया जाता है तो सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था में सम्मिलित सभी राष्ट्र उसकी सुरक्षा के लिए सामूहिक रूप से संगठित हो जाते हैं।

सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था को जॉन बर्गर ने अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के विरुद्ध आक्रमण रोकने अथवा उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया करने के लिए किए गए संयुक्त कार्यों का यंत्र बताया है। सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था का ध्येय इस प्रकार की चुनौतियों का सक्षम मुकाबला सामूहिक रूप से करना है। मॉर्गेन्थो के अनुसार, सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था में सुरक्षा की समस्या किसी अकेले राष्ट्र की समस्या नहीं होती वरन् उन सभी राष्ट्रों की समस्या होती है जो इस व्यवस्था के अंतर्गत आपस में प्रतिबद्ध होते हैं। 'एक सबके लिए और सब एक के लिए' सामूहिक सुरक्षा का नारा है। कुछ अंशों में यह व्यवस्था शक्ति संतुलन का विस्तृत रूप कही जा सकती है लेकिन दोनों में निश्चित रूप से आधारभूत अंतर है।

युद्ध को रोकने तथा अंतर्राष्ट्रीय शांति की अभिवृद्धि करने के प्रभावी साधन के रूप में सामूहिक सुरक्षा का विचार कुछ आधारभूत मान्यताओं पर आश्रित है–

प्रथम, सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था पर्याप्त शक्ति संपन्न हो ताकि वह आक्रमणकारी राज्य का मुकाबला कर सके। यह व्यवस्था प्रत्येक अवसर पर शक्ति संचय करने की इतनी जबरदस्त स्थिति में हो कि आक्रामक राष्ट्र आक्रमण करने का दुस्साहस न कर सके।

द्वितीय, सामूहिक रूप से आक्रमण का मुकाबला करने को सहमत राष्ट्रों की सुरक्षा संबंधी मान्यताओं और नीतियों में यथासम्भव समानता हो।

तृतीय, ऐसे सभी राष्ट्र अपने परस्पर विरोधी राजनीतिक हितों को सामूहिक सुरक्षात्मक कार्यवाही के हित को त्यागने को तत्पर रहें।

चतुर्थ, सभी संबंधित राष्ट्र यथास्थिति स्थापित रखना अपने राष्ट्रीय हित में समझें।

सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था इस धारणा पर आधारित है कि शक्तियुक्त एकता का विरोध करने से पूर्व आक्रमणकारी राज्य अच्छी तरह सोचेंगे। इस व्यवस्था में प्रत्येक

देश को अपनी सम्प्रभुता को कुछ मर्यादित करना पड़ता है। व्यक्तिगत राष्ट्रीय संकल्प को सामूहिक निर्णय के लिए सम्पूर्ण कर दिया जाता है। सफल सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था में सैन्य एवं शस्त्र–बल पर अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण रखना आवश्यक होता है। इस व्यवस्था का लक्ष्य केवल सामान्य शत्रु अथवा आक्रमण की चुनौती का सामना करना ही नहीं होता बल्कि यह इकाइयों के विकास को प्रतिरोधक के रूप में भी प्रभावित करती है।

टिप्पणी

सामूहिक सुरक्षा के विचार का विकास : सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था को अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में लोकप्रिय बनाने का श्रेय भूतपूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति वुड्रो विल्सन को दिया जाता है तथापि इस विचार का प्रारंभ 17 वीं शताब्दी की ओस्नेबुक की संधि से माना जाता है। इस संधि की 17वीं धारा में किसी भी संभावित शत्रु के विरुद्ध सामूहिक कार्यवाही की बात कही गई थी। 19 वीं शताब्दी में विलियम पेन तथा विलियम पिट ने यूरोप में शान्ति और सुव्यवस्था कायम रखने के लिए सामूहिक सुरक्षा जैसी व्यवस्था का विचार प्रचारित किया। विलियम पिट ने यूरोपीय महाशक्तियों को सुझाव दिया कि वे भविष्य में शान्ति एवं व्यवस्था को समाप्त करने वाले किसी भी आक्रमण का सामूहिक रूप से विरोध करने के लिए एक प्रभावी योजना बनाएं।

सामूहिक सुरक्षा पद्धति का वास्तविक रूप 20वीं शताब्दी में प्रकट हुआ। 1910 में तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति थियोडोर रूजवेल्ट ने कहा कि शांतिप्रिय महाशक्तियां एक शान्ति संघ का निर्माण करें ताकि न केवल उनके बीच शांति स्थापित रहे वरन् किसी दूसरे राष्ट्र द्वारा भी यदि शान्ति भंग की कार्यवाही हो तो समुचित शक्ति द्वारा उसे रोका जा सके। 1910 में ही एक अन्य विचारक वान बुलेनहोवन ने भी इसी प्रकार की एक अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का सुझाव दिया था जिसका अमेरिकी कांग्रेस द्वारा समर्थन किया गया था।

सामूहिक सूरक्षा–व्यवस्था के अभियान को विशेष लोकप्रिय बनाने में प्रथम महायुद्ध काल में राष्ट्रपति विल्सन की भूमिका महत्वपूर्ण रही। दुर्भाग्यवश राष्ट्र संघ की सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था विभिन्न कारणों से असफल सिद्ध हुई तथापि सामूहिक सुरक्षा का विचार द्वितीय महायुद्ध काल में और भी सजीव हो गया तथा नवीन विश्व–संस्था अर्थात् संयुक्त राष्ट्र संघ में राजनीतिज्ञों और विश्व–नेताओं ने और भी मजबूती के साथ सामूहिक सुरक्षा को प्रस्तावित किया। वर्तमान विश्व–संस्था के अंतर्गत सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था निश्चित रूप से राष्ट्र संघ की तुलना में श्रेष्ठतर है।

सामूहिक सुरक्षा और शक्ति संतुलन : सामूहिक सुरक्षा को प्रायः शक्ति संतुलन का विकल्प माना जाता है। क्लाड के अनुसार, विल्सन से लेकर आज तक सामूहिक सुरक्षा के सभी समर्थक इसे शक्ति संतुलन से भिन्न रूप में परिभाषित करते रहे हैं।

अंतर–शक्ति संतुलन एवं सामूहिक सुरक्षा की मान्यताओं के बीच कुछ अंतर हैं। जो मुख्यतः निम्नलिखित हैं–

1. सामूहिक सुरक्षा एक सार्वभौम संधि है जो प्रतियोगी संधियों से भिन्न है तथा जिनको शक्ति–संतुलन की विशेषता माना जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ कुछ संगठित राष्ट्रों के विरुद्ध संधि नहीं है वरन् प्रत्येक आक्रमणकारी के विरुद्ध है। यह संधि युद्ध के लिए नहीं वरन् शक्ति के लिए है।

टिप्पणी

2. शक्ति संतुलन की मान्यता दो या दो से अधिक विरोधी गुटों की कल्पना पर आधारित है, जो परस्पर संघर्षशील प्रकृति के हैं जबकि सामूहिक सुरक्षा की मान्यता एक विश्व पर आधारित है जो सहयोगपूर्ण व्यवस्था निर्माण करने के लिए संगठित होती है।
3. दोनों मान्यताएं संघर्ष का मुकाबला करने के लिए सहयोग की सिफारिश करती हैं तथापि शक्ति संतुलन व्यवस्था निर्माण के लिए संघर्षपूर्ण सहयोग चाहती हैं जबकि सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था संघर्ष को प्रतिबन्धित रखने के लिए सामान्य सहयोग पर बल देती है।
4. शक्ति संतुलन सीमित गुटबंदी द्वारा ही आक्रमणकारी का विरोध करता है किन्तु सामूहिक सुरक्षा सामान्य सहयोग के आधार पर आक्रमणकारी का मुकाबला करने को तत्पर रहती है।
5. सामूहिक सुरक्षा यह मानकर चलती है कि किसी भी राष्ट्र द्वारा किसी भी राष्ट्र पर कभी भी किया गया आक्रमण विश्व–शान्ति के लिए खतरा है किन्तु शक्ति संतुलन एक राष्ट्र पर आक्रमण होने के समय दूसरी सहयोगी इकाइयां उसका मुकाबला करने में तभी साथ देंगी जब वह उनके हितों के अनुकूल होगा।
6. इस प्रकार संतुलन–व्यवस्था व्यवहारवादी है किन्तु सामूहिक सुरक्षा की मान्यता में कुछ अधिक प्रभावशाली सैद्धान्तिक पुट है।
7. शक्ति संतुलन व्यवस्था बहुत अस्त–व्यस्त होती है किन्तु सामूहिक सुरक्षा में एक व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया जाता है।

क्विसी राइट के मतानुसार, सामूहिक सुरक्षा व शक्ति–संतुलन के बीच वही अंतर है जो कला और प्रकृति के बीच होता है।

समानताएं– शक्ति संतुलन व सामूहिक सुरक्षा के बीच उक्त अंतरों के अतिरिक्त निम्न समानताएं भी हैं–

1. कहा जाता है कि शक्ति संतुलन की योजना का आधार दूसरे पक्ष की आक्रमणकारी सामर्थ्य है जबकि सामूहिक सुरक्षा आक्रमण नीति पर अधिक ध्यान देती है।
2. शक्ति संतुलन में स्वयं को इतना शक्तिशाली बनाया जाता है कि विरोधी मुंह न उठा सकें। सामूहिक सुरक्षा में भी शक्ति का एकीकरण कर आक्रमणकारी की महत्वाकांक्षाओं पर अंकुश लगाया जाता है।
3. शक्ति संतुलन का आधार तुल्यभारिता तथा सामूहिक सुरक्षा का आधार प्रबलता माना जाता है।
4. दोनों ही व्यवस्थाएं शांति के लिए युद्ध में विश्वास रखती हैं तथा कहती हैं कि शान्ति की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि लड़ने की इच्छा पैदा करने की सामर्थ्य का विकास किया जाए।
5. दोनों ही राज्यों के सामूहिक सहयोग में विश्वास करते हैं यद्यपि आक्रमणकारी अर्थात् शांति को चुनौती देने वाला स्पष्ट नहीं होता।

6. दोनों ही अवधारणाओं की समानता उन आधारभूत परिस्थितियों के आधार पर भी बताई जा सकती है जो दोनों ही व्यवस्थाओं के सफल व्यवहार के लिए आवश्यक मानी जाती हैं। दोनों में शक्ति का फैलाव इतना किया जाता है कि कोई भी शक्तिशाली राष्ट्र या पक्ष अंतर्राष्ट्रीय शांति को खतरा न पहुंचा सके। दोनों की स्थापना प्रायः समान परिस्थितियों में की जाती है। विश्व के जिन परिवर्तनों ने शक्ति संतुलन के मार्ग में बाधा डाली है, वे सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था के सफल सचालन में भी बाधक हैं। शक्ति संतुलन के सिद्धांत की मान्यताएं सामूहिक सुरक्षा के सिद्धांत की पूरक हैं।

टिप्पणी

सामूहिक सुरक्षा और राष्ट्र संघ

सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा ने राष्ट्र संघ के रूप में प्रथम बार संगठनात्मक रूप धारण किया। संविदा के अनुच्छेद 10 में व्यवस्था थी कि संघ के सदस्य उसके सभी सदस्यों को प्रादेशिक एकता और राजनीतिक स्वतंत्रता का सम्मान करने तथा बाहरी आक्रमण से सुरक्षा का वचन देते हैं, इसी प्रकार के किसी आक्रमण के होने अथवा इस प्रकार के आक्रमण की धमकी अथवा भय उत्पन्न होने की अवस्था में परिषद उन साधनों के बारे में परामर्श देगी जिनसे इस उत्तरदायित्व को पूरा किया जा सके। इस अनुच्छेद में प्रख्यापित राष्ट्र संघ का यही प्रसिद्ध सामूहिक सुरक्षा का सिद्धांत था। अनुच्छेद 16 के अंतर्गत सदस्य राष्ट्र आवश्यकता पड़ने पर सामूहिक सुरक्षा के लिए उपयुक्त कदम उठाने को वचनबद्ध थे। यह अलग बात है कि इस अनुच्छेद को कभी क्रियान्वित नहीं किया गया। पामर एवं पार्किंस के अनुसार, संघ के सदस्यों द्वारा उसके अर्थों की एकपक्षीय व्यवस्था की गई तथा बातों के सिवाय और कुछ नहीं किया गया।

अपने जन्म के प्रारम्भिक वर्षों में संघ द्वारा कुछ समस्याओं को सुलझाया गया था किन्तु बड़ी व महत्वपूर्ण समस्याओं पर विचार करते समय बड़े राष्ट्रों द्वारा इसके नियमों का उल्लंघन किया गया। 1931–33 में मंचूरिया के संकट से हिटलर के आक्रमणों की श्रृंखला तक अर्थात् द्वितीय विश्व–युद्ध के आरम्भ तक प्रभावशाली सामूहिक सुरक्षा के प्रभाव में एक के बाद एक अंतर्राष्ट्रीय डकैती के कार्य होते रहे। संघ की असमर्थता एवं शक्तिहीनता 1935–36 में इटली के इथियोपिया के आक्रमण के समय पूरी तरह प्रकट हो गई। यह मामला उसकी परीक्षा की कसौटी था जिसमें वह असफल हो गया।

सामूहिक सुरक्षा और संयुक्त राष्ट्र संघ

राष्ट्र संघ की भांति ही संयुक्त राष्ट्र संघ के विधान में भी सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था की गई है और यह अपने पूर्ववर्ती की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुच्छेद 43 के अंतर्गत यह व्यवस्था है कि शांति–स्थापना के लिए किसी भी समय आवश्यकतानुसार सदस्य–राष्ट्र सुरक्षा परिषद की सहायता के लिए अपनी सशस्त्र सेनाएं, सहायता और अन्य सुविधाएं जिनमें मार्ग अधिकार भी शामिल होंगे सुरक्षा परिषद को उपलब्ध कराएंगे। यह भी प्रावधान है कि सदस्य सामूहिक अंतर्राष्ट्रीय कार्यवाही के लिए अपनी–अपनी राष्ट्रीय वायु–सेना को जल्दी से जल्दी उपलब्ध कराएंगे। ताकि संयुक्त राष्ट्र संघ तुरंत सैनिक कार्यवाही कर सके। यद्यपि शांति स्थापित रखना सुरक्षा–परिषद का प्रथम उत्तरदायित्व है तथापि

टिप्पणी

शांति के लिए एकता के प्रस्ताव द्वारा यह व्यवस्था भी कर दी गई है कि यदि कभी शांति के लिए संकट पैदा हो जाए, शान्ति भंग हो जाए अथवा आक्रमण हो जाए और सुरक्षा–परिषद पारस्परिक मतभेदों के कारण इस दिशा में अपने कर्तव्य का पालन न कर सके, तो महासभा अपना संकटकालीन अधिवेशन आयोजित कर तुरंत मामला अपने हाथ में ले सकती है और स्थिति का मुकाबला करने के लिए सामूहिक कार्यवाही का सुझाव दे सकती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अंतर्गत सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था की परीक्षा का अवसर पहली बार 1950 में आया था जब दक्षिणी कोरिया पर उत्तरी कोरिया के आक्रमण के मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने हाथ में लिया। कोरिया युद्ध में यदि संयुक्त राष्ट्र संघ सुरक्षा–व्यवस्था के अंतर्गत प्रभावशाली सैनिक विरोध न करता तो सम्भव था कि तृतीय विश्वयुद्ध का विस्फोट हो जाता। कुछ विचारकों का मत है कि कोरिया के संबंध संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यवाही के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था ने अपने उत्तरदायित्व को पूरा किया।

1956 में महासभा के संकटकालीन अधिवेशन में अविलंब युद्ध–विराम पर बल दिया गया और प्रस्ताव पारित किया गया कि महासचिव मिस्र में युद्ध बंद करने तथा युद्ध विराम की देखभाल करने के लिए संघ की एक आपातकालीन सेना (UNICEF) का गठन करें, किन्तु 15 नवम्बर को आपातकालीन सेना का पहला दस्ता मिस्र पहुंचने से पहले ही 5–7 नवम्बर की मध्य–रात्रि में ब्रिटिश फ्रांसीसी सैनिक कार्यवाही बंद कर दी गई थी। किंतु स्वेज विवाद की संयुक्त राष्ट्र संघीय कार्यवाही सामूहिक सुरक्षा की सफलता थी, यह संदिग्ध है।

वास्तव में कोरिया–युद्ध के बाद सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था को कार्यान्वित करने में संयुक्त राष्ट्र संघ पीछे हटा। संयुक्त राष्ट्र संघ–सामूहिक सुरक्षा के अपने उत्तरदायित्व को सच्चे अर्थों में नहीं निभा सका है। इसे इंगित करते हुए पामर एवं पर्किंस का यहां तक कहना है कि अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्र अपनी प्रकृति के कारण वास्तविक सामूहिक सुरक्षा का न तो कभी प्रभावशाली साधन था और न भविष्य में कभी हो सकता है। सुरक्षा परिषद में महाशक्तियों के निषेधाधिकार ने एक ऐसी व्यूह–रचना दी है, जिसमें चूहों को तो कुचला जा सकता है किंतु शेरों को नहीं रोका जा सकता। निषेधाधिकार ने सामान्य सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था को भिन्न–भिन्न कर दिया है।

सामूहिक सुरक्षा और क्षेत्रीय संधियां

विश्व के दो गुटों में बंट जाने के कारण सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था का भाग्य चंद्र–राहु के समान सिद्ध हुआ। शीत–युद्ध के दांव–पेचों तथा घेरेबंदी के परिणामस्वरूप साम्यवादी और पूंजीवादी गुटों द्वारा संधि संगठनों का निर्माण किया जाने लगा।

क्षेत्रीय संधियों को अनेक राजनीतिज्ञों और शांतिवादियों द्वारा अनुचित बताने पर भी इनका विकास होता ही गया। द्वितीय महायुद्ध के मध्यवर्तीकाल में क्षेत्रीय संगठनों और समझौतों का बड़ी संख्या में निर्माण किया गया। राष्ट्र संघ उन राज्यों के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर सका जिन्होंने आक्रामक रूप धारण कर लिया था।

जब द्वितीय महायुद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई तो उसके चार्टर में भी प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय संगठनों और समझौतों से संबंधित उपलब्ध रखे गए।

चूंकि राजनीतिज्ञों का बहुमत और अधिकांश राज्य यह नहीं चाहते थे कि आक्रमण के समय सुंयक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद के 5 स्थायी सदस्यों के हाथ में ही कार्यवाही करने का अधिकार रहे, अतः उन्होंने अपनी भावी सुरक्षा के लिए प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय संगठन निर्माण सिद्धांत का समर्थन किया और इसी उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में उपयुक्त व्यवस्था की।

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में यह व्यवस्था थी कि क्षेत्रीय और समझौते संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहेंगे परंतु विश्व की शक्तियां इसकी आड़ में अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति में लग गईं, जिनसे विश्व–शांति और सामूहिक सुरक्षा की समस्या सुलझने की बजाय उलझ रही है। इन संगठनों और समझौतों ने अंतर्राष्ट्रीय समस्याएं उत्पन्न की हैं और तनाव को बढ़ाया है। संयुक्त राष्ट्र संघ के महत्व को घटाया है। क्षेत्रीय अथवा प्रादेशिक संधियों और संगठनों का कम सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था की अपेक्षा शक्ति संतुलन के विचार के अधिक निकट है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर से संबंधित अनुच्छेद

संयुक्त राष्ट्र संघ में सामूहिक सुरक्षा तथा क्षेत्रीय या प्रादेशिक व्यवस्था के संबंध में जिन महत्वपूर्ण अनुच्छेदों का प्रावधान है उनके अवलोकन से संयुक्त राष्ट्र संघ की सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था को समझने में पर्याप्त सहायता मिलेगी। उल्लेखनीय है कि चार्टर के अनुच्छेदों में सामूहिक सुरक्षा शब्दों का प्रयोग न होकर सामूहिक उपायों तथा सामूहिक कार्यवाही शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

अनुच्छेद 1– अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा कायम रखना और इसके लिए प्रभावपूर्ण सामूहिक उपायों द्वारा शांति के खतरों को रोकना और समाप्त करना तथा आक्रमण एवं शांति भंग की अन्य चेष्टाओं को दबाना तथा न्याय एवं अंतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार शांतिपूर्ण साधनों द्वारा उन अंतर्राष्ट्रीय विवादों अथवा स्थितियों को सुलझाना अथवा निपटारा करना जिनसे शांति भंग होने की आंशका न रहे।

अनुच्छेद 39– सुरक्षा परिषद यह निर्णय करेगी कि शांति की धमकी दी गई है, शांति भंग हुई है अथवा आक्रमण हुआ है तथा वह सिफारिश करेगी और निश्चित करेगी कि अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को स्थापित रखने अथवा पुनः स्थापित करने के लिए 41 एवं 42 अनुच्छेदों के अनुसार क्या कार्यवाहियां की जाएंगी।

अनुच्छेद 40– किसी स्थिति को बिगड़ने से रोकने के लिए अनुच्छेद 39 में उल्लिखित सिफारिशें और उपायों के विषयों में निर्णय करने के पूर्व सुरक्षा–परिषद विवादी पक्षों से एक ऐसे अस्थायी कदम उठाने को कह सकती है जिन्हें वह उचित अथवा आवश्यक समझती हो। ऐसी अस्थायी कार्यवाहियों से संबंधित विवादी पक्षों के अधिकारों, दावों एवं स्थितियों का कोई अहित नहीं होगा। यदि कोई विवादी पक्ष इन अस्थायी कार्यवाहियों का अनुपालन नहीं करता तो सुरक्षा–परिषद इस पर विधिवत ध्यान देगी।

अनुच्छेद 41– सुरक्षा–परिषद अपने निर्णयों के क्रियान्वयन के लिए ऐसे उपायों के विषय में भी निर्णय कर सकती है जिनमें सशस्त्र बल का प्रयोग न हो और वह संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों को इनका अनुपालन करने के लिए कह सकती है। इन उपायों के अनुसार, आर्थिक संबंधों तथा रेल, समुद्र, वायु, डाक–तार, रेडियो एवं संचार व्यवस्था के अन्य साधनों पर पूर्ण आंशिक रूप से प्रतिबंध लगाया जा सकता है और राजनयिक संबंध–विच्छेद किए जा सकते हैं।

टिप्पणी

अनुच्छेद 42– यदि सुरक्षा–परिषद यह समझने कि अनुच्छेद 41 में उल्लिखित कार्यवाहियां अपर्याप्त होंगी अथवा अपर्याप्त सिद्ध हुई हैं तो अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को कायम रखने अथवा पुनः स्थापित करने के लिए सुरक्षा परिषद वायु, समुद्र अथवा स्थल सेनाओं की सहायता लेकर आवश्यक कार्यवाही कर सकती है।

अनुच्छेद 43– अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा कायम रखने में सहयोग देने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के सब सदस्य यह उत्तरदायित्व स्वीकार करते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा स्थापित रखने के उद्देश्य से वे सुरक्षा–परिषद के मांगने पर तथा विशेष समझौतों के अनुसार अपनी सशस्त्र सेनाएं, सहायता एवं सुविधाएं प्रदान करेंगे जिनमें मार्ग–अधिकार भी सम्मिलित हैं।

1. ऐसा समझौता अथवा समझौते सेनाओं की संख्या एवं प्रकार, तैयारी एवं सामान्य स्थिति का स्तर तथा प्रदान की जाने वाली सुविधाओं एवं सहायता का स्वरूप निश्चित करेंगे।
2. सुरक्षा परिषद की प्रेरणा से ऐसा समझौता अथवा समझौते जितना शीघ्र सम्भव हो वार्ता द्वारा किए जाएंगे। ये समझौते सुरक्षा परिषद एवं सदस्यों अथवा सुरक्षा–परिषद एवं सदस्य–समूहों के बीच होंगे तथा हस्ताक्षरकर्ता राज्यों की अपनी–अपनी संवैधानिक प्रक्रियाओं के अनुसार अनुमोदन के पश्चात् लागू होंगे।

अनुच्छेद 44– जब सुरक्षा–परिषद ने सैनिक कार्यवाही करने का निर्णय किया हो तो वह किसी ऐसे सदस्य से अनुच्छेद 43 के अधीन उत्तरदायित्व की पूर्ति हेतु सशस्त्र मांगने के पहले जिसका सुरक्षा–परिषद में प्रतिनिधित्व नहीं है उस सदस्य की इच्छानुसार उसे सुरक्षा–परिषद के उन निर्णयों में भाग लेने के लिए आमंत्रित कर सकती है, जिनका उस सदस्य की सशस्त्र सेनाओं के प्रयोग से संबंध हो।

अनुच्छेद 45– संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा शीघ्र सैनिक कार्यवाही के लिए सदस्य सामूहिक अंतर्राष्ट्रीय प्रवर्तन–कार्य के लिए अंतर्राष्ट्रीय वायु–सेना की टुकड़ियां तैनात करेंगे। इन टुकड़ियों की शक्ति और तत्परता की मात्रा तथा इनकी सामूहिक क्रिया की योजना, सैनिक–स्टाफ समिति की सहायता से सुरक्षा–परिषद द्वारा अनुच्छेद 43 में उल्लिखित विशेष समझौते या समझौतों की सीमाओं के अंतर्गत निर्धारित होगी।

अनुच्छेद 46– सुरक्षा–परिषद सैनिक स्टाफ समिति की सहायता से सशस्त्र सेनाओं के प्रयोग के लिए योजनाएं बनाएगी।

अनुच्छेद 47–

1. सैनिक स्टाफ समिति स्थापित की जाएगी जो सुरक्षा–परिषद को उन सभी प्रश्नों पर परामर्श एवं सहायता देगी जिनका संबंध अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा कायम रखने के लिए सुरक्षा–परिषद की सैनिक आवश्यकताओं, उसके अधीन सेनाओं के प्रयोग एवं कमान, शस्त्रों के नियंत्रण और संभावित निशस्त्रीकरण से हो।
2. सैनिक स्टाफ समिति से सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों के स्टाफ अध्यक्ष (चीफ ऑफ स्टाफ) अथवा उसके प्रतिनिधि होंगे। यदि संयुक्त राष्ट्र संघ के किसी सदस्य का इस समिति में स्थायी रूप से प्रतिनिधित्व न हो और समिति के दायित्वों की कुशलतापूर्ण पूर्ति के लिए समिति के कार्य में उस सदस्य का भाग लेना आवश्यक हो तो समिति उसे अपने साथ काम करने के लिए आमंत्रित करेगी।

3. सुरक्षा–परिषद के अधीन रहकर सैनिक स्टाफ समिति उन सशस्त्र सेनाओं के युद्ध संबंधी निर्देशनों के लिए उत्तरदायी होगी जो सुरक्षा परिषद के उपयोग के लिए उसे सौंपी जाएंगी। इन सेनाओं के कमान संबंधी प्रश्न बाद में निश्चित किए जाएंगे।
4. सुरक्षा–परिषद से अधिकार प्राप्त होने पर और उपयुक्त प्रादेशिक संस्थाओं के साथ परामर्श के पश्चात सैनिक स्टाफ समिति प्रादेशिक उप–समितियां भी स्थापित कर सकती हैं।

टिप्पणी

अनुच्छेद 48–

1. अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा संबंधी सुरक्षा–परिषद के निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिए जो कार्यवाही आवश्यक होगी जिसके विषय में सुरक्षा परिषद निर्धारित करेगी कि वह सयुंक्त राष्ट्र के सभी सदस्यों द्वारा हो अथवा उनमें से कुछ के द्वारा।
2. संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य स्वतंत्र रूप से तथा जिन उपयुक्त अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के वे सदस्य हैं उनमें अपनी कार्यवाही द्वारा इन निर्णयों को कार्यान्वित करेंगे।

अनुच्छेद 49– सुरक्षा–परिषद द्वारा निर्धारित कार्यवाही को लागू करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य एक दूसरे को सहयोग देंगे।

अनुच्छेद 50– यदि सुरक्षा–परिषद द्वारा किसी राज्य के विरुद्ध निवारक अथवा प्रवर्तन–संबंधी कार्यवाही हो रही हो और किसी अन्य राज्य के समक्ष जो संयुक्त राष्ट्र का सदस्य हो चाहे न हो इस कार्यवाही में आर्थिक समस्याएं उत्पन्न हो जाएं तो उसे इन समस्याओं के समाधान के संबंध में सुरक्षा–परिषद से परामर्श करने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 51– यदि संयुक्त राष्ट्र संघ के किसी सदस्य के विरुद्ध कोई सशस्त्र आक्रमण हो तो उसे व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से आत्म–रक्षा का अन्तर्निहित अधिकार है और जब तक सुरक्षा–परिषद अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा स्थापित रखने के लिए आवश्यक कार्यवाही नहीं करती तब तक वर्तमान चार्टर के अनुसार इस अधिकार पर कोई प्रतिबंध नहीं होगा। आत्म–रक्षा के इस अधिकार के प्रयोग में सदस्य जो भी कार्यवाही करेंगे उनकी सूचना तत्काल सुरक्षा परिषद को दी जाएगी और इस कार्यवाही का सुरक्षा–परिषद के वर्तमान चार्टर के अधीन उस शक्ति एवं उत्तरदायित्व पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ेगा जिसके अनुसार वह किसी भी समय अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा स्थापित रखने अथवा पुनः स्थापित करने के लिए आवश्यक कार्यवाही कर सकती है।

अनुच्छेद 52–

1. ऐसे प्रादेशिक प्रबंध एवं संगठनों के अस्तित्व में जो अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा संबंधी मामलों पर विचार करते हैं और उपयुक्त प्रादेशिक कार्यवाही करते हैं, वर्तमान चार्टर के अनुसार कोई बाधा नहीं पड़ेगी, बशर्ते कि ऐसे प्रादेशिक अथवा संगठन तथा उनके कार्य संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों एवं के अनुरूप हों।
2. संयुक्त राष्ट्र संघ के वे सदस्य जो ऐसी व्यवस्थाओं के भी सदस्य हैं अथवा ऐसे संगठन का निर्माण करते हैं। स्थायी विवादों को सुरक्षा परिषद के समक्ष ले जाने

के पहले ऐसे प्रादेशिक प्रबंधों अथवा ऐसी प्रादेशिक संस्थाओं द्वारा उनका शांतिपूर्वक निपटारा करने के लिए प्रयत्न करेंगे।

3. सुरक्षा–परिषद राज्यों के अभिक्रम द्वारा अथवा स्वयं ही स्थानीय विवादों के इन प्रादेशिक प्रबंधों अथवा इन प्रादेशिक संगठनों द्वारा शांतिपूर्ण निपटारे के लिए प्रोत्साहन देगी।

टिप्पणी

4. इस अनुच्छेद से अनुच्छेद 34 एवं 35 के लागू होने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

अनुच्छेद 53–

1. जहां उचित होगा, सुरक्षा–परिषद अपने अधिकार में इन प्रादेशिक प्रबंधों अथवा संगठनों का प्रवर्तन संबंधी कार्यवाही में उपयोग करेगी परंतु इन प्रादेशिक प्रबंधों अथवा प्रादेशिक संस्थाओं के अधीन तब तक कोई प्रवर्तन संबंधी कार्यवाही नहीं की जाएगी, जब तक सुरक्षा–परिषद इसका अधिकार न दे, ये उन कार्यवाहियों के विषय में अपवाद हैं। अनुच्छेद 107 के अनुसार अथवा किसी ऐसे राज्य के पुनः आक्रमणकारी नीति अपनाने के विरुद्ध तब तक की जा रही हो जब तक संबंधित राष्ट्रों के निवेदन पर उस राज्य द्वारा आगे आक्रमण रोकने के लिए संगठन को इसका उत्तरदायित्व न दिया जाए।
2. इस अनुच्छेद के पैरा 1 में जो शत्रु–राज्य शब्द का प्रयोग किया गया है, वह उस राज्य के लिए लागू होता है जो दूसरे महायुद्ध में इस चार्टर पर हस्ताक्षर करने वाले किसी राष्ट्र का शत्रु रहा है।

अनुच्छेद 54– प्रादेशिक प्रबंधों अथवा प्रादेशिक संस्थाओं द्वारा अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के संपोषण के लिए जो कार्यवाही की जाएगी अथवा जिस कार्यवाही पर विचार हो रहा होगा, उसकी पूर्ण सूचना समय–समय पर सुरक्षा–परिषद को दी जाएगी।

सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था का मूल्यांकन

सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था चाहे वह किसी भी रूप तथा आकार में हो तब तक प्रभावशाली नहीं हो सकती जब तक उसे क्रियान्वित करने के लिए पर्याप्त शक्ति उपलब्ध न हो। शक्ति के बिना किसी भी दमनकारी आक्रमण को कुचला नहीं जा सकता। सैद्धांतिक दृष्टि से सामूहिक सुरक्षा की बाध्यकारी शक्ति के तीन विकल्प हो सकते हैं–

1. सदस्य राज्यों द्वारा सहयोग का वचन दिया जा सकता है तथा आवश्यकता पड़ने पर उनकी सैनिक शक्तियों के प्रयोग करने का वायदा भी लिया जा सकता है।
2. राज्य अपनी सेना के कुछ भाग अंतर्राष्ट्रीय संस्था के पास छोड़ सकते हैं ताकि वह सामूहिक सुरक्षा के लिए आवश्यकता पड़ने पर काम में ला सकें।
3. अंतर्राष्ट्रीय संघ अपनी स्वयं की सेना का अलग से निर्माण करे तथा वह सेना सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था का संचालन करे।

सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था को आज की परिस्थितियों में अव्यावहारिक, असंभव तथा निष्फल माना जाता है। इसके समर्थन में प्रायः निम्न तर्क दिए जाते हैं–

1. आक्रमणकारी जब आक्रमण करता है तो पूरी तैयारी और सोच–विचार के साथ करता है और जिस देश पर आक्रमण किया जाता है उसकी प्रतिक्रिया भी तत्काल होती है। वहां पूरी सैनिक तैयारी की जाएगी संकटकालीन बजट

स्वीकृत किया जाएगा तथा परिस्थितियों के अनुकूल जो भी आवश्यक होगा किया जाएगा किंतु सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था की इकाइयों को पूरी तरह यह पता नहीं रहता कि कहां किसके विरुद्ध कब किसके साथ मिलकर सैनिक कार्यवाही करनी होगी।

टिप्पणी

2. 1945 के बाद सैनिक तकनीक में भारी परिवर्तन हो गया है। वैज्ञानिक विकास के कारण आज के युद्ध ऐसे बन गए हैं कि आक्रमणकारी के विरुद्ध कदम उठाने के लिए सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था का कोई विचार करे तब तक आक्रमणकारी देश को नष्ट कर देगा। यही कारण है कि प्रत्येक राष्ट्र यह जानता है कि वह अपने जीवन–मरण का प्रश्न सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था पर नहीं छोड़ सकता इसके लिए उसे स्वयं ही प्रबंध करना होगा।
3. विश्व का दो गुटों में बंट जाना भी सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था के विपरीत सिद्ध हुआ है। सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था की मान्यता है कि उसके प्रतिबंधों का प्रभाव प्रत्येक देश पर पड़ेगा और कोई भी देश आक्रमण करने का साहस न कर सकेगा किंतु द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद रूस अमेरिका की शक्ति का जिस रूप में उदय हुआ है, उस पर सामूहिक सुरक्षा के प्रतिबंधों का कोई प्रभाव होने वाला नहीं है। इसके अतिरिक्त दो गुटों की व्यवस्था में यह भी एक बाधा होती है कि आक्रमणकारी राज्य किसी एक गुट का सदस्य या नेता होता है और इस कारण उस गुट के दूसरे सदस्य–राज्य सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था के उत्तरदायित्व को पूर्ण करने में बाधक बन जाते हैं।
4. सामहिक सुरक्षा–व्यवस्था इस बात पर निर्भर करती है कि आक्रमणकारी तथा जिस पर आक्रमण किया गया है, उस देश को स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया जाए क्योंकि बिना इसके कोई कदम नहीं उठाया जा सकता। आक्रमण की परिभाषा एवं अर्थ भी अनेक लगाए जाते हैं। पहले तो यही निश्चय करना आसान नहीं होता कि प्रमुख कार्यवाही आक्रमण है या नहीं।
5. सामूहिक सुरक्षा की सफलता की परिस्थितियां बढ़ने की अपेक्षा धीरे–धीरे घटती जा रही हैं। विषयगत आवश्यकताओं को देखकर ऐसा लगता है कि यह सिद्धांत अपरिपक्व है क्योंकि न तो राजनीतिज्ञ और न जनता ही इसकी पूर्व आवश्यकताओं से परिचित होते हैं। इस विचार का विकास होना चाहिए कि जो विश्व के लिए शुभ है वही राज्य के लिए भी शुभ है। राष्ट्रीय हित को विश्व–शांति तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के साथ एकरूप कर देना चाहिए।
6. जिस व्यक्ति के हाथों में विदेश नीति के संचालन का भार रहता है, वह सदैव अव्यावहारिक नीति को अपनाएगा तथा प्रत्येक मामले को पूर्ण विचार के बाद ही कोई निर्णय लेगा। वह सामूहिक सुरक्षा जैसे किसी भी सिद्धांत के साथ बंध कर विवशता की स्थिति में फंस जाए। एक सफल राजनीतिज्ञ वही है जिसके सामने अनेक विकल्पों के द्वार खुले रहते हैं और परिस्थिति के अनुकूल मार्ग अपनाने में उनके सामने कोई बाधा नहीं आती।
7. मॉर्गेन्थो आदि विचारकों की मान्यता है कि सामूहिक सुरक्षा–व्यवस्था के अंतर्गत युद्ध का क्षेत्र सीमित या स्थानीय न रहकर विश्वव्यापी बन जाता है। जिस युद्ध के परिणामों को एक क्षेत्र–विशेष तक ही सीमित किया जा सकता था वे विश्वव्यापी बनकर विश्व को विध्वंस की आग में झोंक देते हैं।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. शांति के लिए संगठित होने का प्रस्ताव किस देश की पहल पर पारित किया गया?
   (क) सोवियत संघ (ख) इंग्लैण्ड
   (ग) अमेरिका (घ) फ्रांस
2. किस विचारधारा ने महासचिव की भूमिका को शक्तिशाली बना दिया?
   (क) निवारक निरोध (ख) निवारक कूटनीति
   (ग) निवारक कानून (घ) कोई नहीं
3. स्वेज नहर संकट के समय किस शांति सेना की स्थापना हुई थी?
   (क) UNICEF (ख) ONUC
   (ग) UNDOF (घ) UNIFIL
4. UN. Peace-Building Commission की स्थापना कब हुई?
   (क) 30 जनवरी, 2005 (ख) 20 दिसम्बर, 2005
   (ग) 20 जनवरी, 2005 (घ) 30 नवम्बर, 2005
5. शान्ति के लिए एक एजेंडा किस महासचिव ने प्रस्तुत किया था?
   (क) यू थाण्ट (ख) कोफी अन्नान
   (ग) बुतरस बुतरस घाली (घ) बान की मून

4.3 प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय विवादों का अध्ययन

संयुक्त राष्ट्र संघ का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक समस्याओं का समाधान करते हुए अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को हर प्रकार से प्रोत्साहन देना है। यद्यपि संघ आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में महती भूमिका निभाता है तथा उसके राजनीतिक कार्यकलाप ही सामान्यतः अधिक प्रकाश में आते हैं और विश्व–जनता सामान्यतः उन्हीं के आधार पर उसकी सफलता का मूल्यांकन करती है।

महासभा और सुरक्षा–परिषद दोनों ही अराजनीतिक समस्याओं के निराकरण का प्रयत्न करती हैं। चार्टर के अनुसार, सुरक्षा–परिषद पर अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की स्थापना करने का प्रारंभिक दायित्व है तथापि महासभा भी इन विषयों पर विचार कर सकती है। उसकी शक्तियों पर केवल यह प्रतिबंध है कि उन राजनीतिक समस्याओं पर जो सुरक्षा परिषद के विचाराधीन हैं वह तब तक विचार नहीं कर सकती जब तक परिषद उसे ऐसा करने की अनुमति न दे। वास्तव में इन दोनों अंगों के कार्य कुछ हद तक अतिव्यापी हैं।

कुछ महत्वपूर्ण विवाद निम्न हैं–

1. रूस–ईरान विवाद– संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष प्रस्तुत यह प्रथम विवाद था। ईरान के एक प्रान्त अजरबाइजान में सोवियत सेनाएं प्रवेश कर गईं। 19 जनवरी, 1946

को ईरान ने सुरक्षा परिषद से शिकायत करते हुए रूस पर ईरान के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का आरोप लगाया और ईरानी प्रांत में रूसी सेनाओं की उपस्थिति को अंतर्राष्ट्रीय शांति के लिए खतरा बताया। सुरक्षा परिषद में आरोप–प्रत्यारोप को दौर चला और रूस ने यह संकेत दिया कि वह ईरानी सरकार के साथ प्रत्यक्ष वार्ता करना पसंद करेगा। परिषद ने दोनों पक्षों को सीधी बातचीत करने और वार्ता की प्रगति से सूचित करने का सुझाव दिया। जब वार्ता से कोई परिणाम नहीं निकला तो परिषद ने सोवियत संघ से प्रार्थना की कि वह 6 मई, 1947 तक ईरान से अपनी सेनाएं वापस बुला ले। इसी बीच ईरान और रूस के बीच समझौता हो गया तथा मास्को ने घोषणा की कि 9 मई को ही सोवियत सेनाएं ईरान खाली कर चुकी हैं।

टिप्पणी

ईरान संकट को सुलझाने में यद्यपि सुरक्षा–परिषद को कोई कार्यवाही नहीं करनी पड़ी थी किंतु परिषद की बहसों ने समस्या पर प्रबल रूस विरोधी लोकमत जाग्रत कर दिया और रूस ने ईरानी भूमि से अपनी सेनाएं हटा लेना उचित समझा।

2. यूनान–विवाद– 3 जनवरी, 1946 को रूस ने सुरक्षा–परिषद से शिकायत की कि महायुद्ध समाप्त हो जाने के बाद भी ब्रिटिश फौजें यूनानी भू–प्रदेश पर बनी हुई हैं और उस देश के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप तथा अंतर्राष्ट्रीय तनाव पैदा कर रही हैं। परिषद में विचार–विमर्श के समय यूनानी प्रतिनिधि ने कहा कि यूनानी जनता ब्रिटिश सैनिकों की उपस्थिति को जन–व्यवस्था और सुरक्षा के लिए अनिवार्य समझती है। इस स्थिति में स्वभावतः सुरक्षा परिषद ने मामले की सुनवाई समाप्त करने का निश्चय कर लिया। दिसम्बर 1946 में यूनान ने परिषद से शिकायत की कि पड़ोसी साम्यवादी देश छापामारों की सहायता कर यूनान के साथ तनाव पैदा कर रहे हैं। परिषद ने जब जांच–पड़ताल करने का प्रयत्न किया तो सोवियत रूस ने वीटो का प्रयोग कर दिया। इसके बाद महासभा ने जांच–पड़ताल के लिए आयोग नियुक्त किया जिसे अल्बानिया, बल्गेरिया व यूगोस्लाविया ने अपनी सीमाओं में प्रवेश की अनुमति नहीं दी किंतु अंत में यूनान समस्या का समाधान हो गया। इसके निम्नलिखित तीन कारण थे–

(क) महासभा द्वारा नियुक्त आयोग की उपस्थिति में साम्यवादी देशों द्वारा पूर्ववत् मात्रा में छापामारों को सहायता नहीं दी जा सकी।

(ख) टीटो–स्टालिन विवाद के कारण यूनानी छापामारों को यूगोस्लाविया की सहायता बंद हो गई।

(ग) इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ के सामयिक और साहसिक हस्तक्षेप से दक्षिणी यूरोप का एक महत्वपूर्ण देश साम्यवादी नियंत्रण में जाते–जाते बच गया।

3. बर्लिन की समस्या– 1945 में पोट्सडम समझौते के अनुसार बर्लिन नगर, रूस फ्रांस, ब्रिटेन और अमेरिका के नियंत्रण में विभक्त कर दिया गया था। पश्चिमी बर्लिन मित्र राष्ट्रों के नियंत्रण में और पूर्वी बर्लिन रूस के नियंत्रण में रहा। पोट्सडम सम्मेलन में यह भी तय हुआ था कि दोनों जर्मनियों की आर्थिक एकता कायम रखी जाएगी लेकिन चारों देश इस निर्णय को कायम न रख सके। पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा नई मुद्रा प्रचलित करने से क्षुब्ध होकर रूस ने 1 मार्च, 1948 को पश्चिमी बर्लिन के जल और थल मार्ग बंद कर दिए। इस नाकेबंदी का प्रत्युत्तर पश्चिमी राष्ट्रों ने हवाई मार्ग का अधिकाधिक प्रयोग करके दिया।

टिप्पणी

23 सितम्बर, 1948 को सुरक्षा–परिषद में रूसी नाकेबंदी के विरुद्ध शिकायत की गई और इस कार्यवाही को शांति के लिए घातक बताया गया। 4 मई, 1949 को फ्रांस, ब्रिटेन व अमेरिका ने सुरक्षा–परिषद को सूचित किया कि बर्लिन समस्या पर उनका रूस से समझौता हो गया है।

4. कोरिया संकट– द्वितीय महायुद्ध के बाद विभाजित उत्तरी कोरिया ने दक्षिणी कोरिया पर विशाल सैनिक आक्रमण कर दिया। संयुक्त राष्ट्र संघीय जांच पड़ताल से इसकी पुष्टि हो गई। इन दिनों रूस ने संयुक्त राष्ट्र संघ की बैठकों का बहिष्कार कर रखा था। सुरक्षा–परिषद ने उत्तरी कोरिया को आक्रमणकारी घोषित कर सैनिक हस्तक्षेप का निश्चय किया। जुलाई 1950 में संयुक्त राष्ट्र संघ के झंडे के नीचे लगभग सोलह राष्ट्रों की एक संयुक्त कमान की रचना हुई। जिसका सेनापति जनरल मेकार्थर को बनाया गया। आरंभ में तो संयुक्त राष्ट्र संघ की सेना को सफलता प्राप्त हुई लेकिन जब संघीय फौजों ने 38 अक्षांश पार कर उत्तरी कोरिया क्षेत्र में लड़ना शुरू किया तो साम्यवादी चीन के सैनिक उत्तरी कोरिया की ओर से लड़ाई में कूद पड़े।

अंत में 10 जुलाई, 1951 को राष्ट्र संघीय संयुक्त कमान और साम्यवादी चीन व उत्तरी कोरिया की संयुक्त कमान के प्रतिनिधियों में अधिकांश विषयों पर समझौता हो गया।

5. फिलिस्तीन विभाजन की समस्या– प्रथम महायुद्ध के बाद इस प्रदेश को संरक्षित प्रदेश के रूप में ब्रिटेन ने घोषणा कर दी कि उसके लिए इस मेन्डेट शासन को चलाना सम्भव नहीं है। अप्रैल 1947 में ब्रिटेन ने यह समस्या महासभा के सामने रखी। महासभा द्वारा नियुक्त विशेष समिति ने अगस्त 1947 में सिफारिश की कि फिलिस्तीन को दो भागों में विभक्त कर दिया जाए–एक भाग में अरब राज्य की स्थापना हो और दूसरे में यहूदी राज्य की। 14 मई, 1948 को ब्रिटेन ने फिलिस्तीन पर से अपना शासन प्रबंध हटा लिया जिसकी 15 मई को घोषणा कर दी गई और यहूदियों ने फिलिस्तीन में इजराइल–राज्य की घोषणा कर दी, बदले में इराक, लेबनान ट्रांस–जोर्डन आदि अरब–राष्ट्रों ने फिलिस्तीन पर आक्रमण कर दिया गया। इजराइल के प्रत्याक्रमण को अरब–राष्ट्र नहीं झेल सके। 11 जून, 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघीय प्रतिनिधि बर्नाडोट के प्रयत्नों से दोनों पक्षों में चार सप्ताह के लिए युद्ध–विराम हो गया।

अक्टूबर 1956 में मिस्र और इजराइल के मध्य पुनः युद्ध छिड़ गया तथा रूसी हस्तक्षेप व संयुक्त राष्ट्र संघीय प्रयासों से शांति स्थापित हो गई। इसके बाद 1967 में एक बार फिर अरब–राष्ट्रों और इजराइल के बीच घमासान युद्ध छिड़ गया तथा संयुक्त राष्ट्र संघीय प्रयत्नों से अस्थायी तौर पर शांति हो गई।

6. इंडोनेशिया विवाद– द्वितीय महायुद्ध के पूर्व इंडोनेशिया पर हॉलैंड का अधिकार था। युद्धकाल में इस पर जापान ने अधिकार स्थापित कर लिया था। जापान की पराजय के बाद इंडोनेशिया राष्ट्रवादियों ने अपने यहां स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर ली जिसके फलस्वरूप हॉलैंड और इंडोनेशिया में युद्ध छिड़ गया। परिषद ने इसका विरोध करते हुए हॉलैंड से कहा कि इंडोनिशया में एक सर्वोच्च सत्तासंपन्न संघात्मक गणराज्य की स्थापना की जाए जिसे डच सरकार 1 जुलाई, 1949 तक सम्प्रभु शक्ति हस्तांतरित कर दे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सत्सेवा समिति को इंडोनेशिया आयोग में परिवर्तित कर दिया गया। 30 दिसम्बर, 1949 तक इंडोनेशिया गणराज्य को सर्वोच्च

सत्ता हस्तांतरित कर दी जाएगी। बाद में 27 दिसम्बर, 1949 को ही इंडोनेशिया को एक स्वतंत्र सम्प्रभु गणराज्य के रूप में मान्यता दे दी और 28 दिसम्बर, 1950 को उसे संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता भी प्रदान कर दी गई।

7. दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार का प्रश्न– दक्षिण अफ्रीका सरकार काले–गोरे में भेद मानने के लिए बहुत समय से बदनाम है 1946 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के प्रथम अधिवेशन में ही भारत ने यह प्रश्न उपस्थित कर दिया और दक्षिण अफ्रीका की सरकार पर मानवीय मौलिक अधिकार के उल्लंघन का आरोप लगाया। महासभा ने दक्षिण अफ्रीका के एतराज को सामान्य घोषित करते हुए भारतीय प्रस्ताव पारित कर दिया किंतु दक्षिण अफ्रीका ने इस प्रस्ताव की कोई चिंता नहीं की और अपनी जाति–भेद की अमानवीय नीति पर चलता रहा। महासभा में प्रस्ताव पास होते रहे पर समस्या ज्यों की त्यों बनी रही। वास्तव में इस प्रकार की मानवीय व्यवहार की समस्या को न सुलझा पाना संयुक्त राष्ट्र संघ की एक बहुत बड़ी विफलता है। ऐसी महान अंतर्राष्ट्रीय संस्था के लिए यह दुर्भाग्यपूर्ण असमर्थता है कि समस्त विश्व असहाय होकर ताकता रहे। दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद ने अपना नग्न नृत्य करते हुए समस्त नैतिक और मानवीय मूल्यों को ताक पर रख दिया।

टिप्पणी

8. कश्मीर समस्या– 15 अगस्त, 1947 को भारत उपमहाद्वीप में भारत और पाकिस्तान दो स्वतंत्र राष्ट्रों की स्थापना हुई।

पाकिस्तान की नीयत कश्मीर को जबरदस्ती हड़प कर पाकिस्तान में मिलाने की थी, अतः 22 अक्टूबर, 1947 को उसने उत्तर–पश्चिम सीमाप्रांत के कबाइलियों द्वारा कश्मीर पर आक्रमण करवा दिया। पाकिस्तान की नियमित सेना के एक बड़े भाग ने भी इस आक्रमण में हिस्सा लिया। भारतीय सेनाएं कश्मीर की रक्षा के लिए भेज दी गईं। कश्मीर में पाकिस्तान का नग्न आक्रमण जारी रहा है और 1 जनवरी, 1948 को भारत ने सुरक्षा परिषद में शिकायत की कि इस आक्रमण से अंतर्राष्ट्रीय शांति को खतरा है। भारत ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि पाकिस्तान का कश्मीर पर आक्रमण स्वयं भारत पर आक्रमण है। भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने घोषणा की कि कश्मीर का भारत में स्थायी विलय कश्मीर मे संयुक्त जनमत के आधार पर होगा।

सुरक्षा परिषद में दोनों पक्षों की ओर से आरोप–प्रत्यारोप लगते रहे। 20 जनवरी, 1948 को सुरक्षा–परिषद ने एक मध्यस्थता आयोग नियुक्त किया। आयोग के प्रयत्न से युद्ध विराम हो गया और 1/3 कश्मीर पाकिस्तान के कब्जे में रह गया। आयोग ने जनमत संग्रह कराने के लिए दोनों देशों पर कुछ प्रतिबंध लगाए जिन्हें पाकिस्तान ने भंग कर दिया। 1954 में कश्मीर संविधान सभा ने कश्मीर के बाजाब्ता भारत में विलय का अनुमोदन कर दिया। 1956 में राज्य के लिए एक नया संविधान स्वीकार किया गया। जिसके द्वारा कश्मीर प्रत्येक दृष्टि से भारत का वैध अंग बन गया। इस तरह अब कश्मीर–समस्या का स्वरूप बिलकुल बदल गया और जनमत–संग्रह का कोई मूल्य नहीं रह गया। कश्मीर का मामला आज भी सुरक्षा–परिषद की विषय सूची में है।

9. स्वेज नहर–विवाद– 1896 में निर्मित स्वेज नहर का संचालन एक स्वेज नहर कम्पनी करती थी जिसमें ब्रिटेन और फ्रांस के अधिकांश शेयर थे। समझौते के

टिप्पणी

अनुसार, इसकी रक्षा के लिए ब्रिटिश सरकार की सेना रहती थी। नवम्बर 1950 में मिस्र सरकार ने यह मांग की कि ब्रिटिश सरकार की सेना स्वेज नहर क्षेत्र से हट जाए। ब्रिटेन द्वारा यह मांग ठुकरा देने पर दोनों पक्षों के संबंध कटु हो गए। मिस्र में राष्ट्रीय आंदोलन जोर पकड़ता गया और अंत में जुलाई 1954 में किए गए समझौते के अंतर्गत ब्रिटेन को स्वेज नहर क्षेत्र से अपनी सेना हटानी पड़ी। समझौते के बाद भी मिस्र और ब्रिटेन व अन्य पश्चिमी राष्ट्रों के संबंधों में कोई सुधार नहीं हुआ और 26 जुलाई, 1956 को नासिर ने स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण कर दिया तथा मिस्र में स्वेज नहर कंपनी की संपत्ति जब्त कर ली। 13 अक्टूबर, 1956 को परिषद ने समस्या के हल के लिए एक प्रस्ताव के रूप में 6 सिद्धांतों का भी प्रतिपादन किया जिसमें स्वेज नहर पर अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण रखने का भी सुझाव दिया गया लेकिन सोवियत वीटो से यह प्रस्ताव रद्द हो गया। आपसी तनातनी इतनी बढ़ गई कि 29 अक्टूबर, 1956 को ब्रिटेन और फ्रांस की प्रेरणा पर इजराइल ने स्वेज नहर क्षेत्र पर आक्रमण कर दिया। 2 नवम्बर, 1956 को महासभा के एक विशेष अधिवेशन ने अमेरिका का एक प्रस्ताव पारित किया जिसके द्वारा ब्रिटेन और फ्रांस की सैनिक कार्यवाही की निंदा करते हुए अविलंब युद्ध बंद करने पर बल दिया गया। 10 राष्ट्रों ने मिलकर 6 हजार सैनिक दिए जो संयुक्त राष्ट्र संघ के श्वेत ध्वज के नीचे एकत्र हुए। 5 नवम्बर को सोवियत रूस ने ब्रिटेन और फ्रांस को स्पष्ट चेतावनी दी कि यदि एक निश्चित समय में मिस्र में युद्ध बंद नहीं किया। 7 नवम्बर, 1956 को महासभा ने अपने प्रस्ताव में कहा कि ब्रिटेन, फ्रांस व इजरायल की सेनाएं मिस्र से हट जाएं तथा स्वेज नहर क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय पुलिस की व्यवस्था की जाए। इस प्रस्ताव के फलस्वरूप युद्ध पूरी तरह बंद हो गया।

10. कांगो समस्या– संघ की सबसे कठिन परीक्षा कांगो में हुई और सौभाग्यवश इसमें वह सफल हुआ। जुलाई 1960 में कांगो में भीषण गृह–युद्ध छिड़ गया जिसे भड़काने में बेल्जियम का मुख्य षड्यंत्र था। कांगो सरकार की प्रार्थना पर संयुक्त राष्ट्र संघीय सेनाओं ने पहुंचकर कांगो और बेल्जियम वाले संघर्ष को तो समाप्त कर दिया, लेकिन कांगोई प्रांतों के गृह–युद्ध की स्थिति तेजी से बिगड़ती गई। संयुक्त राष्ट्र संघ ने एक ओर तो सैनिक उपायों द्वारा कांगो का विघटन रोका तथा दूसरी ओर समझौतावादी नीति अपनाई। सितम्बर 1962 में महासचिव हैमरस्वजोल्ड कांगो के संघर्षरत नेताओं से बातचीत करने के लिए स्वयं कांगो गए और वहीं मार्ग में वायु–दुर्घटना में मारे गए। नए महासचिव ऊथाण्ट ने अपने प्रयत्न जारी रखे।

11. यमन की समस्या– 19 सितम्बर, 1962 को यमन के शासक इमाम अहमद की मृत्यु हो गई। 26 सितम्बर को एक क्रांति द्वारा राजतंत्र की समाप्ति कर दी गई और क्रांतिकारी परिषद ने गणराज्य की स्थापना की। दूसरी ओर राजतंत्रवादियों को अपने पक्ष में कर शाहजादे हसन ने सऊदी अरब में जिददा में यमन की निर्वासित सरकार की स्थापना की। दोनों यमनी सरकारें एक–दूसरे को समाप्त करने के लिए कूटनीतिक और सामरिक हथकंडे अपनाती रहीं। अक्टूबर के समाप्त होते–होते राजतंत्रवादियों और गणतंत्रवादियों में भीषण संघर्ष शुरू हो गया। मार्च 1963 में संघ की ओर से राल्फ बुच ने प्रत्यक्ष भेंट द्वारा दोनों पक्षों को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वे अपने–अपने सैनिकों को वापस बुला लें और समस्या का शांतिपूर्ण हल खोजें।

टिप्पणी

12. साइप्रस की समस्या– 13 अगस्त, 1960 को साइप्रस बिटिश प्रभुता से मुक्त होकर स्वतंत्र गणराज्य बन गया। स्वतंत्रता के कुछ ही समय बाद राष्ट्रपति मकारियोस ने संविधान में ऐसा संशोधन प्रस्तावित किया जिससें दोनों जातियों के मध्य वैमनस्य स्थापित हो गया। इससे संतुलन और सामंजस्य समाप्त हो सकता था और गृह युद्ध आरंभ हो गया। राष्ट्रपति मकारियोस ने दिसंबर 1963 में सारा मामला सुरक्षा परिषद के सामने रखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघीय पर्यवेक्षक भेजने और स्थिति संभालने के लिए संघ के हस्तक्षेप की मांग की। लम्बे विचार–विमर्श के बाद मार्च 1964 में साइप्रस में शांति–स्थापना हेतु संयुक्त राष्ट्र संघीय शांति सेना भेजने का निर्णय किया गया। शीघ्र ही अंतर्राष्ट्रीय सेना साइप्रस जा पहुंची जिसने वहां कानून और व्यवस्था बनाए रखने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की।

13. डोमिनिकन गणराज्य विवाद– लैटिन अमेरिका के इस छोटे से देश में अप्रैल 1965 में गृह युद्ध छिड़ गया। राष्ट्रपति ने अपने पक्ष की सरकार को बचाने के लिए सैनिक हस्तक्षेप किया। सुरक्षा–परिषद से अनुरोध किया कि मामले में हस्तक्षेप करे। अंत में परिषद द्वारा यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया कि युद्धरत दोनों पक्ष युद्ध–विराम करें और महासचिव आवश्यक जांच–पड़ताल के लिए डोमिनिकन गणराज्य में अपना प्रतिनिधि भेजें। अमेरिकी राज्यों के संगठन ने भी समस्या के समाधान की दिशा में कुछ ठोस कदम उठाए। अंत में अमेरिकी राज्यों के संगठन और संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयासों से 4 माह के गृह–युद्ध के उपरांत 31 अगस्त, 1965 को दोनों पक्षों में समझौता होने के बाद शांति स्थापित हो गई।

14. अरब–इजराइल संघर्ष– 1956 के अरब–इजराइल संघर्ष में युद्ध विराम होने पर संयुक्त राष्ट्र संघ की अंतर्राष्ट्रीय सेना गाजा और मिस्र की अंतर्राष्ट्रीय सीमा पर तैनात हो गई थी ताकि इजराइल–अरबों में पुनः संघर्ष न छिड़ जाए लेकिन दोनों पक्षों में तनाव बढ़ता गया। 1967 में युद्ध की तैयारियां जोरों से शुरू हो गईं। जोर्डन, सीरिया, मिस्र, इराक आदि 10 करोड़ वाली जनसंख्या के देश छोटे–से इजराइल का आक्रमण न सह सके। केवल 5 दिन की लड़ाई में ही अरब–राष्ट्रों की सामरिक क्षमता का विनाश हो गया। 7 जून की परिषद ने यह आदेशात्मक प्रस्ताव पारित किया कि युद्धरत सभी देश युद्ध बंद कर दें। चूंकि अरब राष्ट्र युद्ध क्षमता खो चुके थे और इजराइल सामरिक उद्देश्यों को पूरा कर चुका था अतः 8 जून को इजराइल और मिस्र के बीच पूरी तरह लड़ाई बंद हो गई। 16 जुलाई से स्वेज नहर क्षेत्र में संघ के पर्यवेक्षकों की देख–रेख में युद्ध विराम लागू हो गया किन्तु फिर पूर्ण शांति स्थापित नहीं हो सकी और आज भी इस क्षेत्र में दोनों पक्षों में सैनिक झड़पें होती रहती हैं।

15. भारत–पाक संघर्ष 1965– कश्मीर को हड़पने के उद्देश्य से पाकिस्तान ने 1965 में पुनः युद्ध का आश्रय लिया। अगस्त 1965 में हजारों पाकिस्तानी आक्रमणकारी गुप्त रूप से युद्ध विराम रेखा पार कर कश्मीर के भारतीय प्रदेश में प्रवेश कर गए। भारत ने जब इस घुसपैठ को विफल कर दिया तो सितम्बर 1965 में अंतर्राष्ट्रीय सीमा को पार कर पाकिस्तान की एक पूरी पैदल ब्रिगेड और 70 टैंक कश्मीर पर चढ़ आए। विवश होकर भारत को भी अपनी रक्षा के लिए पाकिस्तान के विरुद्ध खुलकर युद्ध छेड़ देना पड़ा। 22 दिन के घमासान युद्ध में पाकिस्तान पर करारी मार पड़ी और आखिर संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयासों से 23 सितम्बर, 1965 को प्रातः 3:30 बजे भारत–पाक युद्ध विराम हो गया तथा पाकिस्तान की रही–सही लाज बच गई। अंत में काफी ऊहापोह के बाद

परिषद द्वारा ये प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि भारत और पाकिस्तान 21 सितम्बर को दोपहर से युद्ध बंद कर दें और युद्ध विराम लागू होने के बाद अपनी सेनाओं को 5 अगस्त, 1965 की स्थिति में लौटा लें। पाकिस्तान द्वारा सहमति की सूचना देने पर युद्ध 23 सितम्बर, 1965 को प्रातः 3:30 बजे बंद हो गया।

टिप्पणी

16. चेकोस्लोवाकिया का संकट– 21 अगस्त, 1968 को सोवियत संघ तथा वारसा–संधि के अन्य साम्यवादी देशों ने चेकोस्लोवाकिया में सैनिक कार्यवाही कर हंगरी की घटनाओं को एक बार फिर ताजा कर दिया। रूसी पक्ष की इस सैनिक कार्यवाही के कई कारण थे। मूल कारण घोषित किया गया कि चेकोस्लोवकिया के साम्यवादी शासन को प्रतिक्रियावादी तत्वों से बचाने के लिए सैनिक हस्तक्षेप अनिवार्य हो गया है तुरंत ही इस मामले को सुरक्षा परिषद में उठाया गया। परिषद के 7 सदस्य–राष्ट्रों की ओर से एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया, जिसमें रूसी कार्यवाही को स्वतंत्र और प्रभुत्वसम्पत्र राष्ट्र पर आक्रमण ठहराकर उसकी निंदा की गई। चेकोस्लोवाकिया–संकट के संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ ने एक मूकदर्शक से अधिक कोई कारगर भूमिका नहीं निभाई।

17. साम्यवादी चीन का संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश– महासभा द्वारा 1971 के अधिवेशन में साम्यवादी चीन की संघ की सदस्यता से संबंधित एक बहुत ही जटिल प्रश्न का समाधान कर दिया गया जो 22 वर्षों से उलझा पड़ा था। 26 अक्टूबर, 1971 को साम्यवादी चीन को संघ की सदस्यता प्रदान करने और ताइवान (राष्ट्रवादी चीन) को इससे निष्कासित करने का अल्वानिया के प्रस्ताव के विरुद्ध 76 मतों से स्वीकार कर लिए जाने से संयुक्त राष्ट्र संघ के इतिहास में प्रस्तुतः एक नए युग का सूत्रपात हुआ।

18. बंगलादेश की समस्या– पाकिस्तान ने अपने ही एक भाग पूर्वी बगांल की स्वायत्ता की मांग को कुचलने के लिए 1970–71 में बर्बर दमनचक्र चलाया जिसके फलस्वरूप मार्च 1971 में पूर्वी बंगाल की जनता ने एक स्वतंत्र देश के रूप में अपने देश की स्थापना की घोषणा कर दी। लगभग एक करोड़ व्यक्ति शरणार्थियों के रूप में भारत आ गए। भारत ने तथा अन्य देशों के साथ स्वयं बंगलादेश के प्रतिनिधि मंडल ने इस समस्या की गम्भीरता की और संयुक्त राष्ट्र संघ का ध्यान आकर्षित किया, किंतु अमेरिका के पाक–समर्थक और बंगलादेश विरोधी रुख के कारण संयुक्त राष्ट्र संघ इस समस्या को सुलझाने और बंगलादेश में पाकिस्तान द्वारा अमानवीय अधिकारों के हनन को रुकवाने में कोई विशेष सहायता नहीं कर सका।

19. भारत–पाक संघर्ष 1971 – इस संघर्ष के समय भी संयुक्त राष्ट्र संघ ने अमेरिका और उसके पिछलग्गू राष्ट्रों के प्रभाव के कारण पुनः पक्षपातपूर्ण रुख अपनाया। भारत के इस अनुरोध पर कोई ध्यान नहीं दिया गया कि असली विवाद पाकिस्तान और बंगलादेश के बीच है तथा इसे भारत–पाक विवाद का रूप नहीं दिया जाना चाहिए। सुरक्षा परिषद में अमेरिका ने प्रस्ताव रखा कि भारत तथा पाकिस्तान युद्ध–विराम करें और तुरंत अपनी–अपनी सेनाएं पीछे हटा लें। अन्य राष्ट्रों द्वारा भी प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए जिनमें से एक में युद्ध विराम कर सेनाएं वापस हटाने की बात थी। चौथा प्रस्ताव रूस द्वारा पेश किया गया। जिसमें कहा गया कि पूर्वी पाकिस्तान

का राजनीतिक हल निकाला जाए। अमेरिका के प्रस्ताव पर रूसी वीटो के प्रयोग से भारत के समक्ष उपस्थित एक भारी संकट टल गया। 24 घण्टे के भीतर ही परिषद की दूसरी बैठक में पुनः युद्ध–विराम तथा दोनों पक्षों के सैनिकों के लौट जाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया जिसे रूस ने पुनः वीटो कर दिया। 16 दिसम्बर को भारत ने एकपक्षीय युद्ध विराम की घोषणा कर दी।

टिप्पणी

20. अरब–इजरायल युद्ध 1973– अक्टूबर 1973 में चौथा अरब–इजरायल युद्ध छिड़ गया लेकिन महाशक्तियों की उदासीनता के कारण सुरक्षा परिषद में तत्काल सारी स्थिति पर विचार नहीं हो सका। इस बीच संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव बाल्दहीम ने सुझाव रखा कि युद्धरत राष्ट्रों से अविलम्ब युद्ध बंद करने की अपील की जाए। 7 अक्टूबर को सुरक्षा परिषद की गुप्त बैठक में इस सुझाव पर विचार हुआ, लेकिन रूस और चीन के विरोध के कारण कोई प्रस्ताव स्वीकार नहीं हो सका। 9 अक्टूबर को अमेरिका ने सुरक्षा परिषद की बैठक बुलाने की पहल की। अपने–अपने प्रस्ताव में उसने मांग रखी कि इजराइल मिस्र और सीरिया से युद्ध बन्द करने और युद्ध की पूर्वस्थिति तक अपनी–अपनी फौजें लौटा लेने की अपील की जाए। परिषद के प्रस्ताव की स्वीकृति के 12 घंटे के अंदर सारी फौजी कार्यवाही रोक दे। युद्धबंदी के तुरंत बाद सुरक्षा परिषद के 1967 के 212 वें प्रस्ताव को पूरी तरह लागू किया जाए। इस प्रस्ताव को 22 अक्टूबर की शाम को 7 बजे स्वीकार कर लिया, किंतु सीरिया ने इसे नहीं माना। अतः गोलन पहाड़ियों पर भीषण युद्ध जारी रहा। स्थिति इतनी बिगड़ गई कि रूस का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप होने की संभावना हो गई। 26 अक्टूबर को अमेरिका ने भी विश्व भर में अपने सैनिकों को सतर्क रहने का आदेश दे दिया। 27 अक्टूबर को सुरक्षा–परिषद की बैठक में युद्ध विराम के निरीक्षण के लिए और उसके उल्लंघन को रोकने के लिए संयुक्त राष्ट्रीय आपात् सेना के गठन पर विचार–विमर्श हुआ परिषद ने भारत के एक प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। समझौता–वार्ता चालू रही और तब अन्त में 11 नवम्बर, 1973 को इजराइल और मिस्र के बीच एक 6 सूत्री समझौते पर हस्ताक्षर हो गए। संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका से पुनः यह स्पष्ट हो गया कि वह महाशक्तियों के हाथ का खिलौना मात्र है।

21. ईरान और इराक युद्ध (1980–1987)– ईरान और इराक में सैनिक झड़पें तो पहले से ही रही थीं किंतु सितम्बर 1980 के उत्तरार्द्ध में दोनों पक्षों में घमासान युद्ध छिड़ गया। सुरक्षा परिषद ने 2 सितम्बर, 1980 की रात सर्वसम्मति से पारित एक प्रस्ताव में ईरान व इराक से तत्काल युद्ध बंद करने तथा आपसी मतभेदों को हल करने के लिए बाहरी मदद स्वीकार करने को कहा। सुरक्षा परिषद प्रस्तावों और स्वयं महासचिव के प्रयत्नों का ईरान–इराक संघर्ष पर कोई अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ा। 1987 के मध्य तक प्राप्त समाचारों के अनुसार दोनों देशों में अब भी लड़ाई जारी थी और राजनीतिक क्षेत्र संयुक्त राष्ट्र से कोई विशेष उम्मीद नहीं करते।

ऐसा नहीं कि संयुक्त राष्ट्र संघ पूरी तरह से असफल हो गया है। यद्यपि असफलता संयुक्त राष्ट्र संघ को भी मिली है परंतु उसकी सफलताएं हमें आशा और विश्वास दिलाती हैं। यह संघ की सबसे बड़ी सफलता है कि उसके अस्तित्व के बाद से आज तक कोई बड़ा युद्ध नहीं हुआ है। विश्व से परतंत्रता कम होती जा रही है।

टिप्पणी

विश्व की गरीबी दूर करने के सतत् प्रयास किए जा रहे हैं कि दवाइयां तथा अन्न के अभाव में किसी की मृत्यु न हो। राजनीतिक क्षेत्र में मोरक्को पर फ्रांस के आधिपत्य की समाप्ति, ट्यूनीशिया की स्वतंत्रता, स्वेज नहर विवाद, वियतनाम से अमेरिकी फौजों की वापसी, कांगो समस्या, कोरिया समस्या आदि सफलता का इतिहास प्रस्तुत करती है। सत्य तो यह है कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवोत्थान में बहुत बड़ा योगदान दिया है।

असफलता–सफलता तो किसी के भी जीवन का आवश्यक अंग है। संयुक्त राष्ट्र संघ इसका अपवाद नहीं है। संयुक्त राष्ट्र संघ मानव उन्नति तथा विश्व विकास के क्षेत्र में निरंतर सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है। वर्तमान में विश्व की लगभग 80% जनसंख्या संयुक्त राष्ट्र संघ से लाभान्वित हो रही है। यदि हम राजनीतिक असफलताओं को अलग कर दें तो संयुक्त राष्ट्र संघ को बहुत उपयोगी संस्था के रूप में पाएंगे। संयुक्त राष्ट्र संघ की सफलता का श्रेय भी महा शक्तियों को ही है और संयुक्त राष्ट्र संघ की अभी तक की असफलताओं के मूल में भी महा शक्तियां ही हैं। ये चाहे तो विश्व में शांति स्थापित हो जाए। संयुक्त राष्ट्र संघ शांति के महत्व को बनाने और स्थापित करने में वर्तमान में सफल होता जा रहा है। वर्तमान में अंतर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन करने पर रूस, अमेरिका तक खुलेआम उसके उल्लंघन की बात नहीं कहते वरन् संबंधित कानून की व्यवस्था अपने प्रकार से करते हैं। यह संयुक्त राष्ट्र संघ की बहुत ही बड़ी सफलता है।

अपनी प्रगति जांचिए

6. उत्तर कोरिया का संबंध किस अक्षांश से है?
   (क) 36 अक्षांश (ख) 38 अक्षांश
   (ग) 33 अक्षांश (ग) कोई नहीं
7. साम्यवादी चीन को संघ की सदस्यता कब मिली?
   (क) 26 अक्टूबर, 1971 (ख) 25 अक्टूबर, 1949
   (ग) 18 फरवरी, 1973 (ग) 15 दिसम्बर, 1962
8. कांगो के गृहयुद्ध के दौरान किस महासचिव की मृत्यु हुई थी?
   (क) त्रिग्वेली (ख) हैमरस्क्जोल्ड
   (ग) कोफी अन्नान (ग) बान मून
9. स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण कब हुआ था?
   (क) 11 नवम्बर, 1957 (ख) 26 जून, 1959
   (ग) 26 जुलाई, 1956 (ग) 25 मई, 1958
10. इंडोनेशिया किस यूरोपीय देश का उपनिवेश था?
    (क) पोलैंड (ख) जर्मनी
    (ग) इंग्लैंड (घ) हॉलैंड

4.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी

1. (ग)
2. (ख)
3. (क)
4. (ख)
5. (ग)
6. (क)
7. (ग)
8. (घ)
9. (ख)
10. (क)
16. (ख)
17. (ग)
18. (घ)

4.5 सारांश

संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्म युद्ध की विभीषिका के बाद ही हुआ था इसलिए अघोषित रूप से इसका मुख्य उद्देश्य विश्व में शांति करना है। अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा से संबधित प्रावधान चार्टर में सर्वत्र विद्यमान है। इससे संबंधित अधिकार एवं शक्तियां महासभा में समाहित हैं। उपर्युक्त शक्तियां महासभा में समाहित हैं। उपर्युक्त शक्तियों के कारण महासचिव की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण और उसका पद अत्यन्त प्रभावशाली हो गया है। अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ सोलह प्रकार की कार्यवाहियां संचालित करता है तथा एक शांति निर्माण कमीशन की भी स्थापना की गई है।

अंतर्राष्ट्रीय विवादों को सुलझाने और निपटाने के लिए मुख्य रूप से दो प्रकार की प्रक्रियाएं प्रयोग में लाई जाती हैं– (1) शांति समाधान की प्रक्रियाएं और (2) अमनकारी या बाध्यकारी निर्णयों की प्रक्रियाएं। शांतिपूर्ण समाधान की प्रक्रियाओं में वार्ता मध्यस्थता निर्णयों की प्रक्रियाएं। शांतिपूर्ण समाधान की प्रक्रियाओं में वार्ता, मध्यस्थता, पंच निर्णय, वाद–विवाद, संराधन, न्यायिक समाधान, संघ का सीधा हस्तक्षेप, अवरोधक कूटनीति और मध्यस्थ प्रतिनिधि इत्यादि। दमनकारी कार्यवाही सैनिक और असैनिक दोनों प्रकार की हो सकती है। इस कार्यवाही को संभव बनाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघीय शांति सेनाओं का उपयोग किया जाता है। स्वेज नहर विवाद, कांगो संकट में इन सेनाओं की उल्लेखनीय भूमिका रही है।

सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था ने अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के विरुद्ध आक्रमण रोकने के लिए या विरुद्ध प्रतिक्रिया करने के लिए किए गए संयुक्त कार्यों या संगठित प्रयासों का यन्त्र है। इसे शक्ति संतुलन का विकल्प भी माना जा सकता है। सामूहिक सुरक्षा को संयुक्त

राष्ट्र संघ के चार्टर में भी स्थान दिया गया है। परंतु इसे क्रियान्वित करने के लिए पर्याप्त शक्ति होनी चाहिए। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी स्थापना से लेकर पिछली शताब्दी के अन्त तक लगभग बीस विवादों में सीधे तौर पर अपनी शांति स्थापना करने वाली प्रक्रियाओं और कार्यवाहियों के द्वारा अधिकतर में सफलता प्राप्त की है।

टिप्पणी

4.6 मुख्य शब्दावली

- **अवरोध कूटनीति** : अवरोध कूटनीति से तात्पर्य शीत युद्ध की स्थितियों को शांत रखने से है।
- **पंच निर्णय** : वार्ता, मध्यस्थता, संराधन, जांच आदि से संबंधित प्रक्रिया।
- **सामूहिक सुरक्षा** : सामूहिक सुरक्षा देश द्वारा सुरक्षा के लिए किए गए सामूहिक प्रयत्न से संबंधित होती है।
- **संराधन** : विवादों के निपटारे का एक साधन।
- **सत्सेवा** : जब विवादयुक्त पक्ष समझौता वार्ता द्वारा अपने मतभेदों को सुलझाना नहीं चाहते या असफल हो जाते हैं, तब सत्सेवा या मध्यस्थता का प्रयोग किया जाता है।
- **अनुशस्तियां** : अंतर्राष्ट्रीय शांति की विधियां।

4.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र संघ की शांति कायम रखने की कार्यवाहियों पर संक्षिप्त लेख लिखिए।
2. संयुक्त राष्ट्र शांति निर्माण करने वाले कमीशन पर टिप्पणी लिखिए।
3. शांतिपूर्ण समाधान की प्रक्रियाओं के बारे में बताइए।
4. अनुशस्तियां क्या होती हैं तथा इसका प्रयोग किन परिस्थितियों में होता है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र संघ में शांति बनाए रखने वाली कार्यवाहियों की विस्तार से चर्चा कीजिए?
2. शांतिपूर्ण समाधान और दमनकारी प्रक्रियाओं पर प्रकाश डालिए?
3. कोरिया, फिलीस्तीन, कश्मीर, स्वेज नहर, अरब–इजरायल, और ईरान–इराक युद्ध किन्हीं तीन पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

4.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अंतर्राष्ट्रीय विधि, हरिश्चन्द्र शर्मा एवं रमेश दुबे, कालेज बुक डिपो जयपुर।
2. अंतर्राष्ट्रीय विधि, एस.के. कपूर, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।
3. अंतर्राष्ट्रीय संगठन, एम.पी. राय, कालेज बुक डिपो, जयपुर।

इकाई 5 निशस्त्रीकरण, संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियां

टिप्पणी

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 निशस्त्रीकरण
5.3 संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक और सामाजिक गतिविधियां
5.4 संयुक्त राष्ट्र संघ– एक आलोचनात्मक मूल्यांकन, समस्याएं और संभावनाएं
5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.6 सारांश
5.7 मुख्य शब्दावली
5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

निशस्त्रीकरण और शस्त्र नियंत्रण अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की उन अनसुलझी समस्याओं में से एक है जो शनैः–शनैः भयावह होती जा रही हैं बल्कि इस दौड़ में शामिल राज्यों की संख्या भी धीरे–धीरे बढ़ती जा रही है। अंतर्राष्ट्रीय संगठन चाहे वे विश्वव्यापी हों या क्षेत्रीय सभी इस समस्या का सामना कर रहे हैं। निशस्त्रीकरण को सामान्यतः शस्त्र नियंत्रण के रूप में परिभाषित किया जाता है किंतु निशस्त्रीकरण शस्त्र नियंत्रण से कहीं अधिक व्यापक है। संयुक्त राष्ट्र संघ केवल राजनीतिक गतिविधियां ही नहीं करता है बल्कि पूरे विश्व में आर्थिक और सामाजिक कल्याण के कार्यक्रमों को भी संचालित करता है। आर्थिक और सामाजिक कल्याण की गतिविधियों को यह अपने विशिष्ट अभिकरणों की सहायता से क्रियान्वित करता है, जैसे– अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संगठन, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक और विश्व विकास प्राधिकरण, यूनेस्को, संयुक्त राष्ट्र बाल कोष, मानव अधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र इत्यादि।

प्रस्तुत इकाई में हम निशस्त्रीकरण के अर्थ, प्रकार, निशस्त्रीकरण के लिए किए गए प्रयासों, उसके क्रियान्वयन के मार्ग में आने वाली बाधाओं तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियों और इसकी समस्याओं व संभावनाओं का अध्ययन करेंगे। इसके साथ ही इस इकाई में हम संयुक्त राष्ट्र संघ का आलोचनात्मक मूल्यांकन भी करेंगे जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि संयुक्त राष्ट्र संघ की दुर्बलताओं को दूर करके उसको और अधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली कैसे बनाया जा सकता है।

टिप्पणी

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- निशस्त्रीकरण की आवश्यकता को समझ पाएंगे;
- विश्व में द्विध्रुवीय व्यवस्था ने शस्त्रों की होड़ को किस प्रकार बढ़ावा दिया यह जान पाएंगे;
- निशस्त्रीकरण के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले प्रयासों का विस्तृत अध्ययन कर पाएंगे;
- विश्व में जनमानस को अच्छा जीवन स्तर प्राप्त हो इसके लिए संयुक्त राष्ट्र संघ विभिन्न अभिकरणों के माध्यम से किस प्रकार प्रयासरत है, यह समझ पाएंगे;
- संयुक्त राष्ट्र संघ को किन–किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है तथा भविष्य के लिए क्या संभावनाएं हो सकती हैं, यह भी जान पाएंगे।

5.2 निशस्त्रीकरण

निशस्त्रीकरण की समस्या उतनी ही पुरानी है जितनी विश्व शांति की। आज के आणविक युग में तो यह समस्या हमारे जीवन–मरण की समस्या बन गई है। शस्त्रास्त्रों के इस भयावह खतरे के बावजूद शस्त्रीकरण की होड़ इसलिए जारी है कि आज राष्ट्रों के संबंध पारस्पारिक अविश्वास और दूसरे राष्ट्रों के बारे में निरंतर भय से परिपूर्ण हैं। निशस्त्रीकरण और शस्त्र नियंत्रण आज अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की उन समस्याओं में से हैं जो निरंतर विचार–विमर्श के बावजूद गंभीरतम रूप धारण किए हुए हैं। अनवरत प्रयासों के बावजूद शस्त्रीकरण की होड़ तेजी से जारी है।

निशस्त्रीकरण : अर्थ एवं प्रकार

सामान्य अर्थ में निशस्त्रीकरण वह कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य शस्त्रों के अस्तित्व और उनकी प्रकृति से उत्पन्न कुछ विशिष्ट खतरों को कम अथवा समाप्त कर देना है। प्रो. मार्गेन्थो के अनुसार, ''निशस्त्रीकरण से आशय शस्त्रों की दौड़ समाप्त करना अथवा सभी शस्त्रों को कम या समाप्त कर देने से है।''

निशस्त्रीकरण सामान्य, स्थानीय, मात्रात्मक, गुणात्मक कैसा भी हो सकता है। सामान्य निशस्त्रीकरण में लगभग सभी सम्मिलित होते हैं, जैसे 1932 का विश्व निशस्त्रीकरण सम्मेलन। स्थानीय निशस्त्रीकरण में कुछ ही राष्ट्र भाग लेते हैं तथा प्रभावित होते हैं। मात्रात्मक निशस्त्रीकरण का तात्पर्य भी उसी प्रकार के नियंत्रण से है जबकि गुणात्मक निशस्त्रीकरण के अनुसार, विशेष प्रकार के शस्त्रों को कम अथवा समाप्त करने की सिफारिश की जाती है। जब हम पूर्ण निशस्त्रीकरण की बात करते हैं तो इसका अर्थ वर्तमान में उपलब्ध सभी प्रकार के शस्त्रों पर प्रतिबंध लगाने से होता है।

निशस्त्रीकरण कार्यक्रम को कतिपय क्षेत्रों में 'शस्त्र नियंत्रण' कार्यक्रम कहा जाता है। अंतर्राष्ट्रीय दायित्वों के निर्वहन के लिए कुछ सशस्त्र सैन्य बल अपेक्षित हैं, अतः समस्या शस्त्र नियंत्रण की है, पूर्ण निशस्त्रीकरण की नहीं।

टिप्पणी

वेजेल डब्ल्यू पोस्वाल ने अपने लेख ''The New Meaning Of Arms Control" में लिखा है कि ''निशस्त्रीकरण का अभिप्राय सेना और शस्त्रों को घटा देना या समाप्त कर देना है'' जबकि शस्त्र नियंत्रण में वे सभी उपाय सम्मिलित हैं जिनका उद्देश्य युद्ध के संभावित और विनाशकारी परिणामों को रोकना (विशेषकर आणविक युद्ध के परिणामों) है। इसमें सेनाओं तथा शस्त्रों को घटाने या ना घटाने का विशेष महत्व नहीं है।

निशस्त्रीकरण अपने आप में समस्या का समाधान नहीं बल्कि एक माध्यम मात्र है जो तभी सार्थक हो सकता है जब वह उद्देश्य पूर्ण तथा योजनाबद्ध हो। शस्त्रीकरण का निषेध अथवा कमी करने के लिए अविश्वास, प्रतिस्पर्धा, शोषण आदि की भावना के विपरीत अच्छे विकल्प ढूंढ़ने होंगे और राष्ट्रहित की परिभाषाएं अधिक विचारपूर्ण ढंग से करनी होंगी। अंतर्राष्ट्रीय विवादों को हल करने के लिए शांतिपूर्ण उपायों की संभावनाएं सच्चे मन से खोजनी होंगी अन्यथा मात्र शस्त्रों में कुछ कमी कर देने से निशस्त्रीकरण का उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

निशस्त्रीकरण क्यों आवश्यक है?

निशस्त्रीकरण की आवश्यकता व महत्ता को इस प्रकार समझा जा सकता है–

1. **शांति स्थापना के लिए**– सामान्य और सार रूप में निशस्त्रीकरण की धारणा में विश्व शांति और सुरक्षा की संभावनाएं निहित हैं। शस्त्रास्त्र एक राष्ट्र की विदेश नीति को सैनिक दृष्टिकोण प्रदान करते हैं जिससे युद्ध और संघर्ष की संभावनाएं सदा जीवित, जागृत और प्रबल रहती हैं। श्री कोहन के अनुसार, ''निशस्त्रीकरण द्वारा राष्ट्रों के भय और मतभेद को कम करके शांतिपूर्ण समझौतों की प्रक्रिया को सुविधामय तथा शक्तिशाली बनाया जा सकता है।''

निशस्त्रीकरण और शांति के संबंध में विचार मतैक्य नहीं पाया जाता। हेडले बुल का तर्क है कि अंतर्राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विता और तनावपूर्ण स्थिति, यही युद्ध के वास्तविक कारण हैं क्योंकि इनसे ही शस्त्रास्त्रों की भीषण प्रतिस्पर्धा शुरू होती है जिसका अंतिम परिणाम युद्ध और विनाश होता है। प्रो. शूमैन के अनुसार संघर्ष की आशंका ही शस्त्रीकरण की होड़ को जन्म देती है और युद्ध की संभावना से शस्त्रों में वृद्धि होती है। मूल समस्या तो अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना की है। क्विंसी राइट का मत एकदम विपरीत है उनका विचार है कि निशस्त्रीकरण को शांति तथा सुरक्षा की समस्याओं का समाधान नहीं माना जा सकता। निशस्त्रीकरण से तो युद्ध के बार–बार होने की संभावना बढ़ जाती है। शस्त्रास्त्रों के अभाव में राज्य दूसरे राज्यों के आक्रामक कार्यों और इरादों का मुकाबला नहीं कर पाते। प्रथम और द्वितीय महायुद्ध इसलिए हुए थे कि बड़े राष्ट्रों ने निशस्त्रीकरण से बचने का प्रयास किया था। निशस्त्रीकरण का विषय अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की बड़ी जटिल और विवादास्पद समस्या है, तथापि मतभेदों के बावजूद इस तथ्य को नहीं ठुकराया जा सकता कि निशस्त्रीकरण समय की मांग है और इसके द्वारा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग तथा विश्वास के नए द्वार खोले जा सकते हैं।

2. **आर्थिक कल्याण और पुनः निर्माण के लिए**– निशस्त्रीकरण के पक्ष में आर्थिक तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि 'शस्त्रों की दौड़' के स्थान पर 'शांति के लिए दौड़' शुरू

टिप्पणी

होने पर मानव समाज की समृद्धि का मार्ग अधिक प्रशस्त होगा तथा विश्व के औद्योगिकीकरण तथा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के नए युग का सूत्रपात होगा। स्टाकहोम स्थित प्रसिद्व शांति संस्थान ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि 1980 में संसार भर में हथियारों का भंडार जमा करने पर 500 अरब डॉलर से भी अधिक खर्च किए गए। एक अध्ययन के अनुसार 1985 के प्रारंभ तक विश्व का रक्षा बजट 1000 बिलियन डॉलर प्रति वर्ष तक पहुंच गया था। 2019 में यह आंकड़ा लगभग 2000 बिलियन डालर हो गया है। आत्मरक्षा के नाम पर संस्थान के सैनिक खर्च में लगातार बढ़ोतरी के बावजूद आज हर राष्ट्र अपने आप को साठ वाले दशक की तुलना में कहीं अधिक खतरे में देखता है। सुरक्षा की जगह असुरक्षा की भावना अधिक बढ़ी है।

कतिपय क्षेत्रों में कहा जाता है कि निशस्त्रीकरण के फलस्वरूप मंदी का दौर शुरू होगा। जिसके भीषण परिणाम लोगों को भुगतने पड़ेंगे, साथ ही वैज्ञानिक और तकनीकी विकास में भी बाधा पहुंचेगी, लेकिन इस प्रकार की आशंका अधिक वजनदार नहीं है। निशस्त्रीकरण के फलस्वरूप जो रचनात्मक वातावरण पनपेगा उससे वैज्ञानिक और तकनीकी विकास की क्षमता अवरुद्ध नहीं होगी, उल्टे आर्थिक समृद्धि के इतने विशाल स्रोत खुल जाएंगे जिनकी आज हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

3. **निशस्त्रीकरण से विश्व**– राज्य के निर्माण की संभावनाएं बढ़ेंगी, महायुद्ध का संभावित खतरा टल जाएगा तथा राष्ट्रों के पारस्परिक विवाद आपसी बातचीत द्वारा सुलझाने का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा। शीत युद्ध का ज्वर कम हो जाएगा आतंक के बादल छंट जाएंगे और राष्ट्रों के विवाद बड़ी सीमा तक गोलमेज सम्मेलनों में तय होने लगेंगे।

4. **नैतिक वातावरण के निर्माण के लिए**– निशस्त्रीकरण नैतिक रूप से भी आवश्यक है क्योंकि ''किसी राष्ट्र को यह अधिकार नहीं है कि वह अपनी सुरक्षा के लिए अन्य राष्ट्रों की वर्तमान और भावी पीढ़ियों के स्वास्थ्य तथा जीवन को रेडियो–सक्रिय धूल तथा अन्य सामरिक खतरों में डाले।" सैद्धांतिक रूप से नैतिक आधार पर निशस्त्रीकरण का प्रतिपादन उचित है, लेकिन यथार्थवादी राष्ट्रीय राजनीति में इसका विशेष प्रभाव नहीं होता । उदाहरण के लिए भारत जैसे शांतिप्रिय राष्ट्र हेतु चीन और पाकिस्तान के व्यवहार को देखते हुए एकतरफा निशस्त्रीकरण का कोई कदम उठाना देश के लिए आत्मघाती होगा।

5. **आणविक संकट से बचने के लिए**– आज के युग में आणविक युद्ध एवं विनाश से बचने का एकमात्र उपाय निशस्त्रीकरण अथवा शस्त्रों पर प्रभावशाली नियंत्रण ही है। घातक शस्त्रों पर रोक लगाने तथा उन्हें सीमित कर देने से चाहे आक्रमण रोके न जा सकें तो भी उनको कम, मर्यादित अपेक्षाकृत बहुत कम विनाशकारी बनाया जा सकेगा। निशस्त्रीकरण के फलस्वरूप प्रथम तो कोई भी राष्ट्र तुरंत एवं व्यवस्थित रूप से युद्ध छेड़ने में असमर्थ बन जाएगा और दूसरे, राष्ट्रों के मध्य द्वेषपूर्ण संबंधों में कमी हो जाने से राष्ट्रीय हितों में परस्पर समायोजन के अनुकूल वातावरण बन जाएगा। नाभिकीय तथा आणविक शस्त्रास्त्र ही आज राष्ट्रों के मनों को आतंकित किए हुए हैं। दूसरी ओर यह तर्क भी दिया जाता है कि आज महाशक्तियों की नाभिकीय एवं आणविक शक्ति ने आतंक का जो संतुलन बना रखा है उसी से विश्व में शांति स्थापित है अन्यथा तृतीय महायुद्ध कभी का छिड़ गया होता।

निष्कर्ष रूप में, आधुनिक परिस्थितियों में विश्व के राष्ट्रों के लिए निशस्त्रीकरण का मार्ग अपनाना श्रेयस्कर है। युद्ध और शांति का चक्र न कभी मिटा है और न कभी संभवतः मिट सकेगा अतः प्रयत्न इसी दिशा में होना चाहिए कि युद्ध की विनाशक शक्ति घट जाए।

टिप्पणी

द्वितीय महायुद्ध से पूर्व तक निशस्त्रीकरण के प्रयास–

दूसरे महायुद्ध से पूर्व तक के निशस्त्रीकरण प्रयासों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–

(क) राष्ट्र संघ से इतर किए गए निशस्त्रीकरण प्रयास एवं

(ख) राष्ट्र संघ द्वारा निशस्त्रीकरण के प्रयास

विगत लगभग 150 वर्षों से निशस्त्रीकरण संबंधी विभिन्न प्रयास होते रहे हैं। 1817 में ब्रिटेन तथा अमेरिका के मध्य हुए रूस–बगोट समझौते द्वारा अमेरिका–कनाडा को विसैन्यीकृत घोषित किया गया, 1831 में फ्रांस में कई बार नेपोलियन तृतीय ने और 1870 में ब्रिटेन ने दूसरे देशों के सम्मुख सामान्य निशस्त्रीकरण के प्रस्ताव रखे थे लेकिन 1899 का हेग सम्मेलन ही ऐसा प्रथम महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन था जिसमें सभी बड़ी शक्तियों सहित 28 राष्ट्रों ने भाग लिया और हथियारों में कमी करने का प्रयास किया। प्रथम हेग सम्मेलन में विषैली और दम घोंटने वाली गैस से युक्त अस्त्रों के प्रयोग पर प्रतिबंध लगाने के लिए नियम निर्धारित किए गए। दमदम बुलैट्स (शरीर में जाकर फटने वाली गोलियां) का प्रयोग निषिद्ध करने के लिए भी नियम बनाए गए। 1907 के द्वितीय हेग सम्मेलन में इन्हीं प्रयासों को चालू रखने का प्रयत्न किया गया। दोनों ही हेग सम्मेलनों में निशस्त्रीकरण संबंधी कोई ठोस परिणाम नहीं निकल सका तथापि युद्ध संचालन और युद्ध में बर्बरता कम करने से संबंधित नियमों की आधारशिला रखी गई।

प्रथम महायुद्ध के विनाश के बाद निशस्त्रीकरण के लिए पुनः उपयुक्त वातावरण तैयार हुआ। राष्ट्रपति विल्सन ने शांति–संधियों के लिए अपने 14 सूत्री प्रस्ताव में सुझाव दिया कि शस्त्रीकरण उस सीमा तक किया जाए जितना राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए आवश्यक हो। इस सुझाव को राष्ट्र संघ के विधान में भी स्वीकार किया गया।

दो महायुद्धों के बीच निशस्त्रीकरण की दिशा में राष्ट्र संघ से इतर जो प्रयत्न किए गए उनमें उल्लेखनीय थे– वाशिंगटन सम्मेलन (1921–22), जेनेवा नौ–सैनिक सम्मेलन (1927), लंदन नौ–सैनिक सम्मेलन (1930) एवं द्वितीय लंदन सैनिक सम्मेलन (1935)।

वाशिंगटन सम्मेलन जिसमें अमेरिका, ब्रिटेन, जापान, फ्रांस और इटली के अतिरिक्त चीन, पोलैण्ड, पुर्तगाल आदि भी शामिल हुए, दो महायुद्धों के बीच हुए निशस्त्रीकरण सम्मेलनों में सबसे महत्वपूर्ण और सफल सम्मेलन था। इसमें युद्धपोतों के निर्माण की तत्कालीन प्रतियोगिता को नियंत्रित किया गया। इस सम्मेलन के समझौते का सुपरिणाम यह निकला की नौसैनिक प्रतियोगिता लगभग 10 वर्ष तक के लिए रुक गई अथवा एकदम शिथिल पड़ गई तथा विशाल जंगी जहाजों पर होने वाला भारी व्यय भी कुछ वर्षों के लिए टल गया। छोटे जहाजों के संबंध में कोई समझौता न हो पाने से लड़ाकू जहाज निर्माण की प्रतिस्पर्धा चलती रही और कुछ ही समय में सम्मेलन के आशाजनक परिणाम निराशा में बदल गए।

टिप्पणी

1927 में अमेरिका, ब्रिटेन और जापान का जेनेवा सम्मेलन हुआ। इसमें तीनों राष्ट्रों के विख्यात नौ–सेनापति एवं नौसेना–विशेषज्ञ सम्मिलित हुए जिन से यह आशा करना व्यर्थ था कि वे नौसेना शक्ति घटाने के सच्चे प्रयास करेंगे। काफी विचार–विमर्श और वाद–विवाद हुआ पर अंत में अगस्त 1927 में सम्मेलन की असफलता घोषित कर दी गई।

1930 में अमेरिका, जापान, फ्रांस, इटली, ब्रिटेन आदि राष्ट्रों का एक नौ–सैनिक सम्मेलन लंदन में हुआ। जिसमें एक संधि द्वारा नौ–सैनिक शक्ति नियंत्रण संबंधी महत्वपूर्ण व्यवस्थाएं की गई। जापान को इन व्यवस्थाओं से विशेष आघात पहुंचा और कुछ समय पश्चात उसने स्पष्ट कह दिया कि उसे भी ब्रिटेन एवं अमेरिका की तुलना में समान नौ–सैनिक सुविधाएं दी जाएं अन्यथा वह स्वयं को किसी भी अंतर्राष्ट्रीय समझौते से बाधित नहीं समझेगा। उधर हिटलर के उत्कर्ष एवं अन्यान्य कारणों से अन्य शक्तियों को भी अपनी नौ–सैनिक शक्ति का विस्तार करने को बाध्य होना पड़ा और इस प्रकार लंदन संधि की व्यवस्थाएं अंत में केवल कागज पर ही रह गईं।

नौसेना के निशस्त्रीकरण के संबंध में अंतिम प्रयास के रूप में दिसंबर 1935 में द्वितीय लंदन सम्मेलन आरंभ हुआ जिसमें सभी महाशक्तियों ने भाग लिया। सम्मेलन में जापान ने ब्रिटेन और अमेरिका के बराबर जलसेना रखने की मांग की चूंकि इस प्रस्ताव को मानने के लिए ब्रिटेन एवं अमेरिका सहमत नहीं हुए अतः जनवरी 1936 को जापान सम्मेलन से पृथक हो गया।

25 मार्च 1936 को नौसैनिक शस्त्रों के परिसीमन की संधि पर हस्ताक्षर किए गए। इटली और जापान द्वारा संधि का बहिष्कार कर दिए जाने के कारण इसका कोई व्यावहारिक महत्व नहीं रह गया था।

राष्ट्रसंघ के द्वारा निशस्त्रीकरण के प्रयास

राष्ट्रसंघ ने भी निशस्त्रीकरण की दिशा में काफी प्रयास किए पर अंततोगत्वा असफलता ही हाथ लगी। प्रसंविदा के आठवें अनुच्छेद के दूसरे प्रकरण में उल्लेख था कि ''प्रत्येक राज्य की भौगोलिक व्यवस्थाओं एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखकर परिषद विभिन्न सरकारों द्वारा विचार और कार्रवाई के लिए शस्त्रास्त्रों में कमी की योजना बनाए।''

1920 में अस्थायी मिश्रित आयोग ने स्थायी परामर्श आयोग के सहयोग से अक्टूबर 1924 में अस्तित्वहीन होने से पूर्व निशस्त्रीकरण समस्या को सुलझाने के लिए प्रयत्न किए। अंतिम प्रयत्न में पारस्परिक सहायता संधि का एक प्रारूप तैयार किया गया जिसमें निशस्त्रीकरण को सामूहिक सुरक्षा का मूल आधार माना गया। समस्या के हल के लिए अपेक्षित सामान्य सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया जिनमें कहा गया कि कोई भी निशस्त्रीकरण की कोई भी योजना तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक वह व्यापक रूप से सब पर लागू न हो और अनेक राज्य अपने शस्त्रास्त्रों में तब तक कमी करने की स्थिति में नहीं आ सकते जब तक कि उन्हें सुरक्षा के लिए पर्याप्त आश्वासन ना मिल जाए। यह संकेत दिया गया कि ऐसे आश्वासनों की व्यवस्था पारस्परिक प्रतिरक्षा संधि द्वारा की जा सकती है जिसमें एक राज्य से दूसरे राज्य को सुरक्षा का आश्वासन देते हुए विश्वास दिलाया जाए कि आक्रमण की स्थिति में प्रत्येक राज्य आक्रांत देश की रक्षा के लिए युद्ध करेगा।

टिप्पणी

पारस्परिक सहायता संधि के प्रारूप को सफलता प्राप्त नहीं हुई और तब मध्यस्थता के माध्यम से सुरक्षा और निशस्त्रीकरण का नया मार्ग ढूंढा गया। कोई सफलता न मिलने पर अक्टूबर 1924 में अस्थायी मिश्रित आयोग ने काम करना बंद कर दिया और 1925 में एक प्रारंभिक आयोग का गठन किया गया जिसने दिसंबर 1930 में निशस्त्रीकरण योजना का एक स्थायी प्रारूप प्रस्ताव स्वीकृत कराने में सफलता प्राप्त की। इसकी मुख्य व्यवस्थाएं थीं– बजट द्वारा स्थल युद्ध सामग्री पर नियंत्रण किया जाए, अनिवार्य सैनिक सेवा की अवधि घटाई जाए, सैनिकों की संख्या बिना भेदभाव के नियंत्रित की जाए, रासायनिक एवं जैविक युद्ध पर प्रतिबंध लगाया जाए आदि। इस प्रस्ताव में प्रशिक्षित एवं संरक्षित सेनाओं, स्थल तथा जल सेनाओं के शस्त्रास्त्रों अथवा वायुसेना की सामग्री पर किए जाने वाले व्यय पर कोई प्रतिबंध या नियंत्रण नहीं सुझाया गया था। प्रारंभिक आयोग के प्रस्ताव का व्यावहारिक मूल्य बहुत कम था। फरवरी 1932 के निशस्त्रीकरण सम्मेलन ने उस पर गंभीरता से विचार भी नहीं किया।

प्राथमिक आयोग के प्रस्ताव को मुख्य आधार मानकर जेनेवा में फरवरी 1932 में निशस्त्रीकरण सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें अनेक नये सुझाव प्रस्तुत किए गए। लीग के अधीन पुलिस शक्ति के गठन की सिफारिश की गई जिसका बमवर्षकों पर एकाधिकार हो। आक्रमणकारी को कठोरता से दंड देने एवं पंच निर्णय आवश्यक बनाने की बात कही गई। किसी अनसुलझे विवाद पर अंतिम रूप से कानूनी निर्णय के लिए जोर दिया गया। अस्त्र–शस्त्र एवं मानव शक्ति के जितने भी रूपों पर विवाद हुआ उनमें सबसे अधिक सहमति रासायनिक एवं जैविक हथियारों की आक्रमणकारी प्रकृति पर हुई। यह सम्मेलन अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सका।

अंतिम परिणाम के रूप में निशस्त्रीकरण सम्मेलन पूर्ण रूप से असफल रहा। अक्टूबर 1933 में जर्मनी ने सम्मेलन से बहिर्गमन की घोषणा कर दी और 1 सप्ताह के बाद ही उसने राष्ट्र संघ का भी परित्याग कर दिया। मार्च 1935 में जर्मनी ने वर्साय संधि के निशस्त्रीकरण से संबंधित उपबंधों को खुले रूप से अप्रभावकारी घोषित कर दिया।

द्वितीय महायुद्धोत्तर युग में निशस्त्रीकरण के प्रयास

द्वितीय महायुद्ध के बाद के निशस्त्रीकरण प्रयासों को मुख्यतः से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम भाग के अंतर्गत उस समय तक की वार्ताएं सम्मिलित की जा सकती हैं जब केवल अमेरिका ही अणु बम का स्वामी था, द्वितीय भाग का आरंभ तब से माना जा सकता है जब सोवियत संघ ने भी अणु बम का निर्माण कर लिया। निशस्त्रीकरण के संबंध में पूंजीवादी और साम्यवादी दोनों ही शिविरों में विरोधी दृष्टिकोण देखने को मिलता है और इस दिशा में किए जाने वाले प्रयासों का क्षेत्र संयुक्त राष्ट्र संघ भी है तथा निजी वार्ताएं भी। द्वितीय महायुद्ध के बाद निशस्त्रीकरण की दिशा में जो भी प्रयास हुए उन्हें अग्रलिखित शीर्षकों में व्यक्त करना उपयुक्त होगा–

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में निशस्त्रीकरण की व्याख्या

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में निशस्त्रीकरण को महासभा और सुरक्षा परिषद दोनों की ही कार्य–सूची में सम्मिलित किया गया है। अनुच्छेद 11, 26 एवं 47 में तत्संबंधी व्यवस्थाएं हैं।

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्र संघ ने प्रारंभ से ही निशस्त्रीकरण की समस्या पर ध्यान देना शुरू कर दिया था। 1 जनवरी, 1946 को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अणु शक्ति आयोग की स्थापना की गई जिसके अंतर्गत राष्ट्र परमाणु शक्ति के उत्पादन को अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण में रखने तथा अणुशक्ति का प्रयोग केवल शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए करने को सहमत हो सके और आणविक अस्त्रों के प्रयोग हेतु उत्पादन पर पूरा नियंत्रण लगाया जा सके। अणुशक्ति आयोग को वांछित सफलता नहीं मिली अतः दिसंबर 1946 में महासभा ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसका आशय था कि अणुशक्ति आयोग अपने कार्य में तीव्रता लाए और सुरक्षा परिषद शीघ्रतापूर्वक शस्त्रों तथा उनका नियमन करने की व्यावहारिक योजना बनाए। शीघ्र ही परिषद द्वारा 'परंपरागत शास्त्र आयोग' गठित किया गया जिसका कार्य केवल परंपरागत शास्त्रों को सीमित एवं नियमित करने के प्रस्ताव प्रस्तुत करना ही था।

दोनों आयागों की स्थापना भी हो गई, महाशक्तियों द्वारा विभिन्न प्रस्ताव भी प्रस्तुत किए गए लेकिन सभी प्रयासों का नतीजा कुल मिलाकर शून्य रहा। शांति की दिशा में बढ़ने के विपरीत उल्टे इन प्रयासों ने शीत युद्ध को प्रोत्साहन दिया। अमेरिका ने एक अंतर्राष्ट्रीय आणविक विकास संस्था के निर्माण का सुझाव रखा जो परमाणु शक्ति के उत्पादन से संबंधित कच्चे माल पर भी नियंत्रण लगाए। सोवियत रूस ने सुझाव दिया कि पहले वर्तमान परमाणु अस्त्रों को नष्ट कर दिया जाए और तत्पश्चात सुझावों को कार्यान्वित किया जाए।

1947 से 1954 तक कई छोटे–मोटे प्रयास हुए। 1954 के प्रारंभ में अंतर्राष्ट्रीय अणुशक्ति एजेंसी अस्तित्व में आई जिसमें एक पंच–राष्ट्रीय उप समिति की स्थापना की गई। अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस कनाडा और रूस इसके सदस्य बने तथापि अनेक बैठकों के बावजूद कोई नतीजा नहीं निकल पाया।

जेनेवा सम्मेलन 1955 से 1960

जुलाई 1955 में जेनेवा में रूस, ब्रिटेन, अमेरिका और फ्रांस का सम्मेलन आयोजित हुआ जिसमें अमेरिकी राष्ट्रपति आइजन होवर ने 'उन्मुक्त आकाश योजना' प्रस्तावित की। इसका आशय था कि अमेरिका और रूस दोनों ही अपने सैनिक बजट, उत्पादन, वर्तमान शक्ति एवं उसके विकास की संभावनाओं के बारे में एक दूसरे को सूचना दें तथा परस्पर जांच एवं निरीक्षण के लिए सहमत हों। एक देश को दूसरे देश के आकाश पर निरीक्षण करने का अधिकार दिया जाए। सोवियत प्रधानमंत्री बुल्गानिन ने अमेरिकी योजना को अस्वीकार करते हुए अपना यह प्रस्ताव रखा कि निशस्त्रीकरण को नियमित करने के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण अभिकरण की स्थापना की जाए और उसे निरीक्षण का कार्य सौंपा जाए। जेनेवा सम्मेलन सफल रहा। दिसंबर 1955 में भारत ने अणु शस्त्रों के परीक्षण पर प्रतिबंध लगाने की मांग की और शस्त्रों से संबंधित एक अल्पकालीन संधि का भी सुझाव दिया किंतु अमेरिका ने इसे स्वीकार नहीं किया। जून 1956 में संयुक्त राष्ट्र संघ के निशस्त्रीकरण आयोग की उप समिति की बैठक में रूस ने 3 सूत्रीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया– 1. दो वर्ष के लिए आणविक परीक्षण बंद कर दिए जाएं 2. इस प्रतिबंध को लागू करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय आयोग नियुक्त किया जाए एवं 3. आयोग सहित रूस, अमेरिका और ब्रिटेन प्रशांत महासागर में नियंत्रण चौकी स्थापित

करें। रूसी प्रस्ताव पश्चिमी राष्ट्रों को मान्य नहीं हुए लंदन सम्मेलन को असफल घोषित कर दिया गया।

टिप्पणी

मार्च 1958 में सुप्रीम सोवियत के प्रस्ताव में कहा गया कि सोवियत संघ इस आशा से सभी प्रकार के आणविक परीक्षण बंद कर रहा है कि अन्य देश भी उसका अनुसरण करेंगे किंतु यदि दूसरे देशों द्वारा आणविक परीक्षण बंद न किए गए तो वह अपने परीक्षण पुनः आरंभ कर देगा। अक्टूबर 1958 में जेनेवा सम्मेलन में निशस्त्रीकरण पर अनेक प्रस्ताव प्रस्तुत हुए पर कोई उपयोगी समझौता नहीं हो सका।

1959 में रूसी प्रधानमंत्री ख्रुश्चेव ने संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में पूर्ण निशस्त्रीकरण का प्रस्ताव रखा। उन्होंने सुझाव दिया कि 4 वर्ष की अवधि में सभी राज्य पूर्ण निशस्त्रीकरण कर लें ताकि किसी राज्य के पास युद्ध करने का कोई साधन ना रह जाए। साथ ही उन्होंने एक आंशिक निशस्त्रीकरण की योजना भी प्रस्तावित की जिसमें कहा गया कि नाटो सदस्यों तथा पश्चिमी राज्यों के साथ वारसा पैक्ट के सदस्यों की अनाक्रमण संधि संपन्न हो। एक राज्य, दूसरे राज्य पर आकस्मिक आक्रमण रोकने के बारे में समझौता करें, मध्य यूरोप में अणु आयुध विहीन क्षेत्र कायम किए जाएं आदि। रूसी प्रस्ताव का सब देशों ने स्वागत किया लेकिन पश्चिमी शक्तियों द्वारा इसे मजाक का विषय बना दिया गया और इस प्रकार गतिरोध कायम रहा। 1960 में जेनेवा सम्मेलन हुआ पर असफल रहा।

जुलाई 1960 से 1977 तक

जून 1960 में 10 राष्ट्रों का निशस्त्रीकरण सम्मेलन खत्म हो जाने के कुछ ही महीनों बाद सोवियत रूस ने 50 मेगाटन शक्ति के अणु बम का परीक्षण किया। नवंबर 1961 में महासभा ने यह भारतीय प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि आणविक परीक्षणों पर कोई समझौता न हो पाने तक इनको बंद रखा जाए। एक अन्य प्रस्ताव में महासभा ने कहा कि यदि किसी देश द्वारा अणु शस्त्रों का प्रयोग किया जाए तो उसे चार्टर का उल्लंघन माना जाएगा। मार्च 1962 में विदेश मंत्रियों के सम्मेलन को निशस्त्रीकरण प्रयासों में सफलता नहीं मिली। इसी समय जेनेवा में निशस्त्रीकरण आयोग का सम्मेलन हुआ जिसमें भारत की ओर से प्रस्ताव रखा गया कि आणविक परीक्षणों का पता लगाने के लिए तटस्थ राष्ट्रों के स्टेशन कायम किए जाएं। रूस ने प्रस्ताव रखा कि दोनों ही पक्ष यह समझौता कर लें कि दूसरे देशों की भूमि पर तीन प्रमुख आणविक शक्तियां आणविक अड्डे कायम नहीं करेंगे। मास्को में ब्रिटेन, रूस और अमेरिका ने 15 जुलाई 1963 को 'सीमित परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि' (LTBT/NTBT) पर हस्ताक्षर किए। 10 अक्टूबर, 1963 से संधि लागू हुई। उस समय तक लगभग 100 राष्ट्र संधि पर हस्ताक्षर कर चुके थे। तीनों देशों ने स्वीकार किया कि वे अपने क्षेत्र के अंदर, बाह्य अंतरिक्ष, प्रादेशिक तथा महाद्वीप या वायुमंडल में कोई भी आणविक विस्फोट नहीं करेंगे। इस संधि में भूमिगत परीक्षणों पर प्रतिबंध की बात नहीं की गई इसका मुख्य कारण यह था कि भूमिगत परीक्षणों की जांच के लिए घटनास्थल पर जाना अनिवार्य होता है जिससे राज्य की प्रादेशिक सार्वभौमिकता का उल्लंघन होता है।

परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि ने खुले तौर पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बातचीत का स्वस्थ वातावरण तैयार किया पर मार्च 1964 में जेनेवा निशस्त्रीकरण सम्मेलन का कोई

टिप्पणी

सुपरिणाम नहीं निकला। कुछ दिनों बाद चीन ने अपने प्रथम अणु बम का परीक्षण कर 1963 के जेनेवा समझौते की अवहेलना की। नवंबर 1964 में महासभा ने एक प्रस्ताव में निशस्त्रीकरण आयोग से आग्रह किया कि परमाणु आयुधों के संबंध में शीघ्र ही कोई समझौता होना चाहिए। जुलाई 1965 में जेनेवा में निशस्त्रीकरण आयोग की बैठक पुनः आयोजित की गई लेकिन आयुधों को नियंत्रित करने के तरीकों पर इतने मौलिक मतभेद थे कि कोई फल नहीं निकला।

1968 का परमाणु अस्त्र प्रसार–निरोध संधि संपन्न हुई, अन्य राज्य, खास तौर पर यूरोप के राज्य, इससे आश्वस्त नहीं थे। संधि का मसविदा बड़ा लंबा–चौड़ा था। सारांश में उसकी मूल बातें यह थीं– 1. परमाणु अस्त्र संपन्न राष्ट्र, परमाणु अस्त्र विहीन राष्ट्रों को परमाणु अस्त्र प्राप्त करने में किसी प्रकार की सहायता नहीं देंगे 2. हस्ताक्षरकर्ता परमाणु अस्त्र विहीन राष्ट्र परमाणु अस्त्र बनाने की कोई कोशिश नहीं करेंगे 3. हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्रों को असैनिक कार्यों के लिए परमाणु शक्ति का विकास करने की पूरी छूट रहेगी।

1968 में परमाणु अस्त्र विरोधी संधि के उपरांत 1972 के प्रारंभिक चरण तक निशस्त्रीकरण की दिशा में कोई महत्वपूर्ण प्रगति नहीं की जा सकी। सामरिक अस्त्र परिसीमन वार्ता के दौर चले, संयुक्त राष्ट्रसंघीय निशस्त्रीकरण समिति ने सभी देशों द्वारा जैविक अस्त्र भंडारों को नष्ट कर देने संबंधी प्रारूप तैयार किया लेकिन कुल मिलाकर परिणाम निराशाजनक रहे, मई 1972 के अंतिम सप्ताह में अमेरिकी राष्ट्रपति निक्सन ने मास्को की यात्रा की और दोनों देशों के बीच रूस–अमेरिका परमाणु परिसीमन संधि, 1972 संपन्न हुई। इस ऐतिहासिक संधि में दोनों महाशक्तियों ने एक दूसरे की शक्ति का सम्मान करते हुए आत्मविश्वास पर आधारित एक नया संतुलन कायम किया। इस पंचवर्षीय संधि में जो राष्ट्रीय हितों के प्रतिकूल प्रमाणित होने पर किसी भी पक्ष द्वारा 6 महीने के नोटिस पर निरस्त की जा सकती है, स्वीकार किया कि– 1. नए अंतर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों का निर्माण नहीं किया जाएगा, 2. कोई भी पक्ष हल्के या पुराने किस्म के भू–प्रक्षेपास्त्र–स्थलों को सुधार कर भारी अंतर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र–स्थलों का रूप देने के लिए योजना नहीं बनाएंगे 3. दोनों पक्ष पनडुब्बियों के प्रक्षेपास्त्रों तथा प्रक्षेपकों और प्रक्षेपास्त्र युक्त पनडुब्बियों का निर्माण नहीं करेंगे हालांकि निर्माणाधीन का काम पूरा करने की छूट रहेगी 4. संधि की व्यवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए आक्रामक प्रक्षेपास्त्रों और प्रक्षेपकों का आधुनिकीकरण करने अथवा स्थानापन्न अस्त्र बनाने का अधिकार दोनों देशों को रहेगा एवं 5. संधि के अनुपालन की जांच के लिए हर एक राष्ट्र केवल वही विधियां अपनाएगा जो अंतर्राष्ट्रीय कानून के मान्य सिद्धांतों के अनुरूप हों।

वास्तव में इस संधि से भी निशस्त्रीकरण की दिशा में कोई ठोस प्रगति नहीं हुई। श्रीमती गांधी की टिप्पणी थी कि अस्त्र–परिसीमन अपने आप में सही चीज है लेकिन दुनिया के बाकी हिस्सों में शांति स्थापना की दिशा में इससे कोई सहयोग नहीं मिलता। इसके अलावा संधि इतनी आंशिक है कि परमाणु अस्त्रों पर खर्च होने वाली राशि में कमी होने की कोई संभावना नहीं है। प्रक्षेपास्त्रों के क्षेत्र में आधुनिकीकरण और उन्हें बेहतर या अधिक घातक बनाने की प्रतियोगिता कायम रहेगी। मास्को परमाणु परिसीमन संधि के संपन्न होने के बाद 27 जून, 1973 को चीन ने एक परमाणु

टिप्पणी

विस्फोट किया जो 3 मेगाटन टी. एन. टी. शक्ति का था। 3 जुलाई 1974 को एक 10 वर्षीय आणविक आयुध परिसीमन समझौता हुआ उसे 31 मार्च 1976 से लागू किया जाना निश्चित किया गया। समझौते के अनुसार रूस और अमेरिका, दोनों ने 150 किलो टन से अधिक के भूमिगत आणविक परीक्षणों को रोकने तथा अपने–अपने प्रक्षेपास्त्रों पर नई सीमा लगाने का निश्चय प्रकट किया। 3 अक्टूबर, 1977 से 2 अक्टूबर, 1978 के बीच एक बार और उसके उपरांत 5 वर्ष में एक बार एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित कर पाने का प्रावधान किया। यह कार्य परस्पर सूचना के आदान–प्रदान के अंतर्गत ही किया जा सकेगा। 7 जून, 1976 को एक नई धारा जोड़कर इस संधि को अधिक लाभकारी बना दिया गया और स्थल का निरीक्षण करने पर दोनों देश सहमत हो गए।

1977 में महाशक्तियों में हथियारों की होड़ एक बार फिर शुरू हो गई। अमेरिका ने बी–1 बमवर्षक बनाने का निर्णय तो लिया ही साथ ही यह निर्णय भी किया कि वह 'क्रूज' प्रक्षेपास्त्र का निर्माण करेगा। इससे पहले उसने न्यूट्रॉन बम का परीक्षण भी किया था। सोवियत अक्टूबर क्रांति की 60 वीं वर्षगांठ के अवसर पर 2 नवंबर को ब्रेझनेव ने यह प्रस्ताव किया कि सभी देश एक अंतर्राष्ट्रीय समझौते के अंतर्गत परमाणु अस्त्रों का निर्माण एक साथ रोक दें। उन्होंने आग्रह भी किया कि एक निश्चित अवधि के लिए न केवल सभी प्रकार के परीक्षणों पर प्रतिबंध लगाया जाए बल्कि साथ ही शांतिपूर्ण कार्यों के लिए किए जाने वाले परमाणु विस्फोटों को भी स्थगित किया जाए। ब्रेझनेव ने यह सुझाव दिया कि जिन देशों के पास परमाणु अस्त्रों के भंडार हैं उनमें धीरे–धीरे कटौती करें और अंत में उन्हें बिल्कुल समाप्त कर दें। अमेरिकी राष्ट्रपति जिम्मी कार्टर ने ब्रेझनेव के प्रस्ताव का यह कहकर स्वागत किया कि हमें आशा है कि बिना बहुत विलंब किए हम परमाणु परीक्षणों पर व्यापक प्रतिबंध लगाने में सफल होंगे जिससे पृथ्वी पर इस (परमाणु शक्ति) का खतरा निर्मूल किया जा सकेगा। वास्तव में केवल भाषण होते रहे– ठोस रूप में कुछ भी नहीं किया गया।

1978 में संयुक्त राष्ट्र संघ का निशस्त्रीकरण सम्मेलन

मार्च 1978 में जेनेवा निशस्त्रीकरण सम्मेलन हुआ जो किसी ठोस परिणाम तक नहीं पहुंच सका। सम्मेलन में सोवियत विदेश मंत्री आंद्रे ग्रोमिको ने इस बात पर जोर दिया कि जब तक अस्त्रों की होड़ पर रोक नहीं लगती तब तक इस तरह का सम्मेलन बेमानी है। सोवियत विदेश मंत्री ने अपने भाषण में सुझाव प्रस्तुत किए– सभी परमाणु अस्त्रों के उत्पादन को समाप्त करना, सभी किस्म के विनाशकारी शस्त्रों पर प्रतिबंध और उनके उत्पादन को समाप्त करने की दिशा में कदम उठाना तथा अधिक विनाशकारी परंपरागत हथियारों को त्यागने का आश्वासन।

चीन ने भी इस सम्मेलन की बहस में खुलकर भाग लिया। उसने पांच सूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत किया– गैर परमाणु या परमाणु शक्ति संपन्न देशों के विरुद्ध परमाणु अस्त्रों का इस्तेमाल न करने का आश्वासन, विदेशों से भी सशक्त सेनाओं की वापसी, अमेरिका और सोवियत संघ द्वारा परमाणु तथा परंपरागत अस्त्रों के निर्माण की होड़ समाप्त करना, किसी पड़ोसी देश की सीमा पर न तो सैनिक तैनात करना और न ही सैन्य अभ्यास को बढ़ावा देना तथा किसी भी बहाने अन्य देशों पर आक्रमण करने से परहेज करना।

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्र में गुटनिरपेक्ष देशों ने एक सात सदस्यीय संपर्क गुट की स्थापना की ताकि परमाणु अस्त्रों का निर्माण करने वाले देशों से निशस्त्रीकरण कार्यक्रमों को लागू करने हेतु अधिकतम रियायतें प्राप्त की जा सकें। ये देश थे– भारत, श्रीलंका, नाइजीरिया, मिस्र, यूगोस्लाविया, ब्राजील और अर्जेंटाइना।

भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री देसाई ने 9 जून के अपने भाषण में घोषणा की– हमने अपने आप यह संकल्प किया है कि परमाणु हथियारों का निर्माण नहीं करेंगे और न ही इन्हें कहीं से प्राप्त करेंगे। श्री देसाई ने संयुक्त राष्ट्र सभा में निशस्त्रीकरण के संबंध में एक चार सूत्रीय योजना भी प्रस्तुत की–

(क) एक घोषणा की जाए जिसमें अस्त्र औद्योगिकी में अनुसंधान सहित परमाणु प्रौद्योगिकी के सैनिक कार्यों में प्रयोग को गैरकानूनी घोषित किया जाना चाहिए।

(ख) परमाणु अस्त्रों की गुणात्मक और संख्यात्मक सीमा बांध दी जाए और वर्तमान भंडारों पर तुरंत अंतर्राष्ट्रीय निरीक्षण द्वारा रोक लगा दी जाए।

(ग) सभी परमाणु अस्त्रों को पूरी तरह समाप्त करने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए हथियारों के भंडारों को धीरे–धीरे कम करने के लिए एक समयबद्ध कार्यक्रम निर्धारित किया जाए जिसकी अवधि 1 दशक से अधिक नहीं होनी चाहिए।

(घ) एक व्यापक परीक्षण निषेध संधि की जाए जिसके अंतर्गत इस संधि का उल्लंघन रोकने के लिए सुरक्षात्मक उपायों की व्यवस्था होनी चाहिए जो मेरे विचार से केवल स्वतंत्र निरीक्षण के द्वारा ही हो सकती है।

श्री देसाई ने कहा, यह प्रतिबंध वायुमंडल में, भूमिगत, समुद्र में और अंतरिक्ष में किए जाने वाले परीक्षणों पर लागू होना चाहिए। सुरक्षात्मक उपायों की व्यवस्था विश्वव्यापी और भेदभावहीनता पर आधारित होनी चाहिए। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि परीक्षण प्रतिबंध और सुरक्षात्मक उपायों की व्यवस्था वास्तविक रूप में निष्पक्ष हो। यह राजनीति को लाए बिना लागू की जाए।

कार्टर व ब्रेझनेव द्वारा साल्ट 2 पर हस्ताक्षर, जून 1979–

1969 में अमेरिका और सोवियत संघ के बीच आरंभ हुई सामरिक अस्त्र परिसीमन वार्ता पिछले 10 वर्षों में किसी ठोस नतीजे पर नहीं पहुंची। 3 अक्टूबर, 1972 को समझौता–1 के प्रभावी होने के एक महीने बाद नवंबर 1972 में आरंभ हुए समझौता–2 वार्ता का प्रोत्साहित करने वाला परिणाम भी तभी निकल सका जब 18 जून, 1979 को वियना में कार्टर एवं ब्रेझनेव ने साल्ट–2 (सामरिक आयुध परिसीमन की दूसरी संधि) पर हस्ताक्षर कर दिए। साल्ट–2 अथवा समझौता–2 को भी अस्त्र परिसीमन की दिशा में कोई ठोस कदम नहीं कहा जा सकता तथापि यह अवश्य था कि दोनों नेताओं ने संपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय स्थिति में सुधार की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया। समझौता–2 में समझौता –1 की खामियों को सुधारने का प्रयास किया गया।

1980 से 1985 तक की घटनाएं

वर्ष 1980 में निशस्त्रीकरण समझौतों के प्रति संदेह और आरोप–प्रत्यारोप का वातावरण बना रहा। राष्ट्रपति रीगन ने सर्वप्रथम नाटो को शक्तिशाली बनाने और सोवियत संघ

टिप्पणी

के एस.एस. 20, एस.एस. 04 तथा एस.एस. 05 प्रक्षेपास्त्रों का मुकाबला करने के लिए न्यूट्रॉन बम के निर्माण का फैसला किया। सोवियत संघ द्वारा रीगन के इस निर्णय की बहुत तीखी प्रतिक्रिया का होना संभावित था। फरवरी 1981 में सोवियत संघ कम्युनिस्ट पार्टी की 26वीं कांग्रेस के समक्ष राष्ट्रपति ब्रेझनेव ने अंतर्राष्ट्रीय विषयों पर अपनी 8 सूत्रीय योजना प्रस्तुत की जिसके निशस्त्रीकरण संबंधित सूत्र नंबर 4, 5, 6, और 7 इस प्रकार थे–

(क) जहां तक सामरिक अस्त्र परिसीमन संधि (साल्ट) का प्रश्न है, हम अविलंब अमेरिकी प्रशासन से वार्ता के लिए तैयार हैं। क्षेत्रों में निश्चित परिणाम प्राप्त किए जा चुके हैं सोवियत संघ उसे वार्ता पटल पर रखना चाहेगा।

(ख) नई पनडुब्बियों के फैलावों को सीमित करने के लिए अमेरिका की ओहियो किस्म की तथा कुछ वैसी ही सोवियत संघ की पनडुब्बियों के बारे में हम समझौते के लिए तैयार हैं। हम वर्तमान प्रक्षेपास्त्रों के आधुनिकीकरण तथा नए विकास पर प्रतिबंध लगाने के लिए भी सहमत हैं।

(ग) जब तक कोई समझौता नहीं होता तब तक यूरोप में स्थापित मध्यम दूरी के परमाणु प्रक्षेपास्त्र अस्त्रों का फैलाव रोक दिया जाए। इसके साथ ही अटलांटिक संगठन (नाटो) का अपनी गतिविधियों को सीमित करने का भी हमें आश्वासन दिलाया जाना चाहिए।

(घ) लोगों को परमाणु युद्ध के मानवता पर विनाशकारी प्रभाव से अवगत कराना चाहिए। इस कार्य के लिए एक सक्षम अंतर्राष्ट्रीय समिति गठित की जाए जो परमाणु के अंनर्थ से होने वाले प्रभावों का प्रचार–प्रसार करें।

ब्रेझनेव के प्रस्तावों का संयुक्त राष्ट्र महासचिव तथा अनेक राजनीतिक क्षेत्रों में स्वागत किया गया लेकिन अमेरिकी नेतृत्व सोवियत इरादों के प्रति सशंकित रहा। राष्ट्रपति रीगन ने नवंबर 1981 में अपना महत्वपूर्ण विदेशनीतिक भाषण दिया और यह कहा कि 30 नवंबर से जेनेवा में शुरू होने वाली अस्त्र नियंत्रण वार्ताओं को दृष्टि में रखते हुए उन्होंने सोवियत नेता को एक पत्र में निम्नलिखित 4 सूत्रीय प्रस्ताव पेश किया है–

1. यदि सोवियत संघ अपने एस.एस. 20, एस.एस. ब्रेझनेव (राकेटों) को विखंडित कर दे तो अमरीका भी अपनी पर्शिंग–2 तथा भूमि आधारित अन्य प्रक्षेपास्त्रों की तैनातगी को निरस्त करने के लिए तैयार है।
2. अमेरिका अगले वर्ष यथासंभव शीघ्र ही ''सामरिक शस्त्रों को घटाने के बारे में वार्ताएं'' शुरू करने का प्रस्ताव रखता है क्योंकि उद्देश्य सामरिक (महाविनाशक परमाणविक) अस्त्रों की संख्या में भारी कटौती करना होगा इसलिए इन वार्ताओं को ''सामरिक अस्त्र परिसीमन वार्ताएं'' (साल्ट) न कह के ''सामरिक अस्त्र परिघटन वार्ताएं (स्टटेसजिक आर्म्स रिडिक्शन टॉक्स–स्टार्ट) कहा जाएगा।
3. शांति बनाए रखने के लिए यह भी जरूरी है कि अनिश्चय या गलत बर्ताव के कारण अचानक आक्रमण एवं युद्ध की संभावना को भी कम किया जाए। परमाणु अस्त्रों को नियंत्रित करने के बारे में 30 नवंबर, 1981 से जेनेवा में दोनों महाशक्तियों के बीच वार्ताओं का जो नया कदम शुरू हुआ वह पहले ही दौर

टिप्पणी

के बाद स्थगित कर दिया गया। 6 मार्च, 1982 को सोवियत नेता ब्रेझनेव ने यूरोप में परमाणु शस्त्रों के प्रसार पर रोक की एकतरफा घोषणा की। ब्रेझनेव ने स्पष्ट कर दिया कि यदि अमेरिकी सरकार और उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन (नाटो) के सहयोगी देश विश्व शांति की अनदेखी करते हुए सभी क्षेत्रों पर हमला करने वाले सामरिक महत्व के परमाणु अस्त्र अपने–अपने इलाकों में बराबर लगाते रहे तो स्थिति बिल्कुल बदल जाएगी। 17 मार्च, 1982 को अमेरिकी राष्ट्रपति रीगन ने सोवियत फैसले को निरर्थक बताकर सोवियत नेता के इरादों पर अविश्वास प्रकट किया।

भारत ने भी कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पेश किए। इनमें नाभिकीय हथियारों पर रोक से संबंधित एक संकल्प का मसौदा भी था। इनमें कहा गया कि नाभिकीय हथियार रखने वाले सभी राज्य नाभिकीय हथियारों की रोक पर सहमत हों और उनके प्रयोग के निषेध पर एक अभिसमय स्वीकार किया जाए। श्रीमती इंदिरा गांधी ने निशस्त्रीकरण विषयक दूसरे विशेष अधिवेशन को एक संदेश में निम्नलिखित ठोस कार्यक्रम का सुझाव दिया–

1. अधिवेशन में नाभिकीय हथियारों का प्रयोग न करने से संबंधित एवं बाध्यकारी अभिसीमा पर बातचीत की जाए।
2. नाभिकीय हथियारों के मौजूदा भंडारों में अन्ततः कमी करने की दिशा में सबसे पहले नाभिकीय हथियारों के उत्पादन और विस्तार, प्रसार पर पूरी तरह रोक लगाई जानी चाहिए।
3. सभी प्रकार के नाभिकीय हथियारों के परीक्षण तत्काल निलंबित कर दिए जाने चाहिए।
4. निशस्त्रीकरण वार्ता निर्धारित समय सीमा के अंदर सामान्य और पूर्ण निशस्त्रीकरण संधि संपन्न कराने के विषय पर चर्चा करें जिन पर कि सातवें दशक के प्रारंभिक वर्षों में स्वीकृत सिद्धांतों और संघीय प्रारूपों में संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत समाजवादी गणतंत्र संघ के बीच विचार–विमर्श हुआ था।
5. संयुक्त राष्ट्र और इसके विशेष अभिकरणों को, नाभिकीय युद्ध के खतरों, विश्व अर्थव्यवस्था पर हथियारों की होड़ के दुष्प्रभावों तथा निशस्त्रीकरण के सकारात्मक पहलुओं और विकास के साथ उसके संबंध के बारे में लोगों को शिक्षित करने में पहल करनी चाहिए।

दूसरा विशेष अधिवेशन विफल रहा, खासतौर पर प्रमुख महाशक्तियों ने हथियारों और विशेष रूप से नाभिकीय हथियारों की होड़ रोकने के लिए किसी ठोस और व्यावहारिक उपायों को स्वीकार करने से इंकार कर दिया। जुलाई 82 के मध्य निशस्त्रीकरण पर महाशक्तियों के बीच जेनेवा वार्ता पुनः शुरू हुई। जेनेवा वार्ता में प्रस्ताव–प्रतिप्रस्ताव रखे जाते रहे लेकिन कोई परिणाम निकलता नजर नहीं आया।

5 जनवरी, 1984 को सोवियत संघ के विदेश मंत्री आन्द्रेई ग्रोमिको ने नाटो से अस्त्र संधि का प्रस्ताव किया जिसका कोई परिणाम नहीं निकला। 18 जनवरी, 1984 को स्टाकहोम में 35 राष्ट्रों के यूरोपीय निशस्त्रीकरण सम्मेलन में अमेरिकी

टिप्पणी

विदेश मंत्री जार्ज शुल्ज और सोवियत विदेश मंत्री ग्रोमिको के बीच वार्ता हुई जो विफल हुई। 25 जनवरी, 1984 को सोवियत राष्ट्रपति आन्द्रोपोव ने परमाणु अस्त्रों का उत्पादन बंद करने संबंधी अपना प्रस्ताव अमेरिकी राष्ट्रपति के समक्ष रखा जिसे ठुकरा दिया गया।

13 जनवरी को चेरेनेन्को सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव निर्वाचित हुए। 18 फरवरी को दोनों महाशक्तियों के बीच आणविक हथियारों की रोक पर पुनः बातचीत हुई। 11 अप्रैल, 1984 को चेरेनेन्को सोवियत संघ के राष्ट्रपति भी निर्वाचित हो गए। 5 मई, 1984 को चेरेनेन्को ने पश्चिमी देशों के मध्य यूरोप में अस्त्रों की कटौती संबंधी प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। 30 जून, 1984 को सोवियत संघ द्वारा अस्त्रों की कटौती पर अमेरिका से वार्ता पर पुनः असहमति व्यक्त की गई।

सितंबर 1984 में सोवियत संघ ने भूमि से मार करने वाली लंबी दूरी के क्रूज प्रक्षेपास्त्रों का सफल परीक्षण किया। उल्लेखनीय है कि 1983 में नवंबर से अमेरिका ने पश्चिमी यूरोप में क्रूज व पर्शिंग प्रक्षेपास्त्रों को तैनात करने का कार्य आरंभ किया। सोवियत राष्ट्रपति कोंस्तेन्तिन चेरेनेन्को ने उत्तरी यूरोप तथा बालकन क्षेत्र को परमाणु अस्त्रों से मुक्त तथा मध्य यूरोप से प्रक्षेपास्त्रों को हटाने की मांग की। सोवियत अक्टूबर क्रांति की 67 वीं वर्षगांठ के अवसर पर ग्रोमिको ने कहा कि सोवियत संघ परमाणु शस्त्रों की यथास्थिति को बनाए रखने को तैयार है।

शस्त्र परिसीमन पर दोनों महाशक्तियों के बीच नवंबर 1983 से भंग जेनेवा वार्ता उच्च–स्तर पर 7 जनवरी, 1985 को पुनः आरंभ हो गई। जेनेवा वार्ता के दौरान और बाद में भी अमेरिका ने स्पष्ट कर दिया कि वह स्टार वार कार्यक्रम को न तो समाप्त करेगा और न उसमें ढील देगा। अमेरिका आक्रमक परमाणु शस्त्र कार्यक्रम को जारी रखेगा और साथ ही दूसरी ओर वह सोवियत संघ के साथ अनाक्रमण संधि पर भी वार्ता करेगा। सोवियत नेता गोर्बाचोव ने अमेरिका की आलोचना करते हुए कहा कि अमेरिकी नेता सुरक्षा की बातें तो करते हैं लेकिन हमले की भी तैयारी करते हैं। इस सारे घटनाक्रम के दौरान दोनों महाशक्तियों के बीच शस्त्रों को सीमित करने हेतु वार्ता जेनेवा में चलती रही। 30 अप्रैल, 1985 को यह वार्ता बगैर किसी प्रगति के स्थगित हो गई। अमेरिका और रूस वार्ता को एक माह बाद पुनः आरंभ करने को सहमत हो गए। 29 जुलाई, 1985 को सोवियत संघ के द्वारा परमाणु परीक्षण पर जनवरी 1986 तक एकतरफा रोक की घोषणा कर दी गई। सोवियत नेता ने स्पष्ट किया कि यदि अमेरिका भी इसी दौरान परमाणु परीक्षण नहीं करेगा तो सोवियत संघ आगे भी इस नीति पर चल सकता है।

14 सितंबर, 1985 को अमेरिका ने अंतरिक्ष में उपग्रह को मार गिराने वाले एक उपग्रह वेधन रॉकेट का सफल परीक्षण किया। सोवियत संघ ने निशस्त्रीकरण संधि के अपने प्रस्ताव में कहा कि वह अगले पांच वर्ष के दौरान अपने प्रक्षेपास्त्रों और बमवर्षक विमानों में 40% कटौती कर सकता है बशर्ते कि अमेरिका इस दौरान 'स्टार वार' शस्त्रों के परीक्षण पर रोक लगा दे। 25 नवंबर, 1985 को फ्रांस ने दक्षिण प्रशांत महासागर में स्थित मुररोवा अटाल में सात किलो टन शक्ति का एक और परीक्षण किया। यह फ्रांस का अब तक का चौहत्तरवा परमाणु परीक्षण था। फ्रांस के प्रधानमंत्री ने एक बयान में

कहा कि ''उनका देश अपनी पृथक परमाणु शक्ति विकसित करने का कार्यक्रम जारी रखेगा'' इस बीच 19–20 नवंबर, 1985 को रीगन और गोर्बाचोव के बीच जेनेवा में वार्ता संपन्न हुई। वार्ता के कोई ठोस परिणाम नहीं निकले। संयुक्त बयान में दोनों नेताओं ने स्वीकार किया कि मुख्य मुद्दों पर दोनों देशों के बीच गंभीर मतभेद हैं तथापि निकट भविष्य में वार्ता हेतु दोनों पुनः मिलेंगे।

टिप्पणी

दिसंबर 1985 में संयुक्त राष्ट्र सभा ने 116 मतों से प्रस्ताव पारित किया कि सभी प्रकार के परमाणु परीक्षण बंद किए जाएं। अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस व ग्रेनाडा ने विपक्ष में मत दिया जबकि 29 राज्यों ने मतदान में भाग नहीं लिया।

1986–1987 की घटनाएं

रूस का त्रि–चरणीय निशस्त्रीकरण प्रस्ताव– रूस के नेता गोर्बाचोव ने वर्ष 1986 में निशस्त्रीकरण के जो प्रस्ताव रखे उनका अनेक देशों ने स्वागत किया। गोर्बाचोव ने तीन चरणों में निशस्त्रीकरण करने की एक दीर्घकालीन समयबद्ध योजना रखी–

प्रथम चरण– अगले पांच से आठ वर्षों के दौरान सोवियत संघ और अमेरिका एक दूसरे के प्रदेशों तक पहुंचने में सक्षम अपने नाभिकीय हथियारों में आधी कटौती करेंगे। इस तरह के शेष प्रक्षेपण वाहनों में दोनों पक्षों में से प्रत्येक 6000 से अधिक विस्फोटक शीर्ष नहीं रखेंगे। परंतु इस प्रकार की कटौती तभी संभव है जब सोवियत संघ और अमेरिका पारस्परिक रूप से अंतरिक्ष प्रहारक हथियारों का विकास, परीक्षण और तैनाती का परित्याग कर दें। इसके साथ ही अमेरिका को अपने सामरिक व मध्यम परास के प्रक्षेपास्त्रों को दूसरे देशों में स्थानांतरित न करने की वचनबद्धता ग्रहण करनी होगी। दोनों देशों में हर प्रकार के नाभिकीय विस्फोटों को बंद करने पर सहमत होनी चाहिए।

द्वितीय चरण– सोवियत–संघ और अमेरिका चयन के दौरान परस्पर सहमति प्राप्त कटौतियां करेंगे। वे अपने–अपने हथियारों में 50% की कटौती पूरी कर लेने के बाद एक अन्य महत्वपूर्ण कदम उठाएंगे– सभी नाभिकीय शक्तियां अपने रणनीतिक परमाणु हथियारों अर्थात 1000 किलोमीटर तक मार करने वाले हथियारों का उन्मूलन करेंगी सभी नाभिकीय शक्तियां परमाणु हथियारों का परीक्षण बंद कर देंगी। नए भौतिक सिद्धांतों पर आधारित गैर नाभिकीय हथियारों के विकास पर भी प्रतिबंध लगाया जाएगा।

तृतीय चरण– इस चरण में शेष परमाणु हथियारों का पूरी तरह उन्मूलन कर दिया जाएगा धरती पर कोई भी परमाणु हथियार शेष नहीं रहेगा। विश्व के अन्य देशों ने गोर्बाचोव के प्रस्तावों को सही दिशा में सही कदम बताया।

परमाणु परीक्षणों पर रीगन का प्रस्ताव मार्च 1986–अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने सोवियत नेता मिखाइल गोर्बाचोव को परमाणु परीक्षणों पर एक नया प्रस्ताव 15 मार्च, 1986 को भेजा। रीगन ने प्रस्ताव किया कि परमाणु परीक्षणों का पता लगाने की अमेरिका में विकसित नई तकनीकों को रूस देखे। उन्होंने गोर्बाचोव को निमंत्रण दिया कि वह अप्रैल माह के तीसरे सप्ताह में नवादा परमाणु परीक्षण केंद्र में होने वाले परीक्षण को देखने के लिए अपने देश के किसी विशेषज्ञ को भेजें। रीगन ने 6 राज्यों द्वारा जारी परमाणु निशस्त्रीकरण की अपील को रद्द कर दिया। अमेरिकी रक्षा

मंत्री केस्पर वाइन बरगर ने कहा कि यह अव्यावहारिक है। अमेरिका ने गोर्बाचोव के परमाणु निशस्त्रीकरण करने के जनवरी 1986 के प्रस्तावों पर भी कोई रचनात्मक रवैया नहीं अपनाया। इसके विपरीत अमेरिका अपने परमाणु विस्तार व स्टार वार कार्यक्रम पर आगे बढ़ने की योजना पर अमल करता रहा। अमेरिका ने सोवियत नेता गोर्बाचोव के 6 मार्च 1986 के प्रस्ताव को जिनके द्वारा भूमिगत परमाणु परीक्षण को बंद करना था, अस्वीकार कर दिया।

टिप्पणी

अमेरिका द्वारा परमाणु परीक्षण अप्रैल 1986 – 10 अप्रैल को अमेरिका ने नवादा में भूमिगत परमाणु परीक्षण किया। उसकी क्षमता 20 किलो टन थी। अमेरिका के इस कार्य की अनेक देशों ने आलोचना की। सोवियत संघ ने अपने प्रस्ताव में कहा कि इस स्थिति में वह भी परमाणु परीक्षणों को आरंभ करेगा। वो अपने मित्र देशों की सुरक्षा की उपेक्षा नहीं कर सकता।

नाटो द्वारा अमेरिकी सैनिक शासन योजना का अनुमोदन– नाटो ने मई 1986 में अमेरिका की इस योजना पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दी जिसके अंतर्गत अमेरिका नाटो अड्डों पर प्राणघातक रासायनिक शस्त्रों को तैनात करेगा। तीन नाटो देशों – नार्वे, डेनमार्क व नीदरलैंड ने इस योजना का विरोध किया। 17 वर्ष बाद पहली बार अमेरिका में रासायनिक शस्त्रों का फिर से उत्पादन किया जाना तय हुआ। यह आशंका व्याप्त हो गई कि रीगन की इस योजना का परिणाम यह होगा कि रूस भी ऐसे ही हथियारों को पूर्वी यूरोप में तैनात करना शुरू कर देगा। इस प्रकार परमाणु मिसाइलों के बाद अब नाटो व वारसा पैक्ट देशों के बीच रासायनिक शस्त्रों में भी प्रतिस्पर्धा आरंभ हो जाएगी।

अमेरिका द्वारा घातक हथियारों का निर्माण– अमेरिका तीसरी पीढ़ी के सैकड़ों प्रकार के अत्याधुनिक परमाणु हथियार विकसित करने की योजना पर आगे बढ़ता रहा। कैलिफोर्निया के लाटेंस लिवरमोन नेशनल लेबोरेटरी के वैज्ञानिकों ने कहा कि हाइड्रोजन बम से भी अधिक खतरनाक हथियारों के विकास पर अनुसंधान किया जा रहा था। हथियारों के विकास पर हो रहे अनुसंधान के कारण ही अमेरिका परमाणु परीक्षणों पर प्रतिबंध लगाने के लिए सोवियत संघ से संधि करने का विरोध कर रहा था।

रीगन–गोर्बाचोव वार्ता विफल अक्टूबर 1986– परमाणु निशस्त्रीकरण एवं अंतरिक्ष युद्ध कार्यक्रम को रोकने हेतु रिक्जेविक वार्ता असफल सिद्ध हुई। वार्ता चार चरणों में 11 मई से 12 अक्टूबर के बीच हुई। दोनों नेताओं ने वार्ता के असफल होने के लिए एक दूसरे को दोष दिया। गोर्बाचोव ने कहा कि अमेरिका का रवैया हठीला था। उन्होंने कहा कि यदि अमेरिका अपने एस.डी.आई. (अंतरिक्ष कार्यक्रम) को त्याग देता तो वे पूर्वी व पश्चिमी यूरोप में तैनात परमाणु प्रक्षेपास्त्रों को नष्ट करने को तुरंत सहमत होने को तैयार हो जाते। दूसरी ओर अमेरिकी राष्ट्रपति रीगन ने कहा कि रूस ने अमेरिका के रचनात्मक सुझावों को नहीं माना। उन्होंने स्पष्ट कहा कि अमेरिका अपने अंतरिक्ष युद्ध कार्यक्रम को प्रयोगशाला तक सीमित रखने को कभी तैयार नहीं होगा।

गोर्बाचोव इस बात के लिए राजी थे कि परमाणु शस्त्र भंडार में कटौती की प्रक्रिया के साथ अमेरिका चाहे तो अपने परमाणु परीक्षण जारी रखे। शेष कटौती की

टिप्पणी

जांच के लिए रीगन ने जो कार्यक्रम सुझाया उसकी सारी शर्तें मान ली ताकि इस विषय में व्यापक समझौता हो जाए। गोर्बाचोव ने निम्न प्रस्ताव रखे–

(अ) महाशक्तियों के परमाणु शस्त्रागार में 50% की कटौती।

(ब) अमेरिका के अग्रिम अड्डों पर तैनात हथियारों और मध्यम प्रक्षेपास्त्रों को गणना में शामिल न करना।

(स) रीगन के प्रस्ताव को स्वीकृति, जिसके अनुसार यूरोप में तैनात सभी सोवियत अमेरिकी प्रक्षेपास्त्र हटा दिए जाएंगे।

(द) वारसा संधि द्वारा एक हजार किलोमीटर परास के प्रक्षेपास्त्रों को वर्तमान संख्या तक सीमित कर देना।

(य) एशिया के मध्यम दूरी के सोवियत प्रक्षेपास्त्र 100 तक सीमित करना। इसके बदले अमेरिका अपने क्षेत्र में सोवियत संघ लक्षित स्थापित प्रक्षेपास्त्रों को इसी संख्या में हटाए।

रीगन ने अपने बयान में कहा कि परमाणु प्रक्षेपास्त्रों से स्वतंत्र विश्व के बचाव के लिए वे 'रक्षात्मक प्रणाली' विकसित करने के अधिकार को छोड़ नहीं सकते। तब तक अमेरिका हर वर्ष अपने परमाणु प्रक्षेपास्त्र नष्ट करके अपनी नेकनीयती सिद्ध कर सकते हैं।

विश्व के अनेक देशों ने वार्ता की असफलता पर दुख प्रकट किया। साथ ही उन्होंने आशा प्रकट की कि समय रहते दोनों ही महाशक्ति किसी समझौते पर पहुंच जाएंगी। उधर अमेरिका के 7000 वैज्ञानिकों ने अंतरिक्ष युद्ध कार्यक्रम का विरोध किया उन्होंने अंतरिक्ष युद्ध कार्यक्रम से संबंधित किसी भी परियोजना के लिए धन न लेने और अनुसंधान न करने का संकल्प लिया। ये 7000 वैज्ञानिक देश के 100 अनुसंधान केंद्रों में फैले हुए थे। इनमें 15 नोबल पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिक भी थे।

महासभा द्वारा परमाणु हथियारों पर प्रस्ताव पारित– संयुक्त राष्ट्र महासभा समिति ने नवंबर 1986 में भारत द्वारा रखे गए उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जिसमें उसने परमाणु हथियार वाले सभी राष्ट्रों से आग्रह किया था कि वह परमाणु हथियारों पर रोक लगाने पर सहमत हो जाएं। अमेरिका, ब्रिटेन व फ्रांस ने प्रस्ताव के विरोध में मत दिया।

रूस द्वारा 'स्टार वॉर' के विरुद्ध तैयारी– अमेरिका के राष्ट्रपति रीगन की बार–बार इस घोषणा के बाद कि वह स्टार वार कार्यक्रम समाप्त नहीं करेंगे, सोवियत संघ ने भी इसके विरुद्ध जवाबी कार्रवाई आरंभ कर दी। सोवियत वैज्ञानिकों की एक विशेष समिति ने कहा कि अमेरिकी कार्यक्रम के विरुद्ध और प्रतिरोधी दोनों तरह के उपाय किए जाएंगे। प्रतिरोधी कार्रवाई के अंतर्गत छोटे प्रक्षेपास्त्रों, अतिरिक्त विस्फोटकों और उच्च क्षमता वाले लेसर शस्त्रास्त्रों का विकास किया जाएगा। विभिन्न प्रकार के तैनात छोटे प्रक्षेपास्त्रों का उपयोग सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रक्षेपास्त्रों पर चोट करने के लिए किया जाएगा।

अंतरिक्ष विस्फोटक वस्तुतः उपग्रह होंगे जो अंतरिक्ष स्टेशनों के करीबी कक्ष में स्थापित रहेंगे तथा इन्हें पृथ्वी से ही नियंत्रित किया जा सकेगा। यह प्रणाली एक साथ

अनेक स्टेशनों को निष्क्रिय बना सकती है। उच्च क्षमता वाले लेजर शस्त्रास्त्रों का उपयोग अंतरिक्ष स्थित मारक अड्डों के विरुद्ध किया जाएगा। प्रतिरोधी कार्रवाई के अंतर्गत अंतर–महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों को नष्ट किया जाएगा।

टिप्पणी

अमेरिका द्वारा साल्ट संधि का उल्लंघन– नवंबर 1986 में ही राष्ट्रपति रीगन ने 1989 की साल्ट संधि का एकतरफा उल्लंघन कर नई सैन्य प्रतिस्पर्धा की दिशा में एक और अविवेकपूर्ण कदम उठाया। संधि के विपरीत अमेरिका ने मिसाइलों से लैस एक बी 52 बमवर्षक को टेक्सास स्थित अपने अड्डे पर भेजा। रूस ने अमेरिका के इस कार्य को साल्ट के विरुद्ध बताया। उधर ब्रिटेन, पश्चिम जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम तथा नीदरलैंड सहित अमेरिका के प्रमुख यूरोपीय मित्रों तथा कांग्रेस के डेमोक्रेटिक सदस्यों ने अमेरिकी कार्रवाई की आलोचना की। उनका कहना था कि रूस व अमेरिका को साल्ट की शर्तों का पालन करना चाहिए।

शांति वर्ष के दौरान हथियारों पर अधिक व्यय– 1986 को संयुक्त राष्ट्र ने शांति वर्ष घोषित किया था परंतु इस वर्ष विश्व में हथियारों की मद में और भी अधिक व्यय होने की संभावना व्यक्त की गई। इस वर्ष रक्षा पर 900 अरब डॉलर व्यय होने की संभावना व्यक्त की गई। पिछले वर्ष 810 अरब डॉलर व्यय हुए थे। इसका अर्थ है कि प्रति मिनट औसत 17 लाख डॉलर रक्षा कार्यों पर खर्च हो रहे थे।

विश्व सैनिक और सामाजिक व्यय के नाम पर प्रकाशित इस रिपोर्ट में महाशक्तियों की इस बात के लिए तीखी आलोचना की गई कि विश्व भर में हथियारों पर व्यय होने वाली कुल राशि का 60% अकेले वे ही व्यय करती हैं। रिपोर्ट में कहा गया कि महाशक्तियों ने प्रौद्योगिकी को विनाश के नए कगार पर धकेल दिया है जिससे विश्व भर में संघर्ष का खतरा पैदा हो गया है। रिपोर्ट में कहा गया कि सोवियत संघ में शिक्षा और स्वास्थ्य के मदों पर खर्च होने वाली कुल राशि का दुगना रक्षा मद पर खर्चा होता है।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा परमाणु हथियारों पर रोक की मांग– संयुक्त राष्ट्र संघ ने सभी देशों का आह्वान किया कि वे परमाणु हथियारों पर रोक लगाएं। परमाणु हथियारों पर रोक संबंधी भारतीय प्रस्ताव के पक्ष में 136 सदस्यों ने मत दिया। अमेरिका, ब्रिटेन व फ्रांस ने प्रस्ताव के विरोध में, रूस ने पक्ष में व चीन ने मतदान में भाग नहीं लिया। भारतीय प्रस्ताव में परमाणु हथियार वाले राज्यों से आग्रह किया गया कि इस प्रकार के खतरनाक हथियारों का और उत्पादन न करें।

जेनेवा वार्ता मार्च–अप्रैल 1987– वर्ष 1986 में हुई रिक्जेविक शिखर वार्ता के बाद अमेरिका और सोवियत संघ के मध्य जेनेवा में पुनः वार्ता आयोजित की गई। इन वार्ताओं का सातवां दौर 4 मार्च, 1987 तक चला। यद्यपि अभी तक दोनों पक्ष किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सके थे किंतु कुछ मुद्दों पर हुई सहमति से उत्साहित होकर जेनेवा में वार्ता का दौर 23 अप्रैल 1987 तक के लिए बढ़ा दिया गया। रिक्जेविक वार्ता में भी दोनों पक्ष निर्णय के अंतिम क्षण तक पहुंच चुके थे किंतु स्टार वार के कारण वार्ता विफल रही।

रिक्जेविक शिखर वार्ता के बाद दो महत्वपूर्ण घटनाएं घटित हुईं। एक ओर रूस ने अपने को उस स्वयं आरोपित प्रतिबंध से मुक्त कर लिया जिसके अंतर्गत वह

टिप्पणी

अमेरिका द्वारा परमाणु परीक्षण करते हुए भी स्वयं परमाणु परीक्षण नहीं कर रहा था। दूसरी ओर उसने अमेरिका के समक्ष यूरोप से मिसाइलें हटाने के बारे में भी एक नवीन प्रस्ताव 'अंतरिक्ष कार्यक्रम' को पृथक् कर लिया। 1985 में सोवियत संघ ने अपने परमाणु परीक्षणों पर एक पक्षीय प्रतिबंध लगा दिया था तथा प्रतिबंध की अवधि शस्त्र परिसीमन वार्ताओं के कारण चार बार बढ़ा दी गई थी। रूस के स्वप्रतिबंध की अवधि में अमेरिका ने लगभग 24 परमाणु परीक्षण किए थे। स्थिति स्पष्ट थी कि अमेरिका ही जिम्मेदार था। सातवें दौर की बातचीत में यूरोप में मध्यम दूरी के प्रक्षेपास्त्रों की संख्या घटाने के बारे में संधि का एक प्रारूप प्रस्तुत किया गया। प्रस्ताव से पहले रूस का आग्रह था कि–

- अंतरिक्ष के सामरिक उपयोग पर नियंत्रण लगाया जाए।
- अमेरिका स्टार वार के कार्यक्रम को पूरी तरह से त्याग दे।
- दीर्घ परास के प्रक्षेपास्त्र जो पूर्वी व पश्चिमी यूरोप में लगे हैं, उन्हें बिल्कुल समाप्त कर दिया जाए।

किंतु रूस के पूर्व प्रस्तावों में स्टार वार योजना के त्यागने की बात अमेरिका को स्वीकार नहीं थी।

रिक्जेविक वार्ता की विफलता के बाद 28 फरवरी, 1987 को रूस ने अमेरिका के समक्ष एक नया दृष्टिकोण रखा। रूस ने अमेरिका के स्टार वार कार्यक्रम पर पूर्ण प्रतिबंध की अपनी प्रमुख मांग छोड़ दी। रूस का प्रस्ताव था कि यदि अमेरिका अपनी पर्शिंग व क्रूज मिसाइलें पश्चिमी यूरोप से हटा ले तो रूस भी चेकोस्लोवाकिया व जर्मनी से अपनी मध्यम दूरी की मिसाइलें हटा लेगा। प्रस्ताव में प्रक्षेपास्त्रों को 100 तक सीमित रखने तथा 5 वर्ष की अवधि में संधि पूरी तरह कार्यान्वित करने की व्यवस्था थी। अमेरिका अलास्का में अपनी 100 मध्यम परास वाली मिसाइलें रख सकेंगे तथा सोवियत संघ युराल पर्वत के पार 'एशियाई रूस में' अपनी मिसाइलें रख सकेगा।

1981 में अमेरिका के राष्ट्रपति रीगन ने यूरोपीय प्रक्षेपास्त्रों के संबंध में 'शून्य विकल्प योजना' प्रस्तुत की थी। इसमें दोनों महाशक्तियों द्वारा यूरोपीय क्षेत्र से मध्यम दूरी की मिसाइलें पूरी तरह से हटा लेने की व्यवस्था थी किंतु प्रस्ताव क्रियान्वित नहीं हो सका और नाटो ने 1979 में लिए गए निर्णय के अनुसार 572 मध्यम परास के प्रक्षेपास्त्र भी तैनात कर दिए। इनमें 108 पर्शिंग–2 तथा 464 क्रूज मिसाइलें थीं। अमेरिका का 1981 का यह प्रस्ताव रूस की अवहेलना से क्रियान्वित नहीं हो पाया। सोवियत संघ ने इसी बीच पूर्वी जर्मनी और चेकोस्लोवाकिया में लघु परास (500 कि.मी. से 1000 कि.मी. तक) के एस.एस. 22 व 23 प्रक्षेपास्त्र भी लगा लिए थे। रूस के पास इस श्रेणी के 600 एवं पश्चिमी यूरोपीय देशों के पास 70 प्रक्षेपास्त्र थे। यदि अन्य देश व अमेरिका वास्तव में शस्त्र परिसीमन के इच्छुक थे तो शायद इस गतिरोध का कोई न कोई हल निकाल लिया जाता। सोवियत नेता आशंकित थे कि संयुक्त राज्य अमेरिका शस्त्रास्त्रों के उत्पादन में सोवियत रूस से बहुत आगे है और उसकी नीति चारों ओर से रूस को घेर लेने की है। अमेरिकी सूत्रों का कहना था कि निशस्त्रीकरण के बारे में रूस के साथ हर बातचीत रूसी नेताओं के अड़ियल रवैये के कारण टूट जाती है। सोवियत नेता अमेरिका से तो 'रियायत' चाहते हैं लेकिन अपनी ओर से 'रियायत' नहीं देना चाहते। वास्तविकता यह है कि दोनों ही महाशक्तियों के दुराग्रह के कारण मानव जाति महाविनाश के कगार पर जा खड़ी हुई थी।

निशस्त्रीकरण की समस्याएं– निशस्त्रीकरण के इतिहास से यह ज्ञात होता है कि इसमें बहुत थोड़े प्रयास ही सफल हो सके थे, अधिकांश को असफलता का मुंह देखना पड़ा। इस निरंतर असफलता के पीछे अनेक समस्याएं थीं जो किसी भी समझौते को सर्वमान्य नहीं बनने देती थीं। मार्गेन्थो ने निशस्त्रीकरण की चार समस्याओं का वर्णन किया है। वे निम्न प्रकार हैं–

टिप्पणी

1. विभिन्न राष्ट्रों के शस्त्रों के बीच अनुपात कितना रहेगा?
2. वह मापदंड क्या है जिसके अनुसार इस अनुपात के अंतर्गत विभिन्न प्रकार एवं गुणों के अस्त्र विभिन्न देशों के लिए निर्धारित किए जाएंगे?
3. उपरोक्त प्रश्नों के उत्तरों का हथियारों की सोची गई कमी पर वास्तविक प्रभाव क्या पड़ेगा?
4. निशस्त्रीकरण का अंतर्राष्ट्रीय शांति व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

मार्गेन्थो का कहना है कि निशस्त्रीकरण के किसी भी प्रयास की सफलता का मूल्यांकन इन चार प्रश्नों के संदर्भ में होना चाहिए। इन प्रश्नों के जो उत्तर प्राप्त होंगे उनसे यह जाना जा सकेगा कि उनमें सफलता एवं असफलता की मात्रा कितनी–कितनी थी।

निशस्त्रीकरण के मार्ग में कठिनाइयां

1. विश्व के शक्तिशाली देश अपने शस्त्रास्त्रों के आधुनिकीकरण का मोह छोड़ने को तैयार नहीं थे अतः संभावित था कि एक देश के आधुनिकतम आयुधों के जवाब में दूसरा देश उससे भी बढ़कर आयुध बनाने की सोचता था और इस तरह जो भी निशस्त्रीकरण समझौते थे वे बहुत ही आंशिक और व्यवहार में प्रभाव–शून्य होते थे। कूटनीतिक और सैनिक क्षेत्रों में अमेरिका की परमाणु शक्ति रूस, चीन से बहुत अधिक आंकी जाती थी और प्रक्षेपास्त्रों के बारे में लगभग 3 गुना अधिक। फिर भी वह नए परमाणु प्रक्षेपास्त्रों को बनाने की दिशा में प्रयत्नशील था और अपने प्रयत्नों का औचित्य सिद्ध करने के लिए समय–समय पर सोवियत संघ की परमाणु शक्ति को बढ़ा–चढ़ाकर प्रस्तुत करता रहता था।
2. अणु शक्ति संपन्न राष्ट्रों के बीच संबंधों का निर्धारण अनेक आंतरिक एवं बाहरी तत्वों से प्रभावित होता है। एक देश पहले अपने राष्ट्रीय हितों की ओर दृष्टिपात करता है तथा बाद में अंतर्राष्ट्रीय शांति व हित को देखता है। अस्थिर संबंधों और इसमें निहित खतरे और लालच की भावनाएं शस्त्रों को सीमित करने के मार्ग में बाधक बन जाती हैं। आजकल सैनिक तकनीकी का इतना विकास हो चुका है कि निशस्त्रीकरण के नाम पर किसी को भी धोखा दिया जा सकता है। शक्तिशाली शत्रु द्वारा अपनी वास्तविक शक्ति को छिपाकर तथा ऊपरी सेना घटाकर निशस्त्रीकरण का दिखावा किया जा सकता है। जब तक यह भय दोनों पक्षों के मन में रहेगा तब तक निशस्त्रीकरण का भविष्य उज्ज्वल नहीं है।
3. राष्ट्रवाद और संप्रभुता की भावना के कारण एक देश यह स्वीकार नहीं करता है कि उसकी निशस्त्रीकरण की कार्रवाई की जांच के लिए कोई अंतर्राष्ट्रीय संस्था बनाई जाए। इस प्रकार के निरीक्षण द्वारा एक देश की स्वतंत्रता पर जो अंकुश लगता है उसे मानने को कोई तैयार नहीं होता। यही कारण है कि

टिप्पणी

निशस्त्रीकरण योजना की सफलता से पूर्व सरकार की स्थापना का समर्थन किया जाता है।

4. निशस्त्रीकरण के कारण एक देश की अर्थव्यवस्था पर भारी प्रभाव पड़ता है। शस्त्र–निर्माण बंद कर देने पर शस्त्रों के निर्माण पर व्यय होने वाली भारी राशि का रचनात्मक कार्यों में कैसे उपयोग किया जाएगा और निशस्त्रीकरण से अर्थव्यवस्था को अस्त–व्यस्त होने से कैसे बचाया जाएगा आदि आशंकाएं उठती हैं तथा यह आशा भी रहती है कि इसे अविकसित देशों के विकास के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।
5. इस समस्या के समाधान के लिए दो सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं– 1. पूर्ण रूप से निशस्त्रीकरण कर दिया जाए 2. अंतर्राष्ट्रीय पुलिस–शक्ति द्वारा देशों को सामूहिक सुरक्षा की गारंटी दी जाए किंतु यह सुझाव भी तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक पहले शस्त्रों को कम न किया जाए इसलिए मूल समस्या अनुपात की है।
6. विश्वास रहित वातावरण में निशस्त्रीकरण और शस्त्रों का नियंत्रण तथा अन्य राजनीतिक समस्याओं का समाधान संभव नहीं है। यदि देशों में परस्पर विश्वास रहे तो शस्त्रों की आवश्यकता ही न रहे और न ही निशस्त्रीकरण की समस्या ही पैदा हो और पूर्ण अविश्वास की स्थिति अराजकता एवं पूर्ण तानाशाही में से एक को स्थापित कर देती है।
7. शस्त्रों की बिक्री से होने वाली बेशुमार आय का लालच निशस्त्रीकरण के प्रयोजनों को सफल नहीं होने देता। अमेरिका, ब्रिटेन जैसे पूंजीवादी देशों में शस्त्र–निर्माता कंपनियों के मालिक और हिस्सेदार राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं तथा निशस्त्रीकरण कार्यक्रम को सफल नहीं होने देते, विश्व के अनेक राष्ट्र शस्त्र बेचकर विपुल धनराशि अर्जित कर अपनी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को मजबूत बना रहे हैं।
8. एक समस्या यह सामने आती है कि पहले राजनीतिक समस्याओं का समाधान किया जाए या निशस्त्रीकरण किया जाए। यह दोनों एक दूसरे के मार्ग में बाधा डालते हैं। एक के हल हो जाने पर दूसरे का हल हो जाना सुगम है। यह सोचा जाता है कि झगड़ों का कारण शस्त्र हैं और इनको घटाने से अंतर्राष्ट्रीय प्रेम और मैत्री में वृद्धि होगी।

वास्तव में निशस्त्रीकरण की दिशा में ठोस कार्य तब तक नहीं हो सकता जब तक महाशक्तियों में मौलिक मतभेद कायम हैं। निशस्त्रीकरण में वांछित सफलता न मिलने का एक कारण यह भी है कि 'आणविक क्लब' की सदस्यता बड़ी सीमित है। अभी तक अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन ही आणविक शस्त्रास्त्रों के क्षेत्र के प्रमुख खिलाड़ी हैं लेकिन जब विश्व के अन्य देश भी मैदान में उतर आएंगे और जरा सी टकराहट पर अणु–युद्ध का खतरा सजीव हो उठेगा तो महाशक्तियां सम्भवतः निशस्त्रीकरण (विशेषकर अणु शस्त्रों के क्षेत्र में) की दिशा में गंभीर प्रयास करने के लिए बाध्य हो जाएंगी।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. अणु शक्ति आयोग की स्थापना कब हुई थी?
   (क) जनवरी 1945 (ख) मई 1946
   (ग) जनवरी 1946 (घ) दिसम्बर 1948
2. 'उन्मुक्त आकाश योजना' किस अमेरिकी राष्ट्रपति से संबद्व है?
   (क) विन्सटन चर्चिल (ख) आइजन होवर
   (ग) खुश्चेव (घ) रूजवेल्ट
3. मास्को में 'सीमित परमाणु प्रतिबंध संधि' पर हस्ताक्षर कब हुए?
   (क) 15 जुलाई, 1963 (ख) 04 जनवरी, 1960
   (ग) 15 अगस्त, 1947 (घ) 01 मई, 1965
4. "परमाणु हथियारों का निर्माण नहीं करेंगे, न ही कहीं से प्राप्त करेंगे" देसाई ने यह घोषणा की–
   (क) 1 जून (ख) 3 जून
   (ग) 5 जून (घ) 9 जून
5. 'स्टार वार' किस अमेरिकी राष्ट्रपति से संबंधित रहा है?
   (क) जिमी कार्टर (ख) रोनाल्ड रीगन
   (ग) बोरिस येल्तसिन (घ) जार्ज बुश

5.3 संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक और सामाजिक गतिविधियां

संयुक्त राष्ट्र संघ के परिवार में अनेक ऐसी एजेंसियां और संस्थाएं हैं जो विश्व के विभिन्न देशों की जनता के रहन–सहन के स्तर को ऊंचा उठाने, आर्थिक एवं सामाजिक विकास को बढ़ावा देने, बालकों तथा शरणार्थियों जैसे विशेष वर्ग को सहायता पहुंचाने और प्राविधिक एवं वैज्ञानिक ज्ञान के प्रसार के लिए विभिन्न देशों की सरकारों के साथ मिलकर कार्य कर रही हैं। संघ के चार्टर में मानवीय, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य संबंधी कार्यों को बहुत महत्व दिया गया है और इनके निर्माण के लिए विभिन्न विशिष्ट अभिकरणों का निर्माण हुआ है। इन विशिष्ट अभिकरणों का निर्माण पृथक रूप से हुआ है और ये स्वायत्तशासी संगठन हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, मुद्रा कोष, विश्व बैंक आदि वे अभिकरण हैं जिनका मुख्य उद्देश्य विश्व में हर संभव उपाय से आर्थिक कल्याण को प्रोत्साहित करना है। इन अभिकरणों द्वारा जो महत्वपूर्ण दायित्व निभाए जाते हैं उनसे अंततोगत्वा विश्व–शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि संबंधी संयुक्त राष्ट्र संघ के महान उद्देश्य को सहायता मिलती है।

निम्नांकित विशिष्ट अभिकरण आर्थिक कल्याण के विकास और प्रसार में सहयोगी बनकर विश्व के राष्टों में सहयोग और संपर्क की आधारशिला रख रहे हैं।

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन– अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन संयुक्त राष्ट्र संघ के विशिष्ट अभिकरणों में सर्वाधिक प्राचीन और महत्वपूर्ण है। इसका कार्य क्षेत्र अन्य सभी अभिकरणों से विशाल है। इसकी स्थापना 11 अप्रैल, 1919 को वर्साय की संधि के भाग 13 के अनुसार श्रमिकों के हित–साधन की दृष्टि से की गई थी। राष्ट्र संघ से घनिष्ठ संबंध होने के बावजूद इस संस्था ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम रखा और अप्रैल 1946 में संयुक्त राष्ट्र संघ के एक विशिष्ट अभिकरण के रूप में इसे पुनर्गठित किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ और अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के मध्य एक समझौता हुआ जिसके अनुसार इस संगठन ने विश्व के देशों में श्रम एवं सामाजिक कार्य संपन्न करने का दायित्व लिया।

सामाजिक–आर्थिक उत्थान का लक्ष्य– अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का उद्देश्य है कि–''अंतर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा श्रमिकों की दशा उन्नत की जाए, उनकी आर्थिक स्थिति में स्थिरता लाई जाए और सामाजिक क्षेत्र में उनका स्तर उन्नत बनाया जाए। यह संगठन इस विश्वास पर आधारित है कि सार्वजनिक और स्थायी शांति की स्थापना सामाजिक न्याय की आधारशिला पर ही संभव है और श्रमिकों को सामाजिक न्याय तभी प्राप्त हो सकता है जब वह दूसरे लोगों के समान ही आर्थिक कल्याण और उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हों।'' 1944 में द्वितीय महायुद्ध के समय जो अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ उसमें स्वीकृत सिद्धांतों को अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के संविधान में जोड़ दिया गया। तदनुसार ये मौलिक सिद्धांत निर्धारित किए गए–

1. श्रम को वस्तु नहीं माना जा सकता है,
2. दरिद्रता कहीं भी हो, सर्वत्र समृद्धि के लिए खतरा है,
3. निरंतर प्रगति के लिए आवश्यक है कि अभिव्यक्ति और संगठन को स्वतंत्रता प्रदान की जाए एवं
4. अभाव और दरिद्रता के विरुद्ध प्रत्येक देश में संपूर्ण उत्साह के साथ संघर्ष किया जाना चाहिए।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन, (1944) फिलाडेल्फिया– इस सम्मेलन में सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह कार्यक्रम निर्धारित किया गया कि पूर्ण रोजगार और जीवन–निर्वाह के लिए आवश्यक वेतन की व्यवस्था का प्रयत्न किया जाए, पर्याप्त भोजन एवं आवास की व्यवस्थाओं का विस्तार किया जाए, सामूहिक रूप से मोल–तोल अथवा सौदा करने के अधिकार को प्रोत्साहन दिया जाए और सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था की जाए। आर्थिक विषमताओं से मुक्ति प्राप्त करने पर ही श्रमिकों का आर्थिक स्तर ऊंचा उठेगा, वे जीने योग्य जीवन बिता सकेंगे और जब आर्थिक सुख समृद्धि का प्रसार होगा तो अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के प्रसार में सहयोग मिलेगा।

[redacted] अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का कार्य तीन प्रमुख अंगों द्वारा संपन्न किया जाता है– अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन, प्रबंध समिति तथा अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय।

अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन एक नीति– इस संसार को औद्योगिक संसद कहा जा सकता है। प्रत्येक सदस्य राज्य से इसमें 4 प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं। इसकी नियुक्ति संबंधित सरकार द्वारा की जाती है किंतु इनमें से दो सरकार का प्रतिनिधित्व करते हैं और एक मालिकों का तथा एक मजदूरों का। सम्मेलन में सभी निर्णय दो

तिहाई बहुमत से लिए जाते हैं। यह सिफारिशों और समझौतों द्वारा प्रत्येक राज्य के श्रम–संबंधी व्यवस्थापन को प्रोत्साहन देते हैं। राष्ट्र इन सिफारिशों को मानने के लिए बाध्य नहीं हैं। सम्मेलन का अंत समझौता संधि के रूप में होता है, यद्यपि यह सम्मेलन द्वारा स्वीकार किया जाता है तथापि सदस्य–राज्यों के प्रतिनिधियों के इस पर हस्ताक्षर नहीं होते। सदस्य–राज्यों का यह दायित्व है कि वे उपयुक्त सत्ता द्वारा इस समझौते के लिए व्यवस्थापन कराएं।

टिप्पणी

प्रबंध समिति श्रम संगठन का कार्यपालिका निकाय है। इसमें 40 सदस्य होते हैं जिसमें 24 सरकारी प्रतिनिधि, 12 संगठन मालिकों के प्रतिनिधि, और 12 मजदूरों के प्रतिनिधि होते हैं। सम्मेलन के लिए श्रमिकों के प्रतिनिधियों का चुनाव मजदूरों के प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। प्रबंध समिति श्रम–संगठन के महानिदेशक की नियुक्ति करती है, सम्मेलन के लिए कार्यक्रम तैयार करती है, जांच पड़ताल करती है तथा समितियों के माध्यम से स्थिति का अध्ययन करती है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय जेनेवा में है। इसके तीन संभाग हैं– राजनयिक संभाग, गुप्तचर संभाग एवं अनुसंधान संभाग। राजनयिक संभाग विभिन्न राज्यों के साथ पत्र व्यवहार करता है तथा सम्मेलन के अभिसमयों एवं सिफारिशों को विभिन्न राज्यों में क्रियान्वित करता है। गुप्तचर संभाग दुनिया के मजदूरों की परिस्थितियों के संबंध में सूचनाएं एकत्रित करता है। अनुसंधान संभाग श्रमिक समस्याओं की वैज्ञानिक जांच से संबंध रखता है। कार्यालय का कार्य, संगठन के सभी कार्य संपन्न करना है

सामाजिक–आर्थिक विकास के कार्य–

1. इस संगठन का प्रमुख कार्य श्रमिकों से संबंधित विभिन्न प्रकार की दशाओं को अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक समझौतों तथा सिफारिशों के रूप में अंतर्राष्ट्रीय मापदंडों का निर्माण करना है।

इस संगठन ने जिन समझौतों और सिफारिशों को स्वीकार किया है उनमें स

टिप्पणी

आलोचना

1. श्रमिक कल्याण के लिए सराहनीय प्रयास करने के बावजूद अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की विशेष रूप से आलोचना की जाती है कि यह अपने व्यवहार में निष्पक्ष नहीं रहा है अथवा इसने जरूरतमंदों की अपेक्षा गैर जरूरतमंदों या अपेक्षाकृत कम जरूरतमंदों की अधिक सहायता की है।
2. यह संस्था इतने अधिक समझौते और सिफारिशें निरूपित करती जाती है कि उन्हें स्वीकार करना तथा उन सब पर प्रभावशाली रूप में अमल करना आज की जटिल राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों में संभव नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष

राष्ट्रों की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए और राजनीतिक मनमुटाव के आर्थिक कारणों को दूर करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग नितांत आवश्यक है। सभी राज्यों ने यह समझ लिया कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक और वित्तीय क्षेत्र में जो अस्त–व्यस्त स्थिति व्याप्त है और विश्व–बाजार में जो कठिनाइयां छाई हुई हैं उन्हें दूर करने के लिए कोई महत्वपूर्ण कदम उठाया जाना चाहिए। इसी अनुभूति के फलस्वरूप महायुद्ध के अंतिम दिनों में अमेरिका में ब्रटेनवुड्स नामक स्थान पर एक अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा सम्मेलन आयोजित किया, जिसमें इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया कि युद्ध के आर्थिक कारणों और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में व्याप्त आर्थिक अस्त–व्यस्तता का समाधान करने के लिए क्या कदम उठाए जाएं। यह सम्मेलन जुलाई 1944 में हुआ और लगभग 44 मित्र राष्ट्रों ने इस सम्मेलन में अपने प्रतिनिधि भेजे। कई दिनों तक विचार–विमर्श करने के पश्चात अंत में सम्मेलन में युद्ध के आर्थिक कारणों को दूर करने की एक योजना तैयार की गई जिसे दो भागों में विभाजित किया गया प्रथम भाग में एक अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) की स्थापना का प्रस्ताव किया गया और दूसरे भाग में एक अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक (WORLD BANK) की स्थापना की बात कही गई।

आवश्यक व्यवस्थाओं की पूर्ति के बाद और विभिन्न राष्ट्रों द्वारा योजना के अनुच्छेद 2 पर हस्ताक्षर करने के उपरांत, दिसंबर 1945 में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक जैसी संस्थाएं अस्तित्व में आईं।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य– अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के समझौता पत्र से हमें इसके उद्देश्यों की जानकारी मिलती है। प्रो. के.पी. सक्सेना ने इन उद्देश्यों को निम्न प्रकार स्पष्ट किया है–

1. **अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को प्रोत्साहन**– मुद्रा कोष की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य विश्व के विभिन्न देशों के मध्य अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को प्रोत्साहन देना है। यह कोष सदस्य देशों में अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक क्षेत्र में विचार–विमर्श तथा सहयोग से कार्य करने की व्यवस्था करता है।
2. **अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का विस्तार एवं संतुलित विकास**– मुद्रा कोष का दूसरा प्रमुख उद्देश्य विभिन्न देशों के मध्य होने वाले अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को विभिन्न प्रकार के नियंत्रण से मुक्त करना है ताकि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का विस्तार एवं संतुलित विकास हो सके।

टिप्पणी

3. **विनिमय स्थायित्व को प्रोत्साहित करना**– विनियम दरों में उच्चावचन विश्व व्यापार के लिए घातक होते हैं अतः अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के समुचित विकास के लिए विनिमय दर में स्थायित्व लाना इस कोष का प्रमुख उद्देश्य है। यह कोष स्वतंत्र विनिमय दर नीति की बुराइयों को दूर करने का प्रयास करता है।
4. **बहुपक्षीय भुगतान प्रणाली की स्थापना और विनिमय प्रतिबंधों को समाप्त करना**– विभिन्न देशों की मुद्राएं आपस में परिवर्तनशील नहीं है अतः विदेशी भुगतान में कठिनाई होती है। इस कोष का चौथा प्रमुख उद्देश्य विभिन्न देशों द्वारा लगाए गए विनिमय– नियंत्रणों को समाप्त करके, अंतर्राष्ट्रीय भुगतान की निष्पक्ष प्रणाली की स्थापना में सहायता देना है।
5. **भुगतान शेषों के असंतुलन को दूर करने के लिए अल्पकालीन ऋण देना**– इस कोष का पांचवा प्रमुख उद्देश्य सदस्य देशों के मध्य भुगतान शेष के अल्पकालीन असंतुलन को दूर करने के लिए विदेशी मुद्रा के (अल्पकालीन) ऋण देना है जिससे कि वह राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय समृद्धि की वृद्धि करने वाले उपायों को अपना सकें।
6. **भुगतान शेषों के असंतुलन की अवधि तथा मात्रा में कमी करना**– मुद्रा कोष का अंतिम उद्देश्य उपरोक्त प्रयत्न द्वारा सदस्य राष्ट्रों के भुगतान संतुलन की अवधि तथा परिमाण को कम करना है।
7. **पिछड़े तथा अल्प विकसित देशों में पूंजी निवेश में सहायता देना**– अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष धनी देशों से पिछड़े तथा अल्प विकसित देशों को पूंजी निर्यात में भी सहायता देता है, जिससे इन देशों का आर्थिक विकास संभव हो सके।

क्राउचर के मतानुसार, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का मुख्य उद्देश्य घाटे वाले देशों को उन मुद्राओं को उपलब्ध कराना है, जिनकी आवश्यकता उन्हें इस घाटे को पूरा करने के लिए होती है।

प्रो. हॉम के शब्दों में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष मौद्रिक क्षेत्र में राष्ट्रीय स्वतंत्रता एवं पूर्ण अंतर्राष्ट्रीयता के मध्य एक समझौता मात्र है।

मुद्रा कोष के साधन एवं पूंजी– अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के साधनों एवं पूंजी का निर्माण सदस्य देशों के अंतर्गत निर्धारित अभ्यंशों के आधार पर होता है। प्रत्येक देश को अपने कोटे का 20% अथवा अपने स्वर्ण तथा डॉलर स्टॉक का 10% दोनों में जो कम हो, स्वर्ण के रूप में मुद्रा कोष को देना पड़ता है। प्रत्येक सदस्य देश को अपने कोटे का शेष भाग राष्ट्रीय मुद्रा के रूप में जमा करना होता है। इसमें विभिन्न देशों के कोटे का निर्धारण उन देशों की राष्ट्रीय आय, उनके स्वर्ण और विदेशी विनिमय कोष तथा भुगतान संतुलन संबंधी स्थिति को ध्यान में रखकर किया गया था। समय–समय पर अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उस के साधनों में वृद्धि की जाती रही है।

मुद्रा कोष का संगठन एवं प्रबंध– मुद्रा कोष का प्रबंध बोर्ड ऑफ गवर्नर्स एवं संचालक मंडल के माध्यम से होता है। बोर्ड ऑफ गवर्नर्स में प्रत्येक सदस्य देश द्वारा एक गवर्नर नियुक्त किया जाता है, जो 5 वर्ष की अवधि तक काम करता है। सदस्य

टिप्पणी

देश को एक वैकल्पिक गवर्नर नियुक्त करने का अधिकार भी होता है, जो गवर्नर की अनुपस्थिति में बोर्ड की बैठक में भाग लेता है। बोर्ड ऑफ गवर्नर्स द्वारा मुद्रा कोष संबंधी नीति का निर्धारण किया जाता है। मुद्रा कोष का दिन–प्रतिदिन का कार्य संचालित करने के लिए 20 सदस्यों का संचालक मंडल होता है। इसके 4 स्थायी सदस्य उन देशों के होते हैं जिनके कोटे सबसे अधिक होते हैं। संचालक मंडल द्वारा एक प्रबंध संचालक का चुनाव होता है जो कोष के साधारण कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है। प्रबंध संचालक मुद्रा कोष का मुख्य अधिकारी होता है।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कार्य

मुद्रा कोष के तीन प्रमुख कार्य हैं–

1. मुद्रा कोष सदस्य देशों को विदेशी मुद्राएं बेचकर तथा उधार देकर उन्हें भुगतान संतुलन में होने वाले अल्पकालीन असंतुलन को दूर करने में सहायता प्रदान करता है।
2. मुद्रा कोष सदस्य देशों को अपने भुगतान संतुलन में होने वाले दीर्घकालीन असंतुलन को दूर करने में भी सहयोग देता है। यह कार्य समता दरों के निर्धारण के माध्यम से किया जाता है। मुद्रा कोष सदस्य देशों की अर्थव्यवस्था में आधार मूल्य परिवर्तन होने पर उन्हें अपनी मुद्राओं की समता दरें बदलने की अनुमति देता है।
3. मुद्रा कोष आर्थिक तथा मौद्रिक विषयों पर सदस्य देशों को परामर्श भी देता है। वित्तीय सहायता के साथ–साथ मुद्रा कोष सदस्य देशों को प्राविधिक सहायता भी देता है।

मुद्रा कोष द्वारा मुद्राओं की व्यवस्था

कुछ विशिष्ट कारणों से किसी देश की मुद्रा दुर्लभ मुद्रा हो सकती है अर्थात इसकी पूर्ति मांग की अपेक्षा बहुत कम हो सकती है। उदाहरण के लिए किसी देश का निर्यात अधिक होने पर तथा आयात बहुत कम होने पर उस देश की मुद्रा की मांग अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अधिक होती है। परंतु इसको बाजार में मुद्रा उपलब्ध ना होने के परिणामस्वरूप दुर्लभ मुद्रा कहा जाता है। मुद्रा कोष के पास क्योंकि सभी राष्ट्रों की मुद्रा होती है अतः मुद्रा कोष उन्हें विभिन्न देशों को बेचता है अथवा उधार देता है। मुद्रा कोष स्वर्ण देकर उस देश से दुर्लभ मुद्रा खरीद भी सकता है। यदि फिर भी मांग पूरी न हो तो मुद्रा कोष इस मुद्रा को दुर्लभ घोषित करके मुद्रा की राशनिंग कर सकता है। मुद्रा कोष ऐसी स्थिति में उस दुर्लभ मुद्रा के लिए विभिन्न देशों का कोटा निश्चित कर देता है।

मुद्रा कोष एवं अंतर्राष्ट्रीय तरलता– अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था के क्षेत्र में काफी समय से अंतर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या बनी रही है। विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत समय–समय पर मुद्रा कोष सदस्य देशों को भुगतान संतुलन के घाटे को पूरा करने हेतु अंतर्राष्ट्रीय तरलता प्रदान करता है। इस सुविधा के बावजूद भी अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली में सुधार करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। इसके समाधान के लिए समय–समय पर अनेक योजनाएं प्रस्तुत कीं। अंत में कोष के 10 महत्वपूर्ण सदस्यों ने मिलकर एक योजना प्रस्तुत की। इस योजना को 'कागजी सोना' की योजना

भी कहा जाता है। विशेष आहरण अधिकार एक प्रकार की अंतर्राष्ट्रीय परिसंपत्ति है जिसके द्वारा कोई देश, बिना स्वर्ण का सहारा लिए, विदेशी भुगतानों के लिए अन्य सदस्य देशों से, जिन्होंने एस.डी.आई योजना स्वीकार कर ली है, परिवर्तनशील मुद्राएं प्राप्त कर सकता है। यह एक प्रकार से मुद्रा कोष द्वारा साख का सृजन कराता है।

मुद्रा कोष की आलोचनाएं– मुद्रा कोष की प्रणाली पर जो दोषारोपण किए जाते हैं, उनमें प्रमुख निम्न प्रकार हैं–

टिप्पणी

1. कोष में अमेरिकन प्रशासन का अत्यधिक प्रमुख हाथ है,
2. विभिन्न देशों का कोटा निर्धारण वैज्ञानिक आधार पर नहीं किया गया है,
3. अनेक स्थितियों में विशेष राष्ट्रों को मुद्रा के अवमूल्यन के लिए दी गई सलाह पुनः सोच–विचार के उपरांत नहीं दी गई,
4. मुद्रा कोष में विकासशील राष्ट्रों का प्रतिनिधित्व कम है इत्यादि।

उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद यह कहा जा सकता है कि अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक एवं आर्थिक सहयोग एवं अनुशासन पैदा करने में कोष ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

विश्व बैंक

अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक, जिसे बहुधा विश्व बैंक कहा जाता है, की स्थापना भी जुलाई 1944 में ब्रटेनवुड्स सम्मेलन में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के साथ हुई थी और जून 1946 में इसने अपना कार्य आरंभ कर दिया। इस संस्था का मुख्य कार्यालय वाशिंगटन में है और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का सदस्य होने पर कोई भी राष्ट्र इसका सदस्य हो सकता है। मुद्रा कोष की स्थापना का मुख्य लक्ष्य सदस्य देशों की भुगतान संबंधी विषमताओं को दूर करना था जबकि विश्व बैंक की स्थापना प्रायः इसलिए की गई थी कि युद्ध जनित आर्थिक व्यवस्था को दूर किया जा सके और विकसित तथा अविकसित देशों को दीर्घकालीन ऋणों के रूप में सहायता दी जाए ताकि वे प्रगति और पुनर्निर्माण पथ पर अग्रसर हो सकें।

विश्व बैंक के उद्देश्य– युद्धोत्तर जटिल आर्थिक स्थिति और समस्याओं के निराकरण की दृष्टि से विश्व बैंक की स्थापना के मुख्यतः अग्रलिखित चार उद्देश्य हैं–

1. बैंक का प्रथम उद्देश्य युद्ध द्वारा विनष्ट तथा अल्प विकसित देशों को दीर्घकालीन ऋण देकर उनके पुनर्निर्माण तथा आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बैंक ने ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, हॉलैंड, डेनमार्क आदि युद्ध विनष्ट देशों को तथा भारत, पाकिस्तान, लंका, बर्मा आदि पिछड़े देशों को विकास के लिए ऋणों के रूप में प्रचुर सहायता प्रदान की है।
2. विश्व बैंक व्यक्तिगत विनियोगकर्ताओं को विकसित देशों में उत्पादन कार्य के लिए पूंजी का विनियोग करने हेतु प्रोत्साहित करता है। इसके लिए विनियोगकर्ताओं को उनकी पूंजी पर गारंटी देता है अथवा उनके विनियोग में ऋण सहायता करता है।
3. विश्व बैंक द्वारा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन दिया जाता है। यह अपने सदस्य देशों के उत्पादन साधनों का विकास करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय विनियोगों को प्रोत्साहन देता है ताकि संबंधित देश में रोजगार, आय तथा जीवन स्तर ऊंचा उठाया जा सके।

टिप्पणी

4. युद्ध के बाद यह आवश्यकता महसूस हुई कि युद्ध विनष्ट आर्थिक व्यवस्था को शांति कालीन आर्थिक व्यवस्था में परिणित कर दिया जाए। यह कार्य विश्व बैंक करता है।

सदस्यता– विश्व बैंक का सदस्य केवल वही राष्ट्र बन सकता है जो अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का सदस्य है। 32 देश, जिन्होंने 31 दिसंबर 1945 तक अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता स्वीकार की थी, विश्व बैंक के मौलिक सदस्य माने जाते हैं। इसके बाद सदस्यता प्राप्त करने वाले सदस्य देश साधारण सदस्य माने जाते हैं। भारत, विश्व बैंक के मौलिक सदस्यों में से एक है।

पूंजी– विश्व बैंक की स्थापना के समय उसकी अधिकृत पूंजी 1000 मिलियन डॉलर थी जो 1 लाख डॉलर के प्रत्येक अंश के हिसाब से 1 लाख अंशों में विभाजित थी। सभी सदस्य देशों ने अपने कोटे के हिसाब से शेयर खरीदे थे। सदस्य देशों द्वारा स्वीकृत पूंजी वास्तव में 9400 मिलियन डॉलर थी। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को अपने अंश का 20% तुरंत जमा कराना होता है, जिसका 2% भाग स्वर्ण में तथा शेष 18% भाग अपनी वैधानिक मुद्रा में देना होता है। शेष 80% भाग मांग पर देना होता है। 2020 को विश्व बैंक की कुल अधिकृत पूंजी 77078 मिलियन डॉलर थी।

प्रबंध– विश्व बैंक का प्रबंधन संगठन तीन स्तरीय है, जिसमें अध्यक्ष, प्रशासनिक संचालक मंडल तथा प्रशासन मंडल आते हैं। अध्यक्ष की नियुक्ति 21 सदस्यीय प्रशासनिक संचालक मंडल द्वारा की जाती है तथा उनमें से 5 सदस्यों की नियुक्ति उन देशों द्वारा भी की जाती है जिनका बैंक में अधिकृत अंश है। बाकी 16 सदस्य प्रशासन मंडल द्वारा चुने जाते हैं। प्रशासन मंडल में प्रत्येक देश एक गवर्नर तथा एक वैकल्पिक गवर्नर की नियुक्ति करता है। इन दोनों का कार्यकाल 5 वर्ष का होता है। प्रशासन मंडल विश्व की सबसे शक्तिशाली संस्था है। प्रत्येक गवर्नर का मत देने का अधिकार अपने देश के अंशदान के अनुपात में होता है।

कार्य

विश्व बैंक सदस्य देशों के लिए निम्नलिखित कार्य करता है–

1. **पूंजी एवं ऋण**– प्रत्येक देश को अपने कोटे का 20% भाग जिसमें 2% सोना तथा 18% देश की मुद्रा होती है, बैंक के पास जमा करना पड़ता है। बैंक जमा सोने का किसी देश को ऋण देने में प्रयोग कर सकता है।
2. **निजी पूंजी से ऋण**– विश्व बैंक सदस्य देशों के विनियोग कर्ताओं को गारंटी देकर उनकी पूंजी को किसी अन्य देश को उधार दिला सकता है। परंतु गारंटी देने से पूर्व बैंक को उन देशों की अनुमति प्राप्त करनी होती है। बैंक इन शर्तों पर ऋण गारंटी देता है– (अ) ऋण प्रदान करने की शर्तें उचित तथा न्यायपूर्ण होनी चाहिए (ब) जिस योजना के लिए ऋण दिया जाता है वह उचित भी है या नहीं (स) ऋण लेने वाले देश की सरकार को उस ऋण की गारंटी भी देनी होती है।
3. **तकनीकी सहायता देना**– बैंक सदस्य राष्ट्रों को तकनीकी सहायता भी प्रदान करता है। समय–समय पर सदस्य राष्ट्रों में अपने विशेषज्ञ भेज कर उनका सर्वेक्षण कराता है।

टिप्पणी

4. **राष्ट्रों के पारस्परिक विवादों में मध्यस्थता**– राष्ट्रों के बीच उत्पन्न होने वाले आपसी विवाद उनके आर्थिक विकास में बाधा डालते हैं। अतः बैंक उन विवादों में मध्यस्थता कर उन्हें निपटाने का प्रयत्न करता है। भारत और पाकिस्तान के मध्य उत्पन्न नहर विवाद (1960), इंग्लैंड और मिस्र के मध्य स्वेज नहर विवाद (1959) को निपटाने का श्रेय विश्व बैंक को ही जाता है।

5. **प्रशिक्षण सुविधाएं**– विश्व बैंक ने 1949 से सदस्य देशों के अधिकारियों के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारंभ किया है। साथ ही 150 से अधिक सार्वजनिक वित्तीय संस्थानों हेतु एक प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारंभ किया। इसके पश्चात औद्योगिक वित्त, मौद्रिक व्यवस्था, बैंकिंग, कर प्रणाली विषयों पर भी प्रशिक्षण दिया जाने लगा है।

6. **विश्व बैंक की आलोचनाएं**– विश्व बैंक की आलोचनाएं निम्न आधारों पर की गई हैं–

   1. विश्व बैंक की ऋण नीति भेदभावपूर्ण रही है।
   2. द्वितीय आलोचना विश्व बैंक की ऊंची ब्याज दर के संबंध में की जाती है।
   3. विश्व बैंक की यह आलोचना भी की जाती है कि वह किसी देश की ऋण लौटाने की क्षमता पर अत्यधिक जोर देता है।
   4. विश्व बैंक की यह आलोचना भी की जाती है कि गरीब एवं अल्प विकसित देशों की आवश्यकताओं को देखते हुए, इसके साधन बहुत ही कम हैं।

उपर्युक्त आलोचनाओं के अलावा बैंक दर, विलंबपूर्ण कार्यवाहक अधिकारियों की नियुक्तियों आदि के संबंध में भी आरोप लगाया जाता है। विकासशील देशों की सभी परियोजनाओं को वित्तीय सहायता नहीं दी जा सकती है, उनकी उत्पादकता को भी ध्यान में रखना होगा। इसके अतिरिक्त विकासशील देशों की आर्थिक सहायता के लिए विश्व बैंक ने 1960 में अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ की स्थापना की है। अंततोगत्वा निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि विश्व बैंक ने विकासशील देशों की मूल्यवान सेवाएं की हैं तथा यह अनेक विकासशील देशों के आर्थिक विकास की गति को तेज करने में सहायक सिद्ध हुआ है।

अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ– अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ विश्व बैंक से संबंधित है इसकी स्थापना सितंबर 1960 में की गई थी और देशों को आसान शर्तों पर ऋण देने के लिए ही इस नई संस्था की स्थापना की गई है।

अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ का उद्देश्य अविकसित देशों को परिवहन, विद्युत संचार, सिंचाई, बाढ़ नियंत्रण आदि के लिए ऋण प्रदान करना है। यह सदस्य देशों को आवास, गृह निर्माण, पेयजल की आपूर्ति, स्वास्थ्य चिकित्सा आदि से संबंधित योजनाओं के लिए भी ऋण देता है। वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ, विकास बैंक के पूरक के रूप में अविकसित सदस्य देशों को आर्थिक विकास के लिए सस्ता दीर्कालीन ऋण उपलब्ध कराता है। इन पर ब्याज की कम दर ली जाती है, दीर्घकालीन ऋण का भुगतान देश की मुद्रा में ही ले लिया जाता है।

30 जून, 2020 को समाप्त हुए वित्तीय वर्ष में, IDA की कुल प्रतिबद्धता 30.48 बिलियन डालर थी। संघ के सदस्य दो श्रेणियों में विभाजित हैं– पहली श्रेणी में आर्थिक

टिप्पणी

दृष्टि से अति विकसित अट्ठारह देश हैं जो अपना अंशदान स्वर्ण तथा परिवर्तनीय मुद्रा में देते हैं। दूसरी श्रेणी में अन्य देश हैं जो अपने अंशदान का 10% भाग स्वर्ण और शेष 90% भाग अपनी मुद्रा में देते हैं।

आर्थिक विकास के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ का विशेष कोष– संयुक्त राष्ट्र संघ के इस विशेष कोष की स्थापना 1 जनवरी, 1959 को हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य पिछड़े तथा अल्प विकसित देशों को आर्थिक सामाजिक एवं तकनीकी विकास के लिए यथासंभव सहायता प्रदान करना है।

व्यापार विकास सम्मेलन– व्यापार विकास संबंधी संयुक्त राष्ट्रीय सम्मेलन की स्थापना 1964 में हुई थी। इस सम्मेलन की स्थापना का मुख्य उद्देश्य आर्थिक विषमताओं को दूर करना और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन देना है। यह सम्मेलन राष्ट्रों को आपस में प्रतिस्पर्धा से बचाता है तथा उन्हें अधिकाधिक निर्यात के लिए प्रोत्साहित करता है।

संयुक्त विकास कार्यक्रम– संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम 1966 से कार्यरत है। विकासशील देशों की आर्थिक संभावनाओं और उनके सर्वोत्तम उपयोग की योजना बनाने हेतु यह आवश्यक सर्वेक्षण और अध्ययन कराता है। इस प्रकार विकास कार्यक्रम की महती उपयोगिता है। वर्तमान में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के अंतर्गत लगभग 10,000 अंतर्राष्ट्रीय स्तर के विशेषज्ञ, लगभग 150 से भी अधिक देशों में विकास परियोजनाओं में कार्यरत हैं। ये परियोजनाएं बड़ी व्ययसाध्य हैं। इन पर करोड़ों डॉलर का व्यय होता है।

मूल्यांकन– सैद्धांतिक रूप से इनका कार्य सराहनीय रहा है। संखियकी क्षेत्र में इनका कार्य उपयोगी है। प्रगतिशील राष्ट्र को दी जाने वाली सहायता का कुछ अंश इन एजेंसियों द्वारा दिया जाता है। उन्नतिशील राष्ट्र अपनी राष्ट्रीय नीतियों के आधार पर विकसित राष्ट्रों की सहायता करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान हेतु अनेक राष्ट्रों के साधनों का उपयोग विशेष एजेंसी द्वारा ही संभव है। बड़े राष्ट्रों की अपेक्षा छोटे–छोटे राष्ट्रों का सहयोग अधिक हितकर प्रमाणित हुआ है। विशेष एजेंसियों के अंतर्गत सहायता देने वाले राष्ट्रों की अंतर्राष्ट्रीय साख तथा प्रतिष्ठा बहुत अधिक बढ़ जाती है तथा जो बड़े राष्ट्र विशेष एजेंसियों के माध्यम से सहायता न कर अलग से सहायता या सहयोग करते हैं उनकी इसलिए आलोचना की जाती है कि बड़े राष्ट्र सहायता के माध्यम से अपना राजनैतिक स्वार्थ पूरा करना चाहते हैं। निहित स्वार्थों की पूर्ति हेतु साम्राज्यवादी राष्ट्रों द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता को स्वाभिमानी राष्ट्र अस्वीकार भी कर देते हैं। विशेष एजेंसी द्वारा दी जाने वाली सहायता का दुरुपयोग संभव नहीं है क्योंकि ऐसी सहायता अविकसित राष्ट्रों के हितों को ध्यान में रखकर दी जाती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के सामाजिक न्याय के उपाय–चार्टर के अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ का यह दायित्व है कि मानव मात्र की सामाजिक और आर्थिक भलाई के लिए विभिन्न साधन उपलब्ध कराए। पिछड़े देश सरलता से उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का शिकार बनकर कालांतर में विश्व शांति के लिए खतरा सिद्ध होते हैं, अतः उन्हें उनकी दुरावस्था से निकालने के लिए विश्व संस्था को प्रत्यक्ष–परोक्ष गैर राजनीतिक कार्य भी करने पड़ते हैं। साधनों के अभाव में विकासशील राष्ट्र एक ओर तो अपने वांछित परिवर्तन करने में असमर्थ रहते हैं और दूसरी ओर विकसित राष्ट्रों द्वारा

टिप्पणी

उनका शोषण किया जाता है। यही स्थिति युद्धों को जन्म देने वाली अथवा अंतर्राष्ट्रीय शांति को आघात पहुंचाने वाली होती है अतः विश्व संस्था का यह दायित्व है कि वह विश्व शांति को स्थायी बनाने के लिए संसार के विकासशील राष्ट्रों की आर्थिक और सामाजिक उन्नति की ओर ध्यान दे। वह विश्व में सामाजिक न्याय के लिए कार्य करे, सामाजिक विकास और स्वास्थ्य पर ध्यान दे, मानव अधिकार और मौलिक स्वतंत्रताओं के प्रति राष्ट्रों और व्यक्तियों के मन में विश्वास उत्पन्न करे तथा उपनिवेशवाद की समाप्ति के लिए प्रयत्नशील रहे। संघ के चार्टर में इस प्रकार की अनेक व्यवस्थाएं दी गई हैं जिनके आधार पर विश्व आर्थिक और सामाजिक असमानताओं को दूर करने के लिए अग्रसर हो सके। चार्टर के अनुच्छेद 55 में उल्लेख है कि ''स्थायित्व तथा कल्याणकारी स्थितियों के निर्माण की दृष्टि से, जो लोगों के समान अधिकारों और आत्म–निर्णयों के सिद्धांत पर आधारित राष्ट्रों के मध्य शांतिपूर्ण एवं मैत्रीपूर्ण संबंधों के लिए आवश्यक है, संयुक्त राष्ट्र संघ निम्नलिखित बातों को प्रोत्साहन देगा–

(अ) जीवन में उच्च स्तरों, पूर्णकालिक रोजगार तथा आर्थिक एवं सामाजिक न्याय और विकास की स्थितियों को।

(द) अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक–सामाजिक–स्वास्थ्य एवं संबंधित समस्याओं के समाधान तथा संस्कृति और शिक्षा संबंधी अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को।

(स) जाति, लिंग, भाषा अथवा धर्म के भेदभाव के बिना मानव अधिकारों और आधारभूत स्वतंत्रताओं के लिए सार्वदेशिक सम्मान और अनुपालन को। ''

उपर्युक्त सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कुछ अभिकरणों की भी स्थापना की गई है।

आर्थिक एवं सामाजिक न्याय तथा प्रगति के लिए किए गए कार्य– संयुक्त राष्ट्र, आर्थिक कल्याण को प्रोत्साहन देने के लिए विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि के माध्यम से प्रयत्नशील है। संयुक्त राष्ट्र संघ का यह कर्तव्य है कि वह नव स्वतंत्र राष्ट्रों के शैक्षणिक आर्थिक तकनीकी तथा अन्य अभावों को यथाशक्ति पूरा करे। इस दृष्टि से महासभा ने 1961 में यह निश्चय किया था कि 1960 से 1970 तक के समय को ''संयुक्तराष्ट्र विकास दशक'' का नाम दिया जाए और इस अवधि में पिछड़े हुए देशों की आर्थिक तथा सामाजिक दशा सुधारने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गंभीर प्रयास किए गए। प्रयत्न यह किया गया कि प्रत्येक देश में हर नागरिक की वार्षिक आय में 5% की वृद्धि हो जाए। विकासशील देशों के आर्थिक विकास और अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य के प्रसार के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने एक नए व्यापार और विकास संगठन का गठन किया जो 1964 से ही कार्यरत है। इस क्षेत्र में जो पद्धति स्वीकृत की गई है उसके तीन भाग हैं। पहला भाग व्यापार तथा विकास संबंधी संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (UNCTA D) है। इस सम्मेलन के निर्णयों को लागू करने के लिए व्यापार एवं विकास मंडल है जिसने व्यापार संबंधी कार्यों पर विचार करने के लिए अनेक स्थायी समितियों की स्थापना की है। विश्व के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए विज्ञान और तकनीकी का अधिक उपयोग किया जाए। विकासशील देशों को विकास कार्यक्रम का व्यय वहन करने के लिए धन देने का प्रयत्न किया जा रहा है। विकास के आधारभूत कार्यक्रमों में संयुक्त राष्ट्र संघ विभिन्न देशों की सरकारों को प्राकृतिक साधनों के अधिकतम उपयोग के लिए, प्रशासकीय व्यवस्थाओं के सुधार के लिए, परिवहन सुविधाओं को आधुनिक बनाने के लिए, राष्ट्रीय अंकशास्त्रीय बजट संबंधित व्यवस्थाओं

को उन्नत बनाने के लिए सहायता दे रहा है। मानवीय संसाधनों के सर्वाधिक उपयोग पर भी विशेष बल दिया गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ अनेक विकासशील देशों में दो समस्याओं पर बहुत ध्यान दे रहा है– एक तो बढ़ती हुई जनसंख्या और दूसरे गांवों से शहरों की ओर भारी संख्या में लोगों का आना।

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्र का ये प्रयत्न रहा है कि पिछड़े और विकासशील देशों की सामाजिक आर्थिक प्रगति के लिए हर संभव प्रयत्न किया जाए। फलस्वरूप भूमि सुधार कार्यक्रमों के लिए, युवकों की समस्याओं के लिए, बाल अपराध तथा सामुदायिक विकास आदि के लिए सहायता दी जाती है। सामाजिक समस्याओं पर विचार करने के लिए समय–समय पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन होता है, जैसे विश्व जनसंख्या सम्मेलन, अपराध निरोधक तथा अपराधियों के प्रति व्यवहार संबंधी संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन, विश्व भूमि सुधार सम्मेलन आदि, संयुक्त राष्ट्र विस्तृत विकास योजना की तैयारी में सहयोग देता है ताकि आर्थिक व सामाजिक प्रगति हो सके। औद्योगीकरण को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से स्थापित औद्योगिक विकास केंद्र उद्योग विकास की विशेषताओं से संबंधित अनेक संयुक्त राष्ट्रीय एजेंसियों के साथ मिलकर कार्य करते हैं। इस खेल में औद्योगीकरण की उपलब्धियों के संबंध में एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका में अनेक क्षेत्रीय गोष्ठियों को संगठित किया गया है।

संयुक्त राष्ट्र ने चार क्षेत्रीय आर्थिक आयोग भी स्थापित किए हैं– यूरोपीय आर्थिक आयोग, एशिया आर्थिक आयोग, लेटिन अमेरिका आर्थिक आयोग एवं अफ्रीका आर्थिक आयोग। ये क्षेत्रीय आर्थिक आयोग विश्व के आर्थिक और सामाजिक विकास के महान कार्य में उल्लेखनीय भूमिका अदा कर रहे हैं। आर्थिक सहयोग के क्षेत्र में इन्होंने महत्वपूर्ण नेतृत्व प्रदान किया है। आयोग इस बात के लिए प्रयत्नशील हैं कि धनी और निर्धन देशों के बीच अंतर यथासंभव कम किया जाए। एशिया एवं सुदूरपूर्व आर्थिक आयोग 'इकाफ' अपने उपायों द्वारा एशियाई आर्थिक जीवन से संबंधित सभी महत्वपूर्ण मामलों को निपटाने के लिए प्रयत्नशील है। यह आर्थिक विकास एवं समायोजन, आर्थिक अनुसंधान, वित्त, बाढ़ नियंत्रण, खनिज संसाधन, गृह निर्माण, अंतर्देशीय यातायात व संचार तथा आर्थिक विकास की अन्य सामाजिक गतिविधियों में संलग्न है। आयोग ने अपने क्षेत्र के सदस्य देशों में प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना की है, अध्ययन दौरों का आयोजन किया है और उपयोगी प्रमुख सेवाएं प्रदान की हैं। आयोग द्वारा सम्मेलनों और विचार गोष्ठियों की व्यवस्था की जाती है जिनमें औद्योगिक विकास के प्रश्नों पर अधिक बल दिया जाता है। चार्टर का एक मुख्य ध्येय सामाजिक विकास और न्याय तथा उच्चतर जीवन स्तर को प्रोत्साहन देना है। आर्थिक एवं सामाजिक परिषद पिछड़े हुए विकासशील राष्ट्रों की सहायता करके इस ध्येय की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील है। संयुक्त राष्ट्र बाल कोष, यूनेस्को, विश्व स्वास्थ्य संगठन आदि के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र संघ सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक और विविध कल्याणकारी विकास कार्य पूरे करने में लगा हुआ है।

संयुक्त राष्ट्र बाल कोष अथवा यूनिसेफ बालकों के स्वास्थ्य, उनकी शिक्षा और भलाई के कार्यों से संबंधित है। इस समय संसार के लगभग 115 देशों की यूनिसेफ द्वारा सहायता की जा रही है। इसकी सहायता सरकारों की प्रार्थना पर दी जाती है।

टिप्पणी

सरकारों को अपने बच्चों की प्रमुख आवश्यकताओं का निश्चय करने और उन्हें पूरा करने के लिए विस्तृत कार्यक्रमों की योजना बनाने में भी यूनिसेफ सहायक होता है। यूनिसेफ के कार्यक्रमों के फलस्वरूप विश्व के लाखों बालकों को मलेरिया, क्षय, कोढ़ आदि विभिन्न रोगों से बचाया जा रहा है और लाखों को रोगमुक्त किया जा चुका है, डॉक्टर, नर्सें तथा स्वास्थ्य संबंधी अन्य कार्यकर्ता यूनिसेफ से प्रशिक्षण प्राप्त करके स्थायी स्वास्थ्य केंद्रों में कार्यरत हैं। संयुक्त राष्ट्र बाल कोष अथवा यूनिसेफ एक अर्धस्वशासित संस्था है और संयुक्त राष्ट्र का भाग है। इसका प्रशासन 30 राष्ट्रों का एक मंडल करता है जिसका चुनाव आर्थिक एवं सामाजिक परिषद द्वारा किया जाता है। इसकी आय का बड़ा स्रोत सरकारों द्वारा स्वैच्छिक अनुदान है।

शरणार्थियों के लिए संयुक्त राष्ट्र उच्च आयुक्त का कार्यालय उन व्यक्तियों को अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण देता है जो विभिन्न राजनीतिक कठिनाइयों के फलस्वरूप अपने मूल देशों को छोड़ कर आते हैं। महाशक्तियों के असहयोगपूर्ण रुख अथवा उनकी शिथिल नीति के कारण इस भयानक और अभूतपूर्व शरणार्थी समस्या के समाधान की दिशा में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका पक्षपातपूर्ण रही है। नशीली औषधियों के दुरुपयोग को रोकने की दिशा में भी संयुक्त राष्ट्र संघ प्रगतिशील है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने मादक पदार्थों के उत्पादन और व्यापार पर अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण की एक पद्धति प्रस्तुत की है जिसका उद्देश्य यह है कि ऐसे पदार्थों का उपयोग केवल चिकित्सा संबंधी तथा विज्ञान संबंधी उद्देश्य के लिए ही किया जाए। संयुक्त राष्ट्र संघ की ही एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था इस बारे में नीति निर्धारण करती है और आशा की जाती है कि सभी सरकारें इस नीति का पालन करेंगी।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जो विभिन्न प्रमुख सहकारी कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं उनके अंतर्गत पिछड़े हुए और विकासशील देशों को विभिन्न प्रकार की सहायता प्रदान की जाती है। यह सहायता प्रायः इन रूपों में उपलब्ध है– परामर्शदाता, छात्रवृत्ति, सामुदायिक विकास, सामाजिक कार्य के लिए प्रशिक्षण, अपराध निरोध, समान सामाजिक सेवाएं, नगरीकरण, प्रवेश एवं आयोजन, जनसंख्या संबंधी गोष्ठियों का गठन आदि। जनसंख्या और अपराधों की वृद्धि भी संयुक्त राष्ट्र की चिंता का विषय है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन– स्वास्थ्य संबंधी कार्यों को संपादित करने के लिए स्थापित किए गए इस संगठन की नींव 19 जून, 1946 को संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद द्वारा न्यूयॉर्क में आमंत्रित एक सम्मेलन में पड़ी। स्वास्थ्य संबंधी समस्या पर विचार करने के लिए आयोजित इस सम्मेलन ने 22 जुलाई, 1946 तक विचार किया और इसी बीच उसने विश्व स्वास्थ्य संगठन के संविधान की रचना की। इस संविधान की रचना में 67 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया तदनुसार 7 अप्रैल, 1948 को इस संगठन की स्थापना हुई। इसलिए 7 अप्रैल को समग्र विश्व में 'स्वास्थ्य दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

सदस्यता– इस संगठन की सदस्यता सभी राष्ट्रों के लिए खुली है। संयुक्त राष्ट्रीय सदस्य इस संविधान को स्वीकार कर इसमें सम्मिलित हो सकते हैं। आज विश्व के अधिकतर देश इसके सदस्य हैं। प्रत्येक सदस्य राज्य का कर्तव्य है कि वह संगठन को भेजे जाने वाली वार्षिक रिपोर्ट में यह भी स्पष्ट करे कि उसने अपने नागरिकों के

टिप्पणी

स्वास्थ्य के लिए क्या काम किया। रिपोर्ट में यह भी उल्लेख किया जाता है कि सदस्य राज्य ने संगठन द्वारा स्वीकृत समझौतों और नियमों का कहां तक पालन किया है और स्वास्थ्य के संबंध में कौन–कौन से महत्वपूर्ण कानून बनाए हैं।

अंग– विश्व स्वास्थ्य संगठन के अंग अग्रलिखित हैं– सभा, कार्यकारी मंडल एवं सचिवालय। सभा में सभी सदस्य राष्ट्रों के प्रतिनिधि होते हैं। इसकी वर्ष भर में एक बार बैठक होती है। इसका मुख्य कार्य नीति निर्धारण करना है।

कार्यकारी मंडल में 24 सदस्य होते हैं जिनका निर्वाचन सभा द्वारा चिकित्सा अधिकारियों एवं विशेषज्ञ व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। इसकी बैठक वर्ष में दो बार अवश्य होती है।

सचिवालय में एक महानिदेशक और उसका कर्मचारी वर्ग होता है। महानिदेशक विश्व स्वास्थ्य संगठन के प्रशासनिक एवं तकनीकी कार्यों की देखभाल करता है। इसका मुख्य कार्यालय जेनेवा में है।

इस संस्था के प्रदेश संगठन अफ्रीका, दक्षिण पूर्वी एशिया, पूर्वी भूमध्य सागर तथा पश्चिमी महासागर के क्षेत्रों में स्थित हैं। चूंकि विश्व स्वास्थ्य संगठन का काम सहायता सलाह में सहयोग देना है न कि एक सर्वोपरि राष्ट्रीय स्वास्थ्य संगठन की तरह काम करना। इस संगठन के द्वारा उपर्युक्त क्षेत्रों में जो प्रादेशिक संगठन अथवा कार्यालय स्थापित किए गए हैं उन्हीं के द्वारा इसका अधिकांश कार्य संचालन होता है। स्थानीय कार्यक्रमों को तैयार करने व प्रादेशिक कार्यालय के लिए प्रत्येक प्रदेश अथवा क्षेत्र के सदस्य देशों की सहमति से नियमित बैठक होती है। स्वास्थ्य स्तरों पर प्रभाव डालने वाले विभिन्न विषयों के बारे में संयुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न क्षेत्रों, एजेंसियों, संयुक्त राष्ट्र संघीय शिशु कोष तथा अनेक अंतर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठनों में सहयोग व संपर्क स्थापित किया गया है।

उद्देश्य एवं कार्य– संगठन की प्रस्तावना में इसके उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है। प्रस्तावना में कहा गया है कि प्रत्येक मनुष्य का यह मौलिक अधिकार है कि उसे उत्तम स्तर की स्वास्थ्य सुविधाओं की प्राप्ति हो। संसार की शांति और सुरक्षा के लिए आवश्यक है कि सभी मनुष्यों के स्वास्थ्य का ध्यान रखा जाए। यदि किसी एक राज्य में स्वास्थ्य के संरक्षण और प्रशासन की दृष्टि से कोई कदम उठाया जाता है तो वह दुनिया भर के लोगों के लिए उपयोगी होगा। संगठन के संविधान में स्वास्थ्य को लक्ष्य करते हुए कहा गया है कि स्वास्थ्य केवल बीमारियों एवं दुर्बलता का अभाव नहीं है अपितु शारीरिक मानसिक और सामाजिक दृष्टि से पूर्ण रूप से उत्तम रहने की दशा है।

संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान और सांस्कृतिक संगठनः यूनेस्को

4 नवम्बर, 1946 को 20 देशों ने लगभग एक वर्ष पहले तैयार किए गए इसके संविधान को स्वीकार करके यूनेस्को का औपचारिक रूप से उद्घाटन किया था। तब से लेकर अब तक यह संगठन काफी लंबी यात्रा तय कर चुका है और वर्तमान में इसके 159 सदस्य हैं। ऐसे भी राष्ट्र इसके सदस्य हैं जो संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य नहीं हैं। उदाहरणार्थ, स्विट्जरलैंड।

यूनेस्को के अंग

टिप्पणी

यूनेस्को के तीन प्रमुख अंग हैं– सामान्य सभा, कार्यकारिणी मंडल एवं सचिवालय।

सामान्य सभा– सामान्य सभा संस्था की सर्वोच्च संस्था है जिसमें सभी सदस्य राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं। प्रत्येक राज्य से 5 प्रतिनिधि तक हो सकते हैं जिन का चुनाव राष्ट्रीय आयोग के परामर्श से या शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं के परामर्श से किया जाता है। प्रत्येक दूसरे वर्ष सामान्य सभा के अधिवेशन होते हैं। सामान्य सभा विश्व के महत्वपूर्ण शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं के विवेचन और विश्लेषण के लिए महत्वपूर्ण मंच है। यह संपूर्ण विश्व के लिए मानसिक कार्यकर्ताओं की संसद के रूप में कार्य करती है। यूनेस्को का कार्यक्रम और बजट निश्चित करती है।

कार्यकारिणी मंडल– कार्यकारिणी मंडल को यूनेस्को का ह्रदय कहा जाता है यह मंडल सामान्य सभा में सम्मिलित सभी राज्यों को प्रतिनिधित्व प्रदान करता है कार्यकारी मंडल यूनेस्को की सर्वोच्च सत्ता (सामान्य सभा) तथा महानिदेशक के मार्गदर्शक का कार्य करता है और साथ ही सचिवालय और सामान्य सभा के मध्य कड़ी का कार्य करता है। कार्यकारी मंडल का निर्वाचन सामान्य सभा द्वारा होता है। इसकी वर्ष में कम से कम 2 बार बैठक अवश्य होती है। इसका कार्य सामान्य सभा द्वारा निर्धारित नीतियों और कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना है।

सचिवालय– सचिवालय ''विशेषज्ञों का आगार'' माना जाता है। सचिवालय में एक महानिदेशक तथा अन्य अधिकारी होते हैं। सचिवालय का प्रधान कार्यालय पेरिस में है और यह 6 प्रमुख विभागों में विभाजित है– शिक्षा, प्रकृतिक विज्ञान, सांस्कृतिक कार्य, समूह शिक्षा और प्रचार साधन तथा प्राविधिक सहायता विभाग। महानिदेशक की नियुक्ति कार्यकारी मंडल द्वारा की जाती है।

संयुक्त राष्ट्र का कोई भी सदस्य यूनेस्को का सदस्य बन सकता है। जो राज्य संयुक्त राष्ट्र के सदस्य नहीं हैं वे भी यूनेस्को की सदस्यता प्राप्त कर सकते हैं परंतु ऐसे राष्ट्र की सदस्यता हेतु कार्य मंडल की सिफारिश के साथ यूनेस्को को सामान्य सभा में उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से स्वीकृति मिलनी चाहिए।

बुद्धिजीवियों, वैज्ञानिकों, सर्जनात्मक कार्यकर्ताओं और कलाकारों एवं विद्यमान सरकारी संगठनों को आर्थिक सहायता देकर यूनेस्को ने उनका अंतर्राष्ट्रीय विकास किया है। यूनेस्को की प्रेरणा और प्रयासों के फलस्वरूप विश्वविद्यालयों के चिकित्सा विद्वानों के अंतर्राष्ट्रीय संघों की परिषद जैसे कई संघ स्थापित किए गए हैं। यूनेस्को ने इन संस्थाओं को आर्थिक सहायता भी प्रदान की है जिससे वे अपने कार्य को संपन्न कर सकें। यूनेस्को के माध्यम से अनेक विश्व संगठनों को आर्थिक सहायता प्रदान की गई है एवं उन संगठनों ने अपने विविध क्षेत्रों में यूनेस्को के कार्यक्रम को लागू करने में सहयोग प्रदान किया है एवं इन संघों द्वारा ही यूनेस्को ने समस्त संसार में बौद्धिक सहयोग को एक ऐसी प्रेरणा दी है जो इतिहास में अनुकरणीय है।

यूनेस्को ने सदस्य राष्ट्रों के मध्य अनेक विषयों पर समझौते करवाए हैं। प्रतिलिप्याधिकार समझौता, लेखकों, वैज्ञानिकों तथा कलाकारों के अधिकारों की रक्षा करता है। युद्ध के समय सांस्कृतिक संपत्ति की सुरक्षा संबंधी समझौता और सांस्कृतिक

टिप्पणी

रेडक्रॉस के अनुसार युद्ध के समय ऐतिहासिक भवनों, संग्रहालयों, पुस्तकालयों तथा अन्य कलात्मक तथा वैज्ञानिक कृतियों की सुरक्षा की जाएगी। यूनेस्को ने राष्ट्रों के मध्य अंतर्राष्ट्रीय समझौतों तथा प्रशासकीय व्यवस्थाओं के माध्यम से शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति तथा जन संचालन के क्षेत्र में सराहनीय सहयोग प्राप्त किया है। यूनेस्को परामर्श के लिए श्रेष्ठ स्थल है जो राष्ट्रों के आंतरिक क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप किए बिना हर तरह के सहयोग के लिए तत्पर है।

शिक्षा यूनेस्को संस्था के समस्त कार्यों के हृदय में स्थित है। इसने निशुल्क व अनिवार्य शिक्षा के विकास हेतु अनेक उपाय प्रस्तुत किए हैं। कुछ तकनीकी संस्थाओं को स्थापित करने में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया है। यूनेस्को ने बुनियादी शिक्षा कार्यक्रम पर भी ध्यान दिया है जिससे अज्ञान, निर्धनता और व्यवस्था की सीमा को तोड़ कर सर्व साधारण व्यक्तियों को भी शिक्षित किया जा सके। बुनियादी शिक्षा के कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने के लिए बुनियादी शिक्षा केंद्र स्थापित किए गए हैं। राष्ट्रीय तथा क्षेत्र स्तर पर विचार गोष्ठियां आयोजित करके तथा विशेषज्ञों को भेजकर यूनेस्को ने अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को वयस्क शिक्षा संबंधी कार्यक्रम को सफल करने में सहायता पहुंचाई है।

यूनेस्को ने प्राकृतिक विज्ञानों के विकास पर भी बहुत ध्यान दिया है। यूनेस्को के माध्यम से वैज्ञानिक सहयोग की पृष्ठभूमि का उचित निर्माण हुआ है और वहीं यूनेस्को ने केंद्रीय शोध हेतु यूरोपीय परिषद की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है क्योंकि अणु शक्ति के क्षेत्र में कोई देश अकेला शोध का व्यय भार नहीं उठा सकता। यूनेस्को ने अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संघ परिषद को आर्थिक सहायता दी जिससे कि अंतर्राष्ट्रीय भू–भौतिक वर्ष योजना के अंतर्गत समस्त प्रकार के वैज्ञानिक शोध के कार्यक्रमों को पूरा किया जा सका। मरू प्रदेशों को उर्वर बनाने के संबंध में अनेक राज्यों में जो प्रयोग हो रहे हैं उन्हें भी यूनेस्को व्यवस्था प्रदान कर रहा है। यूनेस्को ने उत्तर क्षेत्र को रहने योग्य बनाने में सहयोग किया एवं सामुद्रिक संपत्ति को भोजन तथा खाद के लिए उपयोगी बनाने में सराहनीय कार्य किया। यूनेस्को ने लेटिन अमेरिका, मध्यपूर्व, दक्षिण एशिया तथा दक्षिण पूर्व एशिया के लिए क्षेत्रीय विज्ञान सहयोग केंद्र की स्थापना की जिन्होंने अपने क्षेत्रों में सूचनाओं, कर्मचारी वर्ग तथा सामग्री के विनिमय एवं शोध समन्वय में सहयोग किया है।

यूनेस्को ने अनेक राष्ट्रों में सामाजिक विज्ञान संस्थान स्थापित करने के लिए विशेषज्ञ भेजे हैं राज्यों के अनुरोध पर आर्थिक तनाव का अध्ययन करने के लिए सामाजिक विज्ञान के विशेषज्ञों की व्यवस्था की है तथा गैर सरकारी संस्थाओं की सहायता की है। समाज विज्ञान के क्षेत्र में यूनेस्को ने शोध के विकास में सराहनीय योगदान दिया। सामाजिक समस्याओं के हल के लिए सामाजिक विज्ञान का प्रयोग यूनेस्को का अनोखा प्रयास है। मानव अधिकार और शांति को प्रोत्साहन देने से संबंधित कार्यक्रम यूनेस्को के सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रमों में से हैं गंदी बस्ती में रहने वाले लोगों, बाहर से आकर बसने वाले तथा शरणार्थियों जैसे अल्पसंख्यक वर्ग के लोगों द्वारा, जिन्हें आमतौर पर विभिन्न सुविधाएं और अधिकार उपलब्ध नहीं हैं, मानव अधिकारों को इस्तेमाल करने में आने वाली रुकावटों का भी अध्ययन किया जा रहा है। जिस प्रकार यह तथ्य है कि विभिन्न राष्ट्रों को समानता के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक दर्जा प्राप्त है उसी प्रकार यह भी एक वास्तविकता है कि उनकी संस्कृतियों को भी समान रूप से सम्मान दिया गया है।

नवोदित राष्ट्रों के औद्योगिकरण तथा उच्च तकनीकी प्रशिक्षण में यूनेस्को का योगदान अमूल्य माना जाता है। यूनेस्को के माध्यम से श्रमिकों, शिक्षकों तथा रूग्णों के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का स्वागत हुआ। यूनेस्को का गैर–सरकारी संगठनों से संबंधित होना संस्था की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है।

यूनेस्को का मूल्यांकन

टिप्पणी

1. प्रस्तावना में अत्यधिक महत्वाकांक्षाएं व्यक्त की गई हैं जिनके पूर्ण न होने से निराशा और अनिर्णय का वातावरण उत्पन्न होता है।
2. संविदा में अस्पष्टता है।
3. सदस्यों की ओर से संस्था को यथेष्ट सहयोग नहीं मिलता है। अनेक सदस्य राज्यों ने यूनेस्को के कार्यों में उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से भाग नहीं लिया और ऐसे राज्यों की संस्थाएं और भी कम हैं जिन्होंने यूनेस्को द्वारा तय किए गए अंतर्राष्ट्रीय समझौतों का पूर्ण समर्थन किया है। ऐसे राज्यों की संख्या भी काफी है जो अपना आर्थिक अनुदान समय पर नहीं चुकाते।
4. यूनेस्को को उसके विशाल कार्य क्षेत्र के अनुरूप पर्याप्त आर्थिक स्रोत प्रदान नहीं हुए हैं। यह खेद की बात है कि सदस्य राज्य शस्त्र और सैन्य बल पर प्रतिवर्ष जितना खर्च करते हैं उसका एक अंश भी शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति के विकास के लिए खर्च नहीं करना चाहते।
5. यूनेस्को का प्रशासकीय व्यय बढ़ता ही जा रहा है। संस्था को इस क्षेत्र में मितव्ययिता से कार्य करना चाहिए। यूनेस्को की यह कहकर आलोचना की जाती है कि यह संस्था अधिकतर उपदेशात्मक कार्य करती है।
6. अंतर्राष्ट्रीय गतिविधियों का भी कुप्रभाव यूनेस्को पर बिना पड़े नहीं रह सकता। बड़ी शक्तियों के मध्य शीत युद्ध तथा तनाव का प्रभाव निश्चित रूप से यूनेस्को पर पड़ता है।
7. यूनेस्को के सचिवालय में एशिया तथा अफ्रीका को उचित मात्रा में प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाया है। पश्चिमी यूरोप तथा अमेरिका को उनकी जनसंख्या के अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया है। यूनेस्को संपूर्ण शक्ति और प्रभाव से काम कर सके इसके लिए आवश्यक है कि इसके उद्देश्य अधिक यथार्थ परक बनाए जाएं। यह आवश्यक है कि यूनेस्को के कार्यक्रमों को लागू करने में सदस्य राज्य पूरा सहयोग करें। इसी प्रकार अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु यूनेस्को के आर्थिक साधनों का विस्तार जरूरी है। साथ ही यह भी वांछित है कि यूनेस्को को अपने सीमित साधनों को सभी क्षेत्रों में नहीं फैलाना चाहिए।

त्रुटियों तथा विषम परिस्थितियों के होते हुए भी यूनेस्को की सफलताएं प्रभावपूर्ण एवं उत्साहवर्धक हैं। महत्वपूर्ण कार्य करने के लिए यह संस्था अन्य संस्थाओं की अपेक्षा अधिक अच्छी स्थिति में है।

संयुक्त राष्ट्र बाल–कोष

आज के बच्चे कल के नागरिक हैं। संयुक्त राष्ट्र बाल कोष की स्थापना 1946 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा युद्ध के विनाश से ध्वस्त यूरोप के बच्चों की सहायता के लिए एक

टिप्पणी

आपातकालीन संगठन के रूप में की गई थी साथ ही यूरोप के पुनर्निर्माण की समस्याएं थीं और यह काम अनेक वर्षों तक चलता रहा। बाद में विश्व के दूसरे अभावग्रस्त देशों में बच्चों की दयनीय स्थिति की ओर संयुक्त राष्ट्र एवं विश्व के प्रबुद्ध जनमत का ध्यान गया और 1953 तक इसे एक नया रूप दे दिया गया। संक्षेप में 'संयुक्त राष्ट्र बाल कोष' कर दिया गया किंतु इसका संक्षिप्त नाम 'यूनिसेफ' जो तब तक बहुत ही लोकप्रिय हो गया था, पूर्ववत चला आ रहा है।

संयुक्त राष्ट्र बाल कोष का काम स्वैच्छिक अंशदान से चलता है। विश्व के 150 से भी अधिक देशों की सरकारें इसके खर्चे के लिए योगदान करती हैं।

विश्व के विभिन्न देशों में संयुक्त राष्ट्र बाल कोष की सहायता से मां और बच्चों की देखभाल बच्चों के लिए पौष्टिक आहार की व्यवस्था, सहायता और पुनर्वास, शिक्षा एवं प्रशिक्षण, समाज सेवा, बच्चों के विकास की समेकित योजनाएं और शुद्ध पीने के पानी की व्यवस्था के कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र बाल कोष जिन देशों की सहायता करता है उन्हें मुख्य रूप से तीन वर्गों में बांटा जाता है। पहले वर्ग में ऐसे देश सम्मिलित हैं जो बहुत कम विकसित हैं और जहां बच्चों की संख्या 500000 से कम है। दूसरे वर्ग में वे देश शामिल है जो विकास की दृष्टि से मध्यम स्तर पर हैं लेकिन जिन्हें संयुक्त राष्ट्र बाल कोष की सहायता की आवश्यकता है तीसरे वर्ग में ऐसे देश आते हैं जो अपेक्षाकृत अधिक विकसित तो हैं लेकिन अभी भी प्रशिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता होती है ।

संयुक्त राष्ट्र बाल कोष का मुख्य उद्देश्य उन बच्चों की सहायता करना है जो सबसे अधिक गरीब, वंचित, उपेक्षित और पिछड़े हैं। संयुक्त राष्ट्र बाल कोष द्वारा सबसे अधिक सहायता ऐसे ही देशों को दी जाती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ और मानव अधिकार

मानव अधिकार मुख्यतः नैतिक और बौद्धिक हो सकते हैं। नैतिक अधिकार वो हैं जो लोगों की नैतिकता की नीतिशास्त्र विषयक विधि संहिता पर आधारित हैं। इन अधिकारों का राज्य के नियमों द्वारा अनुमोदन नहीं होता और इसलिए उनका उल्लंघन भी वैधानिक रूप से दंडनीय नहीं माना जाता। नैतिक अधिकारों के विपरीत वैध अधिकार राजकीय कानूनों द्वारा मान्य और रक्षित होते हैं तथा लोकतांत्रिक राज्यों में सामान्यतया इन अधिकारों को न्यायिक संरक्षण प्राप्त होता है– शासन के विरुद्ध भी और अन्य अधिकारों के विरुद्ध भी। अधिकारों में नागरिक और राजनीतिक दोनों अधिकार समाविष्ट होते हैं।

आधुनिक युग में मानव अधिकारों के संबंध में दो प्रमुख अवधारणाएं प्रचलित हैं– एक उदारवादी अवधारणा और दूसरी मार्क्सवादी अवधारणा उदारवादी अवधारणा के अनुसार मनुष्य के मूलभूत अधिकारों की पूर्ण सुरक्षा होनी चाहिए ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्ण विकास की दिशा में आगे बढ़ सके सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति में अपना योगदान दे सके और पूर्ण आत्मसम्मान का जीवन बिता सके। मानव अधिकारों की उदारवादी अवधारणा के अनुसार नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का आशय अधिकाधिक स्पष्ट हो यह समझ लेना चाहिए।

मार्क्सवादी विचार के अनुसार विश्व के तथाकथित लोकतांत्रिक देशों के संविधान द्वारा नागरिकों को दिए गए तथाकथित अधिकार व्यावहारिक महत्व नहीं रखते। मानव

अधिकारों की मार्क्सवादी धारणा केवल संविधान में नागरिकों के अधिकारों की व्याख्या कर देने में विश्वास नहीं करती बल्कि इस बात पर भी बल देती है कि उन अधिकारों का प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है। यह केवल नागरिकों को शांति प्रदान नहीं करती बल्कि विश्वास दिलाती है कि वे शासन के शोषण से मुक्त हो गए हैं।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा

टिप्पणी

चार्टर द्वारा सौंपे गए दायित्व को निभाने के लिए महासभा के अधीन आर्थिक सामाजिक परिषद ने 1944 में अपने पहले ही अधिवेशन में एक मानव अधिकार आयोग की नियुक्ति की जिसकी अध्यक्षा श्रीमती रूजवेल्ट थीं। यह निश्चय किया गया कि आयोग सबसे पहले अधिकारों का एक अंतर्राष्ट्रीय लेख तैयार करे। प्रारंभिक कठिनाइयों और पर्याप्त विचार–विमर्श के बाद आयोग द्वारा मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा का प्रारूप तैयार कर लिया गया जिसे 7 दिसंबर, 1948 को महासभा की सामाजिक समिति ने स्वीकार कर लिया और 10 दिसंबर, 1948 की रात्रि को उस पर महासभा की सहमति भी प्राप्त हो गई। प्रारूप को अपनाते समय 58 राष्ट्रों के प्रतिनिधियों में से एक ने भी विरोध में मत नहीं दिया तथा 8 राज्यों (बाईलो–रशियो, चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड, दक्षिण अफ्रीका, सऊदी अरब, रूस, यूक्रेन तथा युगोस्लाविया) ने मतदान में भाग नहीं लिया। दो राज्य मतदान के समय उपस्थित नहीं थे। यह ऐतिहासिक कार्य संपन्न करने के तुरंत बाद ही महासभा ने सदस्य–देशों से प्रार्थना की कि वे इस घोषणा का प्रचार करें और किसी भी राजनीतिक भेदभाव के बिना शिक्षण संस्थानों में पठन–पाठन, व्याख्या, प्रचार, प्रदर्शन आदि का विशेष रूप से प्रबंध करें। वास्तव में मानव–अधिकारों की घोषणा को एक अंतर्राष्ट्रीय मैग्नाकार्टा अथवा मानव–अधिकारों का एक अंतर्राष्ट्रीय चार्टर कहना उचित है।

घोषणा का महत्व एवं लक्षण– महासभा ने अधिकारों की इस घोषणा को ''सभी देशों और सभी व्यक्तियों के लिए सफलता का एक सामान्य मापदंड'' बताया है मानव–अधिकारों की घोषणा का महत्व इसके लक्षणों से अभिव्यक्त होता है–

प्रथम, यह घोषणा सामान्य जन की सर्वोच्च आकांक्षाओं को व्यक्त करती है।

दूसरे, यह घोषणा सार्वभौमिक है अर्थात किसी क्षेत्र विशेष या देश विशेष तक सीमित ना होकर संपूर्ण विश्व के लिए है।

तीसरे, घोषणा में उल्लेखित अधिकार बिना किसी भेदभाव के सभी मनुष्यों के लिए हैं। महासभा के भूतपूर्व अध्यक्ष रोमुलो के शब्दों में "यह घोषणा राष्ट्रीय सीमाओं से परे है जाति और धर्म का ध्यान नहीं रखती। यह मानव अधिकारों और स्वतंत्रताओं की प्रथम सामूहिक घोषणा है।"

चौथे, घोषणा पत्र में समाविष्ट अधिकारों और स्वतंत्रताओं का क्षेत्र व्यापक है इतिहास में यह पहला अवसर है जब मानव अधिकारों की इतनी व्यापक पद्धति को अंतर्राष्ट्रीय मान्यता दी गई हो।

पांचवीं, इस घोषणा की रचना किसी एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के किसी विशेष समूह द्वारा नहीं की गई है बल्कि सभी राष्ट्रों के एक संगठित समाज ने इसका निर्माण किया है। संयुक्त राष्ट्र के जन्म ने इस घोषणा का समर्थन किया है और यह आशा की गई है कि संसार के सभी बाल–वृद्ध नर–नारी इस घोषणापत्र से मार्गदर्शन और प्रेरणा लेंगे।

टिप्पणी

घोषणा की मुख्य त्रुटियां– महासभा द्वारा अधिकारों की यह घोषणा त्रुटिपूर्ण है और इसलिए इसका व्यावहारिक पक्ष अभी तक बहुत कमजोर रहा है। कुछ मुख्य त्रुटियां इस प्रकार हैं–

1. कहा जाता है कि घोषणा ने सदस्य–राज्यों पर कोई वैधानिक प्रतिबंध नहीं लगाया है। मानव–अधिकार आयोग की अध्यक्षा श्रीमती रूजवेल्ट ने कहा था कि इस घोषणा को स्वीकार करते समय यह अधिक महत्वपूर्ण है कि हम इस लेख की मौलिकता को समझें। यह एक नीति नहीं है और ना ही एक अंतर्राष्ट्रीय समझौता है।
2. जॉर्ज श्वर्जनबर्जर के अनुसार, "घोषणा के चौथे अनुच्छेद में दासता को तो निषिद्ध ठहराया गया है लेकिन बेगार के प्रश्न पर विचार नहीं किया गया। घोषणा का अनुच्छेद सर्वाधिक हास्यास्पद है और 17 अनुच्छेद कोई महत्व नहीं रखता।" घोषणा में जो बातें उल्लिखित हैं इतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं जितनी कि वे बातें जिन्हें छोड़ दिया गया है।
3. हंस केल्सन के अनुसार, "घोषणा में सभी मनुष्यों की गरिमा और उनके अधिकारों के संबंध में जन्मजात स्वतंत्रता और समानता प्राप्त है तथा उन्हें बुद्धि एवं अंतरात्मा की देन प्राप्त है, जैसे वक्तव्यों का समावेश है और इन वक्तव्यो का व्यवहारतः कोई महत्व नहीं है।"
4. ब्राजील के प्रतिनिधि ने आर्थिक और सामाजिक परिषद की बैठक में अपने एक भाषण में कहा था कि अधिकारों की इस घोषणा में दार्शनिक सिद्धांतों का अथवा प्राकृतिक नियमों के पुरातन सिद्धांतों का उल्लेख किया जाना व्यर्थ है।

   निस्संदेह घोषणा–पत्र स्पष्टता और प्रभावशीलता की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है तथापि इस प्रकार की सार्वभौमिक प्रकृति का कोई भी लेख पूर्णतया निर्दोष नहीं हो सकता। घोषणा–पत्र चाहे वैधानिक लेख न हो और न ही इसकी वैधानिक मान्यता हो तथापि इस बात से सभी सहमत होंगे कि यह घोषणा–पत्र सामान्य सिद्धांतों का एक श्रेष्ठ विवरण है तथा नैतिक अधिकारों से युक्त है।

उपनिवेशवाद का अंत

संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व में हर प्रकार के उपनिवेशवाद की समाप्ति के लिए प्रयत्नशील है। राष्ट्र संघ की मैंडेट–व्यवस्था केवल जर्मनी, टर्की आदि के साम्राज्यवाद से पीड़ित प्रदेशों के लिए थी किंतु वर्तमान विश्व संस्था की न्याय–व्यवस्था का क्षेत्र उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद द्वारा पराधीन बनाए गए सभी क्षेत्रों के लिए है। न्याय–व्यवस्था के अंतर्गत 11 प्रदेश थे जिनमें अब सभी स्वतंत्र हो चुके हैं। संयुक्त राष्ट्र के निरीक्षण में जनमत–निर्णय–संग्रह के आधार पर अधिकांश न्यास–प्रदेशों को स्वतंत्रता प्राप्त हो गई है।

महासभा ने 14 दिसंबर, 1960 को उपनिवेशों तथा वहां के निवासियों को स्वतंत्रता प्रदान करने की घोषणा की। उद्घोषणा में कहा गया था कि विदेशी शासन द्वारा प्रशासित क्षेत्रों का शोषण किया जा रहा है जिससे संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में निहित मौलिक मानवीय अधिकारों का हनन होता है, जिसके कारण विश्व–शांति और सहयोग में बाधा पहुंचती है।

टिप्पणी

महासभा ने घोषणा को लागू करने के बारे में प्रशासन कर्ता देशों के लिए प्रस्ताव पास किए। इस घोषणा को कार्यान्वित करने के संबंध में निम्नलिखित निर्णय लिए गए–

(i) एक निर्णय के फलस्वरूप महासभा ने घोषणा की कि उपनिवेश शासन के चलते रहने से अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को खतरा है और जाति भेद का व्यवहार तथा जाति भेदभाव के सब तरीके मानवता के विरुद्ध अपराध हैं।

(ii) उपनिवेशों के लोगों द्वारा आत्म–निर्णय तथा स्वाधीनता का अधिकार पाने के लिए संघर्ष उचित है। औपनिवेशिक इलाकों में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों ने जो प्रगति की है उस पर संतोष व्यक्त करती है तथा उसको नैतिक एवं आर्थिक सहायता देने का अनुरोध करती है।

(iii) सब देशों, विशेष शाखाओं तथा अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों से पुर्तगाल, दक्षिण अफ्रीका एवं दक्षिण रोडेशिया को सहायता ना देने का अनुरोध करती है जब तक कि वे उपनिवेशों का प्रभुत्व और जातीय भेदभाव की नीति ना छोड़ दें।

(iv) यह घोषणा करती है कि राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों को कुचलने के लिए विदेशी सैनिक भेजना दंडनीय अपराध है एवं विदेशी सैनिक अवैध हैं।

(v) औपनिवेशिक देशों में उपनिवेशन में बने सैनिक अड्डों को नष्ट कर देने का आग्रह करती है। वह विदेशी, आर्थिक तथा अन्य हितों को मजबूत बनाने तथा प्रतिनिधित्व रहित शासन तथा संविधान थोपने की नीतियों की निंदा करती है ।

(vi) विशेष समिति से ठोस सुझाव देने की प्रार्थना करती है कि जिससे सुरक्षा परिषद औपनिवेशिक इलाकों के बारे में उचित कार्रवाई पर विचार कर सके।

संयुक्त राष्ट्र संघ को उपनिवेशवाद के उन्मूलन में अभी तक जो सफलता मिली है, वह प्रशंसनीय है। इंडोनेशिया, मोरक्को, ट्यूनीशिया, अल्जीरिया तथा दक्षिणी रोडेशिया को स्वतंत्र कराने में संयुक्त राष्ट्र के प्रयास बहुत कुछ सफल रहे हैं। प्रारंभ में इन देशों की स्वतंत्रता के प्रश्न को टालने का बड़ा प्रयत्न किया गया किंतु अंत में उपनिवेशवादी राज्यों को विवश होकर इन्हें स्वतंत्रता देनी पड़ी। इस दिशा में विश्व–संस्था का दबाव एक निर्णायक बचाव सिद्ध हुआ।

अपनी प्रगति जांचिए

6. अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संगठन का पूर्ण गठन किस वर्ष में हुआ?

(क) 1945 (ख) 1946

(ग) 1949 (घ) 1947

7. विश्व बैंक की स्थापना किस सम्मेलन के फलस्वरूप हुई थी?

(क) सैनफ्रांसिस्को (ख) याल्टा

(ग) ब्रटेनवुड्स (घ) इनमें से कोई नहीं

8. भारत विश्व बैंक का कैसा सदस्य है?

(क) मौलिक (ख) स्थायी

(ग) अस्थायी (घ) ऐच्छिक

टिप्पणी

9. विश्व स्वास्थ्य दिवस कब मनाया जाता है?
   (क) 7 मार्च (ख) 7 अप्रैल
   (ग) 17 अप्रैल (घ) 16 अप्रैल
10. यूनेस्को के किस अंग को 'मानसिक कार्यकर्ताओं की संसद' कहा जाता है?
   (क) सामान्य सभा (ख) कार्यकारिणी मंडल
   (ग) सचिवालय (घ) प्रबंध समिति
11. यूनेस्को के किस अंग को 'यूनेस्को का हृदय' कहा जाता है?
   (क) सामान्य सभा (ख) प्रबंध समिति
   (ग) सचिवालय (घ) कार्यकारिणी मंडल
12. संयुक्त राष्ट्र ने मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा कब की थी?
   (क) 10 दिसंबर, 1948 (ख) 12 जनवरी, 1948
   (ग) 10 नवंबर, 1947 (घ) कोई नहीं

5.4 संयुक्त राष्ट्र संघ– एक आलोचनात्मक मूल्यांकन, समस्याएं और संभावनाएं

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना बड़ी आशा और विश्वास के साथ की गई थी। उसके विधान (चार्टर) की प्रस्तावना में घोषित किया गया था कि संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना आगे आने वाली पीढ़ियों को युद्ध की विभीषिका से बचाने, मानव अधिकारों की पुनः स्थापना एवं न्यायपूर्ण व्यवस्था के निर्माण हेतु की गई है। इसलिए उसके मुख्य उद्देश्य यह रखे गए–

(1) सामूहिक व्यवस्था द्वारा अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा कायम रखना और आक्रामक प्रवृत्तियों को नियंत्रण में रखना।

(2) अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान करना।

(3) राष्ट्रों के आत्म निर्णय और उपनिवेशवादी विघटन की प्रक्रिया को गति देना।

(4) सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय क्षेत्रों में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित एवं पुष्ट करना।

संघ ने इन उद्देश्यों से जुड़े हुए अन्य लक्ष्य भी निर्धारित किए। ये हैं– निशस्त्रीकरण और नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना।

निश्चय ही ये सब उद्देश्य एवं सिद्धांत सर्वमान्य और सराहनीय हैं और संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्य देश सार्वजनिक रूप से इनके प्रति संकल्पबद्ध हैं। फिर भी 75वीं जयंती के संदर्भ में प्रस्तावित पुनः संकल्प के अवसर पर यह देखना–परखना प्रासंगिक होगा कि पिछले सात दशकों में संघ एवं उसके सदस्य–देशों ने इनका निर्वाह अथवा अनुकरण किस सीमा तक किया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का सर्वोपरि उद्देश्य है कि विश्व शांति एवं सुरक्षा बचाए रखना और इसकी मुख्य जिम्मेदारी सुरक्षा परिषद पर है। यहां पर यह कहना गलत न होगा

कि विश्व शांति को खतरे में डालने वाला कोई भी बड़ा अंतर्राष्ट्रीय संवर्ग कभी भी उभर या पनप सकता है जब उसे एक या अधिक बड़े राष्ट्रों की सहायता या समर्थन प्राप्त हो। लेकिन ऐसे किसी भी संघर्ष को सुरक्षा परिषद कैसे रोक या नियंत्रित कर सकती है जबकि हर बड़े राष्ट्र अर्थात अमेरिका, सोवियत रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन को तात्विक या वास्तविक प्रश्नों के निर्णय में निषेधाधिकार (वीटो) प्राप्त है?

टिप्पणी

द्वितीय विश्व युद्ध के अनंतर यानी संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के बाद से 5–6 बड़े अंतर्राष्ट्रीय संकट के प्रश्न उत्पन्न हुए हैं– बर्लिन का संकट (1948–1949), क्यूबा प्रक्षेपास्त्र संकट (1962), हंगरी का संकट (1956), चेकोस्लोवाकिया का संकट (1968) और वियतनाम युद्ध (1968–73)। हाल के वर्षों में उत्पन्न हुई दो गंभीर संकटकालीन स्थितियां हैं–अफगानिस्तान का संकट (1981– 82) एवं खाड़ी युद्ध (1990–91)। इन सभी में एक न एक महाशक्ति प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हिस्सेदार थी इसलिए इसमें सुरक्षा परिषद कोई असरदार कार्रवाई नहीं कर सकी। सिर्फ कोरिया संघर्ष (1950–53) में सुरक्षा परिषद ने ऐसी कार्रवाई करने का निर्णय किया था। लेकिन जैसा कि सर्वविदित है, सोवियत प्रतिनिधि मंडल के रहते हुए यह निर्णय कार्यान्वित होना असंभव था।

यह सही है कि पिछले 40 से भी अधिक वर्षों में कोई महायुद्ध अथवा परम शक्तियों यानी अमेरिका और रूस के बीच सीधा फौजी टकराव नहीं हुआ है। लेकिन इसका श्रेय इन दोनों के बीच स्थापित नाभिकीय संतुलन और संभावित परमाणु युद्ध के भीषण परिणामों के एहसास को है न कि संयुक्त राष्ट्र संघ को।

संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका के संदर्भ में यह भी याद रखना होगा कि पिछले 4 दशकों में क्षेत्रीय स्तर पर लगभग 150 छोटे–बड़े सैन्य संघर्ष हुए हैं। चंद उदाहरण है– भारत चीन युद्ध, भारत–पाकिस्तान संघर्ष (तीन बार), अरब इजरायल युद्ध (दो बार), ईथोपिया–सोमालिया संघर्ष, वियतनाम–कंपूचिया संघर्ष, युगांडा–तंजानिया संघर्ष और ईरान इराक युद्ध। इन सब का निपटारा वस्तुतः संबंधित देशों की सीधी वार्ता या दूसरे देशों की अध्यक्षता से हुआ है और उसमें संयुक्त राष्ट्र संघ की या तो कोई भूमिका नहीं रही या नगण्य रही। विवादों या झगड़ों के शांतिपूर्ण निपटारे के सिलसिले में भी बहुत कुछ यही स्थिति रही है। भारत के निकटवर्ती दक्षिण एशिया के क्षेत्र को ही ले लीजिए। क्षेत्र में भारत–पाक युद्ध के उपरांत हुए ताशकंद और शिमला समझौतों के अतिरिक्त तीन बड़े विवादों का समाधान हुआ है भारत और श्रीलंका के बीच शास्त्री–सिरिमावो समझौता (1964), भारत–पाकिस्तान के बीच कच्छ विवाद का निपटारा (1965–66) और भारत बांग्लादेश के बीच फरक्का समझौता (1977)। इनमें से पहले और तीसरे का समाधान सीधी द्विपक्षीय बातचीत से हुआ और कच्छ विवाद का पंच फैसले द्वारा। हां, कश्मीर विवाद कई वर्षों तक सुरक्षा परिषद की कार्यसूची पर रहा, लेकिन सुलझने के बजाय, उलझता ही गया।

उपनिवेशवाद के विघटन के मामले में 14 दिसंबर, 1960 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में 89 मतों से उपनिवेशवाद विघटन घोषणा पारित हुई। निश्चय ही इस ऐतिहासिक घोषणा के बाद लगभग 50 राष्ट्रों को स्वाधीनता प्राप्त हुई। शायद यह भी स्वीकार करना होगा कि विभिन्न उपनिवेशों में स्वतंत्रता सेनानियों को इस घोषणा से नया बल और प्रोत्साहन मिला। लेकिन जहां तक इस में संयुक्त राष्ट्रसंघ के सीधे व ठोस योगदान का प्रश्न है औपनिवेशिक समस्याओं के विख्यात अमेरिकी विशेषज्ञ रूपर्ट इमरसन का कहना है–''उपनिवेशवाद के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र कोई ठोस कार्रवाई नहीं

कर सका है, उपनिवेशवाद–विघटन की अधिकांश राजनीति संयुक्त राष्ट्र संघ के घेरे में से नहीं गुजरी। प्रायः उपनिवेशवाद विघटन संबंधी सभी कार्रवाइयां उपनिवेश निवासियों के शांतिपूर्ण या गैर शांतिपूर्ण प्रयासों (अथवा तद्जनित द्विपक्षीय समझौतों) के फलस्वरूप हुई।''

टिप्पणी

निरस्त्रीकरण के प्रश्न पर जनवरी, 1946 में लंदन में हुए महासभा के प्रथम सत्र में विचार–विमर्श हुआ था। उसके बाद प्रायः महासभा के हर आर्थिक सम्मेलन में इस पर विचार होता रहा है। इसके अलावा आंशिक परीक्षण विरोध संधि (1963) और परमाणु प्रसार विरोध संधि (1970) से संबंधित विचार–विमर्श में संयुक्त राष्ट्र संघ का सीमित योगदान रहा। लेकिन इन संधियों की मुख्यधारा पर सहमति महाशक्तियों तथा दूसरे राष्ट्रों की आपसी बातचीत से हुई।

दोनों 'साल्ट' समझौते (1972 व 1979) भी अमेरिका और रूस के बीच सीधी बातचीत के फल स्वरूप हुई। हां 1978 और 1982 में महासभा के दो विशेष सम्मेलनों में इस समस्या पर व्यापक विचार–विमर्श हुआ। प्रथम सम्मेलन में एक प्रस्ताव द्वारा संपूर्ण निशस्त्रीकरण रूपी लक्ष्य घोषित किया गया। लेकिन इसका कोई खास परिणाम नहीं निकला। प्रथम सम्मेलन के 4 वर्ष बाद जून 1982 में तत्कालीन अध्यक्ष इस्मत किटियानी को कहना पड़ा, ''इन 4 वर्षों में क्या हुआ? इसका जवाब हम सबको मालूम है फिर भी मैं खुले शब्दों में सारी दुनिया को बता देना चाहता हूं कि कुछ भी नहीं हुआ। (प्रथम विशेष सम्मेलन के बाद के) इन 4 वर्षों में एक भी शस्त्र कम नहीं हुआ। यह हमारी नाकामयाबी की एक खुली और दर्दनाक मिसाल है।'' दूसरे विशेष सम्मेलन (1982) का तो यह हाल रहा है कि कोई आम घोषणा भी जारी नहीं हो सकी।

सामाजिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास के महत्वपूर्ण क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ की 32 विशिष्ट सेवाएं (यूनेस्को, विश्व स्वास्थ्य संगठन, और विश्व कृषि खाद्य संगठन इत्यादि) कार्यरत हैं। लेकिन इन सब के कुल बजट से लगभग 250 गुना पैसा तो प्रतिवर्ष जनसंख्या के निर्माण एवं संचय पर व्यय हो रहा है। पूरे संसार के सामाजिक और सांस्कृतिक उत्थान के लिए इन विशिष्ट संस्थाओं की सीमाओं का वर्णन कुछ वर्ष पूर्व एक अमेरिकी लेखक पत्रकार जान मैकलारिन ने बड़े ही चुभते ढंग से किया था। उनका कहना था कि इन संस्थाओं के कुल बजट से कई गुना अधिक खर्च तो अमेरिका में प्रतिवर्ष तेल साबुन और श्रृंगार सामग्री के विज्ञापनों पर होता है। उस पर भी अमेरिका समेत कई बड़े राष्ट्र इसमें से कुछ संस्थाओं को अपना वार्षिक अंशदान देने से इंकार कर रहे हैं। परिणाम यह होगा कि इनके कार्यकलाप भविष्य में और भी सीमित हो जाएंगे।

पिछले एक दशक में संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य राष्ट्र एक और प्रश्न पर बहुत चिंतित हैं, वह है, 'नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था' की स्थापना का मामला। संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकांश सदस्य इस प्रस्तावित योजना के अंतर्गत धनाढ्य और विकासशील देशों के बीच अंतर्राष्ट्रीय व्यापक आर्थिक सहायता, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के पुनर्गठन तथा सरंक्षणवाद उन्मूलन इत्यादि की मांग कर रहे हैं। महासभा में बहुमत में होने के कारण विकासरत देश मई 1974 में इस विषय पर व्यापक प्रस्ताव पारित करने में सफल हो गए लेकिन इसके बावजूद पिछले 10 वर्षों से संयुक्त राष्ट्र संघ प्रस्तावित उत्तर दक्षिण (नॉर्थ साउथ) वार्ता के लिए धनाढ्य देशों को रजामंद करने में पूरी तरह असमर्थ रहा है।

टिप्पणी

परंतु इन सभी कमजोरियों के बावजूद यह मानना होगा कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने संघर्ष की कई स्थितियों में जैसे कि कांगो और साइप्रस में शांति रक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया है। इसी प्रकार कई अंतर्राष्ट्रीय विवादों में जैसे कि भारत–बांग्लादेश विवाद तथा पश्चिमी एशिया संकट में उसने विचार–विमर्श एवं सलाह–मशविरे के माध्यम से हालात की गहमागहमी को कम करने में कूलर की भूमिका निभाई है। इसके अलावा संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्यालय का अपना विशिष्ट वातावरण है उसके कॉफी हाउस और लाउंज और गलियारों में परस्पर विरोधी पक्षों के प्रतिनिधि चाहे अनचाहे आपस में मिल जाते हैं। इस तरह विरोधियों के बीच संवाद संपर्क पूरी तरह टूटता नहीं है। इस अनौपचारिक संपर्क के फल स्वरूप कभी–कभी कुछ शंकाओं का निवारण हो जाता है या तनाव कम हो जाते हैं।

अप्रैल 1985 में संयुक्त राष्ट्र संघ के अध्यक्ष तथा 40वीं जयंती की आयोजक समिति के सभापति पॉल प्लूमा भारत आए थे। एक भेंटवार्ता में उन्होंने राष्ट्र संघ के इस पक्ष का महत्व दर्शाते हुए कहा था कुछ लोगों का कहना है कि संयुक्त राष्ट्र संघ केवल गपशप या बातचीत का अड्डा है बहरहाल (अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के संदर्भ में) बातचीत करते रहना बोलचाल बंद कर देने से तो बेहतर है।''

संयुक्त राष्ट्र संघ के विस्तृत और आलोचनात्मक विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि विश्व संस्था का इतिहास सफलताओं और असफलताओं की गाथा रहा है। अनेक बार इसने युद्ध के विस्तार को प्रभावशाली ढंग से रोका है अनेक जटिल विवादों को प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करते हुए सुलझाया अथवा शिथिल बनाया है तथापि कुल मिलाकर यह विश्व–संगठन अभी तक विश्व की आशाओं के अनुरूप सफल सिद्ध नहीं हुआ है। इस अंतर्राष्ट्रीय संस्था में अनेक संविधानिक, सैद्धांतिक और व्यावहारिक दुर्बलताएं हैं जिससे इसकी शक्ति विपरीत रूप से प्रभावित हुई है। अतः यह देखना उचित होगा कि संघ किन विशिष्ट दुर्बलताओं का शिकार है तथा उन्हें दूर करके किस प्रकार से इसे शक्तिशाली बनाया जा सकता है। यह संस्था तो विश्व के राष्ट्रों का घर है, उनके सहयोग का साधन है और इसकी सफलता अंततोगत्वा इसी बात पर निर्भर करती है कि सदस्य–राष्ट्र अपनी राजनीतिक कुटिलता का परित्याग करें और ईमानदारी से संघ के उद्देश्यों के प्रति आस्थावान हों।

संयुक्त राष्ट्र संघ की दुर्बलताएं–

1. संघ अभी तक सार्वदेशिक संगठन नहीं बन सका है। प्रायः देखा गया है कि विश्व संस्था से बाहर रहने वाले देश अंतर्राष्ट्रीय शांति के उत्तरदायित्व से स्वयं को मुक्त समझने लगे हैं, जिसका संघ की कार्य क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
2. संघ सैद्धांतिक विरोधाभास का शिकार है। चार्टर में सभी राज्यों के समान अधिकार और समान प्रभुसत्ता की बात कही गई है किंतु अनेक स्थलों पर आज भी संप्रभु और समानता का सह–अस्तित्व नहीं है।
3. घरेलू क्षेत्राधिकार की कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई है और यह भी उल्लेख नहीं है कि ''घरेलू क्षेत्र'' का निश्चय कौन करेगा। इस बारे में महासभा के निर्णय वस्तुस्थिति के आधार पर न होकर प्रायः गुटबंदी के आधार पर होते रहे हैं। अंतर्राष्ट्रीय कानून में ''घरेलू क्षेत्राधिकार'' और ''हस्तक्षेप'' की विशिष्ट कल्पना है, लेकिन संयुक्त राष्ट्र संघ में यह विशुद्ध राजनीतिक विषय बना हुआ है।

टिप्पणी

4. संयुक्त राष्ट्रसंघ ''यथास्थिति संबंधी अस्पष्टता'' के कारण भी कुछ कम प्रभावशाली रहा है वास्तव में जर्मनी, कोरिया, पूर्वी यूरोप, वियतनाम आदि सभी अस्थायी व्यवस्थाओं के परिणाम हैं और यथास्थिति को कायम रखने के बारे में बहुत अस्पष्टता है। फलस्वरूप प्रभावशाली और निश्चित कार्रवाई करने की दृष्टि से संघ प्रायः अस्थिर रहा है।
5. संघ के वाद–विवाद और निर्णय अधिकांशतः पक्षपात पूर्ण अथवा महाशक्तियों के हितों और निर्णयों से प्रभावित रहे हैं। अधिकांश समस्याएं राजनीति द्वारा तय की जाती हैं। पश्चिमी गुट के बहुमत के जवाब में रूस अपने निषेधाधिकार का बहुलता से प्रयोग करता है। स्वयं महासचिव यह स्वीकार करते हैं कि गुटबंदी और बड़े राष्ट्रों के संघर्ष ने विश्व–संस्था को पंगु बना दिया है।
6. संघ निषेधाधिकार के दुरुपयोग का मंच बना हुआ है। स्थायी सदस्य किसी भी उचित किंतु अपने से विरोधी दावे को निषेधाधिकार के प्रयोग से अमान्य ठहरा देते हैं।
7. महासभा विश्व जनमत का प्रतिनिधित्व नहीं करती। वस्तुतः शांति के लिए एकता का प्रस्ताव पारित किए जाने के बाद भी विवादों में महासभा आज भी अपनी उपयोगिता हेतु बहुत कुछ सुरक्षा परिषद पर आश्रित है। यदि महासभा किसी कार्य की सिफारिश दो तिहाई बहुमत से करे तो भी परिषद उसे अपने विवेक के आधार पर अस्वीकार कर सकती है। यह एक गंभीर संवैधानिक विरूपता है।
8. संघ के पास अपने निर्णयों को क्रियान्वित कराने के लिए स्वयं की शक्ति नहीं है। उसके पास 'काटने के लिए दांत' नहीं हैं। दूसरे शब्दों में उसकी निजी सेना नहीं है और अंतर्राष्ट्रीय शक्ति तथा सुरक्षा को खतरा पैदा होने पर वह सदस्य राष्ट्रों की सैनिक सहायता पर आश्रित रहती है।
9. संघ के निर्णयों का महत्व सिफारिशों से अधिक कुछ नहीं है। सदस्य राज्यों को छूट है कि वह उन्हें स्वीकार करें या न करें। एक बड़ी दुर्बलता यह है कि महासचिव की शक्तियों को भी अभी तक समुचित रूप से स्पष्ट नहीं किया जा सका है।
10. चार्टर में आत्मरक्षा और आक्रमण के बीच स्पष्ट भेद नहीं किया गया है। यह साफ तौर पर परिभाषित नहीं है कि किसी देश के किस प्रकार के कार्य आक्रमण माने जाएंगे।
11. महासभा की कार्यविधि भी दोषपूर्ण है। सभा के समक्ष विचारणीय विषयों की संख्या पहले से ही बहुत अधिक रहती है और इस पर भी लंबे लंबे भाषणों द्वारा सभा का अधिकांश समय नष्ट किया जाता है।
12. महासभा के अधिवेशन में राष्ट्रों के प्रमुख राजनीतिज्ञ उपस्थित रहने की परवाह नहीं करते और साधारण प्रतिनिधियों के उपस्थित रहने से सभा की कार्रवाई अधिक प्रभावशाली नहीं हो पाती।
13. संघ के बाहर की गई सैनिक संधियों के कारण भी इसका महत्व कुछ कम हो गया है। क्विंसी राइट के अनुसार ''क्षेत्रीय सुरक्षा गुटों के अनियंत्रित विकास से संयुक्त राष्ट्र चार्टर के मूल उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। ''

14. यह भी एक विडंबना है कि सदस्यगण महासभा और सुरक्षा परिषद का प्रचार संस्था के रूप में प्रयोग करते हैं। उनका मुख्य उद्देश्य राजनीतिक कलाबाजी द्वारा विश्व जनमत को अनुचित रूप से अपने पक्ष में तैयार करना होता है। नार्मन बैट विच और अंड्रूय मार्टिन के इन शब्दों में वजन है कि महासभा और सुरक्षा परिषद का प्रयोग विवादों को सुलझाने के लिए नहीं अपितु कई बार उसको बनाने के लिए भी किया जाता है।

टिप्पणी

संघ को शक्तिशाली बनाने के सुझाव

(क) महाशक्तियों के बीच पारस्परिक सहमति न होने के कारण चार्टर में महत्वपूर्ण संशोधन अथवा पुनर्वीक्षण नहीं हो सके हैं। यह शंका की जाती है कि संशोधन से वर्तमान शक्ति संतुलन बिगड़ जाएगा और संशोधन संबंधी प्रस्तावों से अंतर्राष्ट्रीय मतभेद प्रखर रूप से उभर आएंगे तथापि समय–समय पर अनेक संशोधन संबंधी सुझाव दिए जाते रहे हैं जिनमें से प्रमुख ये हैं–

1. महासभा में प्रतिनिधित्व के तरीके में परिवर्तन किए जाएं। एक देश के पांच सदस्य और एक वोट के स्थान पर सदस्य तथा वोट जनसंख्या के अनुपात से निर्धारित होने चाहिए ताकि महासभा के निर्णय अधिकतम जनसंख्या के हितों के आधार पर हों।
2. सदस्यता के लिए सुरक्षा परिषद की सिफारिश की शर्त हटा देनी चाहिए अथवा उसमें बहुमत के आधार पर निर्णय की व्यवस्था की जानी चाहिए।
3. महासभा उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से नए सदस्यों को संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता प्रदान करे। केवल महासभा को इस प्रकार सदस्यता प्रदान करने का अधिकार दिए जाने से सदस्यता के प्रश्न पर राजनीतिक सौदेबाजी की वर्तमान दुरावस्था समाप्त हो जाएगी।
4. सुरक्षा परिषद के अस्थायी सदस्यों का प्रावधान हटा देना चाहिए ताकि शक्ति संतुलन पश्चिमी शक्तियों के पक्ष में न रहे। परिषद को संतुलित और निष्पक्ष बनाने के लिए वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय जगत के भारत जैसे महत्वपूर्ण सदस्य को भी इस में समान आधार पर स्थान मिलना चाहिए। यदि स्थायी सदस्यता कायम रखने का निश्चय हो तो उसकी सदस्य संख्या बढ़ाई जाए।
5. घरेलू क्षेत्र की व्यवस्था में समुचित संतुलन किया जाना चाहिए। यह सुझाव भी है कि अंतर्राष्ट्रीय कानून में जो बातें घरेलू क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आती हैं उनका संहिताकरण कर दिया जाए तथा उनके अतिरिक्त जो विषय शेष रहें उन पर शांति एवं सुरक्षा की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र संघ जो कार्रवाई उचित समझे स्वतंत्रतापूर्वक करे।
6. यह सुझाव दिया जाता है कि महासभा सदनात्मक होनी चाहिए– एक 'लोक सदन' हो तो दूसरा 'राष्ट्रीय सदन'। लोक सदन का संगठन प्रत्येक राज्य की जनसंख्या के अनुपात में होना चाहिए तथा राष्ट्रीय सदन का गठन राज्य की समानता के आधार पर हो और उनमें प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को प्रतिनिधित्व दिया जाए।
7. सुरक्षा परिषद की बैठक हमेशा न होकर कुछ निश्चित अवधियों में ही हो ताकि संबंधित देशों के प्रधानमंत्री या विदेश मंत्री उनमें भाग ले सकें। यह सुझाव विशेष

स्वागत योग्य नहीं है क्योंकि सुरक्षा परिषद यदि एक सतत कार्यशील अंग न रहा तो शांति और सुरक्षा को खतरा पैदा होने पर अथवा अन्य किसी महत्वपूर्ण मामले में तुरंत कार्रवाई करने की वर्तमान में जो भी क्षमता है उसमें बाधा पहुंचेगी।

टिप्पणी

8. अनुच्छेद 27 सुरक्षा परिषद में मतदान की व्यवस्था में प्रक्रिया संबंधी विषय तथा अन्य सभी विषय इतने अनिश्चित और अस्पष्ट हैं कि इससे निषेधाधिकार का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। उपयुक्त होगा कि इन शब्दों को अधिक स्पष्ट कर दिया जाए।
9. प्रदेशिक संगठन संबंधी धाराओं में ऐसा संशोधन होना चाहिए जिससे सभी संगठनों की स्थापना को प्रोत्साहन न मिल सके।
10. शांति और सुरक्षा संबंधी मामलों में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के सभी निर्णय राष्ट्रों पर बाध्यकारी माने जाएं पर यह भी सुनिश्चित व्यवस्था होनी चाहिए कि निर्णय राजनीतिक पक्षपात से मुक्त हों।

(ख) **अन्य सुझाव**– जो अन्य सुझाव समय–समय पर दिए गए हैं उनमें से कुछ उल्लेखनीय हैं–

1. सदस्य राज्य अपने उत्तरदायित्व को अधिक निष्ठा और रचनात्मक ढंग से पूरा करें। महाशक्तियां विशेष रूप से संघ के सिद्धांतों के प्रति निष्ठावान रहें और अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए सैद्धांतिक शिथिलता ना बरतें।
2. महासभा के अधिवेशन अल्पकालीन हों, जिसमें सदस्य राष्ट्रों के प्रधानमंत्री अथवा विदेश मंत्री सम्मिलित हों। मंत्रिमंडलीय स्तर के प्रतिनिधि अपने–अपने देशों की निर्धारित नीति के प्रति उत्तरदायी होते हैं अतः वे महासभा की कार्रवाई को अधिक प्रभावशाली और निर्णयकारी बनाने में सक्षम हो सकते हैं।
3. चार्टर की व्याख्या करते समय उदार दृष्टिकोण अपनाया जाए। सुरक्षा परिषद की शक्तियों के मूल्य पर यदि महासभा जो विश्व जनमत की प्रतिनिधि है कोई कार्य करने का उत्तरदायित्व स्वयं पर ले तो इसका विरोध नहीं किया जाना चाहिए। मुख्य लक्ष्य तो समस्या का समाधान करना है न कि वैधानिक संकट उत्पन्न कर समस्या को उलझाना।
4. संघ के वर्तमान तंत्र को विस्तृत बनाना चाहिए ताकि आवश्यकतानुसार नवीन संस्थाओं का निर्माण किया जा सके।
5. जो क्षेत्र राष्ट्रीय संप्रभुता के बाहर हैं, उन पर प्रशासकीय सत्ता स्थापित कर लेनी चाहिए। जैसे, बाहरी अंतरिक्ष।
6. संघ की आय का कोई स्वतंत्र स्रोत होना चाहिए अतः उचित होगा कि वह विकास कर, सेवा कर, यात्री कर आदि लगाए और विश्व बैंक की आय तथा अंतरिक्ष की फीस आदि द्वारा अपनी आय में वृद्धि करे।

संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष समस्याएं

1. **भेदभाव और तनाव**– एक और महत्वपूर्ण बदलाव आया है गरीब और अमीर देशों में बढ़ता मतभेद और तनाव। शीत युद्ध के दौरान महाशक्तियां एक दूसरे

को नीचा दिखाने में सक्रिय रहती थीं। लेकिन कुछ समय पूर्व में शुरू हुए तनाव शैथिल्य के कारण अब महाशक्तियां एक दूसरे का विरोध भी करती हैं और साझा हितों पर सहयोग भी। गरीब देशों को उनके कच्चे माल की उचित कीमत, समुद्री संपदा के समुचित दोहन, रियायती ऋण और टेक्नोलॉजी हस्तांतरण पर अमेरिका व समिति के सभी विकसित देश एक साथ मिलकर नकारात्मक रुख अपना रहे हैं। क्या यह भेदभाव पूर्ण नहीं है कि बड़ी शक्तियां घातक परमाणु हथियार बना रही हैं और गरीब देशों को परमाणु ऊर्जा का शांतिपूर्ण कार्यों के लिए इस्तेमाल नहीं करने दे रही हैं।

टिप्पणी

2. **वीटो का अनुचित प्रयोग**– सुरक्षा परिषद में 5 बड़ी शक्तियों अमेरिका, सोवियत संघ, फ्रांस, चीन, पूर्व में ताइवान व ब्रिटेन के पास वीटो शक्ति होने के कारण संयुक्त राष्ट्र में कुछ देशों को काफी समय तक सदस्यता नहीं मिल पाई व युद्ध जैसे अनेक संकट स्थलों पर ठोस कार्रवाई नहीं की जा सकी पूर्व वियतनाम और चीन काफी वर्षों बाद इस संगठन के सदस्य बने और उत्तर में दक्षिण कोरिया सदस्यता से वंचित है। कुछ कूट आलोचक तो वीटो प्रावधान की समाप्ति के पक्ष में हैं मगर यह संभव नहीं है क्योंकि ऐसे में उक्त पांच बड़ी महाशक्तियां संयुक्त राष्ट्र ही छोड़ देंगे और इन के सहयोग के बिना इस संगठन का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा। फिर भी महासभा अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय आदि के अधिकार बनाकर वीटो के दुरूपयोग पर एक सीमा तक लगाम लगा सकती है।

3. **प्रमुख अंगों की ढांचागत कमियां**– सुरक्षा परिषद महासभा व अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में संरचनात्मक संशोधन करना अत्यंत जरूरी है। भारत, जापान व पश्चिम जर्मनी आदि के बढ़ते महत्व को देखते हुए उन्हें सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्य बनाकर वीटो शक्ति से लैस किया जा सकता है। सुरक्षा परिषद में मतदान प्रणाली का स्वरूप भी बदला जा सकता है। युद्ध रोकने जैसी ठोस कार्रवाई के लिए वीटो शक्ति संपन्न सभी सदस्यों के बजाय तीन स्थायी सदस्य और महासभा के 223 सदस्यों के समर्थन का प्रावधान बनाना क्या उचित नहीं होगा? महासभा की बैठक के अधिवेशन हमेशा जारी रहने चाहिए और इन में वक्ताओं को विश्व के सभी भागों से समान प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। साथ ही अधिवेशन में बहस को निर्धारित विषय तक सीमित रखने के लिए जरूरी है कि महासभा तथा इसकी विभिन्न समितियों के अध्यक्षों को ज्यादा अधिकार प्रदान किए जाएं।

4. **आर्थिक स्थिति**– इस समय संयुक्त राष्ट्र आर्थिक मामलों में खासकर बड़ी शक्तियों पर निर्भर है। ये बड़ी शक्तियां कभी–कभी इस संगठन को आर्थिक मदद रोक देने की धमकी देकर भी दबाव डालने की कोशिश करती हैं अतएव इस को आर्थिक रूप से स्वतंत्र समर्थ बनाने के लिए नए संसाधनों को ढूंढ़ना आवश्यक है। विभिन्न देशों द्वारा उनके राष्ट्रीय क्षेत्राधिकार के बाहर समुद्री संपदा के दोहन, अंतर्राष्ट्रीय डाक एवं संचार पर टैक्स लगाकर या अन्य तरीकों से इसके लिए आमदनी के नए स्रोत खोजे जा सकते हैं।

5. **विवादों का महासभा या सुरक्षा परिषद में प्रस्तुत होना**– प्रारंभ से ही यह गलत प्रवृत्ति बन गई है कि अधिकतर देश अपने विवाद अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के बजाय महासभा और सुरक्षा परिषद में रखकर हल खोजते हैं। इससे जहां

टिप्पणी

एक ओर महासभा और सुरक्षा परिषद व्यर्थ की बहस में उलझ जाती हैं वहीं दूसरी तरफ समय का दुरुपयोग भी होता है। वे प्रस्ताव पारित करने या अपील के अलावा कोई ठोस निर्णय नहीं ले पाती हैं अतः सभी राष्ट्रों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार में आने वाले मामले उसे ही सौंपे जाने चाहिए। यह भी प्रावधान हो कि जिन विवादों पर अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय विचार कर रहा है उन पर महासभा और सुरक्षा परिषद में विचार न हो और फिर उन पर विशेष परिस्थितियों में ही विचार होने की व्यवस्था हो।

6. **संशोधन की प्रक्रिया का जटिल होना**– संयुक्त राष्ट्र संघ के निरीक्षण और उसमें संशोधन की प्रक्रिया अत्यंत कठिन है। चार्टर के अनुच्छेद 109 में इस प्रक्रिया के बारे में दो बातें कही गई हैं। पहली, महासभा के दो तिहाई सदस्यों व सुरक्षा परिषद के किन्हीं 9 सदस्यों स्थायी व अस्थायी के मतों द्वारा तिथि एवं स्थान तय करने पर चार्टर के पुन निरीक्षण के लिए महा सम्मेलन बुलाया जा सकता है। इसमें संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्य भाग लेंगे। दूसरी, चार्टर में कोई भी संशोधन तभी प्रभावी होगा जब उसका समर्थन सम्मेलन के दो तिहाई मतों के आधार पर सिफारिश की जाएगी और सुरक्षा परिषद के सभी पांच स्थायी सदस्यों सहित संयुक्त राष्ट्र के दो तिहाई सदस्य उसका अनुसमर्थन करें।

यदि हम संयुक्त राष्ट्र रूपी अंतर्राष्ट्रीय पंचायत को प्रभावशाली बनाना चाहते हैं तो कहीं न कहीं से पहल तो करनी ही पड़ेगी ताकि संगठन अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की नित नई चुनौतियों का दृढ़ता से मुकाबला कर सके।

संयुक्त राष्ट्र संघ की सार्थकता– विगत 24 अक्टूबर, 2020 को संयुक्त राष्ट्र संघ अपनी 75वीं वर्षगांठ मना चुका है। फिर भी इस के गठन का उद्देश्य विभिन्न नीतियों के पलड़ों में तुलता रहा है। इसे एक विडंबना ही कहा जाएगा कि अभी तक इसके संचालन में संतुलन स्थापित नहीं हो पाया है। संयुक्त राष्ट्र संघ आदर्श रूप से एक ऐसी संस्था होनी चाहिए जिसकी संरचना जनतांत्रिक हो और हर सदस्य राष्ट्र को अपनी बात कहने का बराबर अधिकार हो तथा बहुमत से लिया गया कोई भी फैसला सभी को अनिवार्य रूप से मान्य हो लेकिन ऐसा नहीं है बहुमत की बात महाशक्तियों को नहीं जंचती। अमेरिका तो ऐसे बहुमत को आतंक मानता है। हर शक्तिशाली देश जब तक हो सके अपना प्रभुत्व बरकरार रखना चाहता है। सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों को प्राप्त वीटो पावर की वजह से बहुमत कुछ कर पाने में असमर्थ रहता है।

अपनी प्रगति जांचिए

13. चार्टर में संशोधन के लिए सुरक्षा परिषद के कितने सदस्यों के मत आवश्यक हैं?

    (क) दस (ख) नौ

    (ग) बारह (घ) पांच

14. प्रथम साल्ट समझौता कब हुआ था?

    (क) 1972 (ख) 1979

    (ग) 1970 (घ) 1975

15. निशस्त्रीकरण का उल्लेख सर्वप्रथम किस महासभा में हुआ था?
    (क) न्यूयॉर्क (ख) जेनेवा
    (ग) लंदन (घ) लॉस एंजिल्स
16. 1982 में महासभा के अध्यक्ष कौन थे?
    (क) इस्मत किटियानी (ख) इंदिरा गांधी
    (ग) रोनाल्ड रीगन (घ) मार्गरेट थैचर

टिप्पणी

5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (ख)
3. (क)
4. (घ)
5. (ख)
6. (ख)
7. (ग)
8. (क)
9. (ख)
10. (क)
11. (घ)
12. (क)
13. (ख)
14. (क)
15. (ग)
16. (क)

5.6 सारांश

निशस्त्रीकरण को सामान्यतः शस्त्र नियंत्रण के रूप में जाना जाता है। निशस्त्रीकरण शस्त्र नियंत्रण से कहीं अधिक है। निशस्त्रीकरण का तात्पर्य है कि राष्ट्रों के पास शस्त्र होने ही नहीं चाहिए। निशस्त्रीकरण विश्व शांति के लिए पूर्ण समाधान नहीं है बल्कि एक साधन मात्र है। निशस्त्रीकरण विश्व में शांति स्थापना के लिए, आर्थिक कल्याण व क्षेत्रीय समस्याओं के समाधान, आणविक संकट से बचाव के लिए आवश्यक है। संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व शांति व राजनीतिक समस्याओं का समाधान ही नहीं करता बल्कि वह आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में भी कार्य करता है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन,

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक हर संभव उपाय से आर्थिक कल्याण के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। उच्च जीवन स्तर की प्राप्ति, स्वास्थ्य के क्षेत्र में, शिक्षा संस्कृति और मानव अधिकारों के लिए भी संघ प्रयास प्रयास करता है जिससे विश्व का प्रत्येक मानवमात्र लाभान्वित हो सके।

टिप्पणी

द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत से लगातार संयुक्त राष्ट्र संघ पूरे विश्व में लगभग प्रत्येक क्षेत्र में प्रभावशाली कार्य कर रहा है किंतु इसकी अपनी कुछ दुबर्लताएं और समस्याएं भी हैं तथा आज लगभग 79 वर्षों के उपरांत इस अंतर्राष्ट्रीय संस्था का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने की आवश्यकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ को और अधिक शक्तिशाली बनाने तथा इसके चार्टर में संशोधन के कुछ बिंदुओं का विस्तृत वर्णन किया गया है क्योंकि प्रत्येक संस्था लगातार विकसित और परिमार्जित होती रहती है।

5.7 मुख्य शब्दावली

- **निशस्त्रीकरण** : सेना और शस्त्रों को घटा देना या समाप्त कर देना।
- **एस.डी.आई.** : सामरिक रक्षा पहल (स्टार वार, अन्य नाम है)।
- **एल.टी.बी.टी.** : सीमित परमाणु परीक्षण प्रतिबंध समिति।
- **मेगाटन टी.एन.टी.** : परमाणु बम की शक्ति को नापने की इकाई।

5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. निशस्त्रीकरण क्यों आवश्यक है?
2. यूनेस्को के संगठन पर प्रकाश डालिए।
3. विश्व बैंक पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
4. संयुक्त राष्ट्र संघ को शक्तिशाली बनाने के लिए सुझाव दीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. निशस्त्रीकरण को सफल बनाने की दिशा में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयासों की समीक्षा कीजिए।
2. संयुक्त राष्ट्र संघ के आर्थिक कल्याण से जुड़ी संस्थाओं के कार्यों पर प्रकाश डालिए।
3. संयुक्त राष्ट्र संघ के मार्ग में आने वाली समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में उसे शक्तिशाली बनाने के लिए सुझाव दीजिए।

5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अन्तर्राष्ट्रीय विधि, हरिश्चन्द्र शर्मा एवं रमेश दुबे, कालेज बुक डिपो जयपुर।
2. अन्तर्राष्ट्रीय विधि, एस.के. कपूर, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।
3. अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, एम.पी. राय,कालेज बुक डिपो जयपुर।